हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

संवत् १९८३-वि०

का

श्रीमंगलाप्रसाद-पारितोषिक*

[रु० १२००]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सप्तदश वार्षिक अधिवेशन पर श्रीमान् डा० त्रिलोकीनाथजी वर्मा, बी० एस-सी०; एम० बी०, बी० एस०; एफ० आर० एफ० पी० एण्ड एम०; डी० टी० एम०; एल०, एम० को उनकी विज्ञान विषयक रचना

"हमारे शरीर की रचना"

के लिये सादर दिया गया।

स्थान भरतपुर
मि० चैत्र कृ० १२
स० १९८३ वि०

गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा
[रायबहादुर]
सभापति

*यह पारितोषिक भरतपुर में पारितोषिकाधिकारी के अनुपस्थित होने के कारण प्रयाग में मार्गशीर्ष शुक्ल ५, सं० १९८४ वि० को पं० श्रीधर पाठक के द्वारा दिया गया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

द्वारा

सं० १९८० में

लेखक को "हमारे शरीर की रचना"

के

सम्बन्ध में

रेडिचे पदक

और

२००)

का

पुरस्कार मिल चुके हैं

समर्पण

स्वदेश प्रेमियों की सेवा में

भूमिका

इस आठवीं आवृत्ति को प्रस्तुत करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता है। इस आवृत्ति में दो मुख्य विशेषताएं हैं। प्रथम तो यह है कि इस बार अंग्रेजी तुल्यार्थक शब्द समस्त पुस्तक में साथ ही साथ दिये गये हैं। मेरा विश्वास है कि पाठकों को इससे बहुत लाभ होगा—विशेष कर उन पाठकों को जिन्होंने इस विषय का अंग्रेजी में अध्ययन कर रखा है। दूसरी बात है कि प्रथम बार पुस्तक में देशना (Index) दी गई है जिसके संकलित करने में मुझे अपने मित्र डा० रामपाल चतुर्वेदी, एम० एस० तथा डा० नरेन्द्र दुबे, एम० बी०, बी० एस० से से बहुत सहायता मिली है। इस सहायता के लिये मैं उनका आभारी हूँ। आशा है इससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जावेगी।

एक और बात भी नयी है इस आवृत्ति में। पहली बार ही इस पुस्तक का प्रकाशन एक प्रकाशक के द्वारा हुआ है। पिछली सब आवृत्तियों का प्रकाशन लेखक ने ही किया था। ऐसा करना आवश्यक हो गया क्योंकि मैं अगले माह में ही अपने विषय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये अमेरिका जा रहा हूँ। मैं प्रकाशक महोदय का, जो कष्ट उन्होंने इसके प्रकाशन में किया, आभारी हूँ। आशा है पाठकगण पुस्तक पहले से अधिक उपयोगी पावेंगे।

पुस्तक आद्योपांत दोहरायी गयी है। पिछली आवृत्ति की त्रुटियां दूर कर दी गयी हैं। प्रेस की गलतियां शायद कुछ रह गयी हैं आशा है पाठकगण इसके लिये क्षमा करेंगे।

लखनऊ
कृष्ण जन्माष्टमी, २०११ वि०
२१ अगस्त, १९५४

हरिश्चन्द्र वर्मा

सातवीं आवृत्ति की भूमिका

इस सातवीं आवृत्ति के छपने में जो देर हुई है उसका मुख्य कारण योरुपीय महायुद्ध के कारण कागज़ का न मिलना ही है। पाठकों को पुस्तक न मिलने से जो घोर कष्ट हुआ उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

कागज के दामों तथा छपाई की दर में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण मुझे पुस्तक का मूल्य इच्छा न रहते हुए भी बढ़ाने को बाध्य होना पड़ा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण इस विषय में मेरी असमर्थता को स्वीकार करके मुझे इसके लिये क्षमा करेंगे।

पुस्तक आद्योपांत दोहराई गयी है और पिछली आवृत्ति की छपाई आदि की गलतियाँ दूर कर दी गई हैं।

इस पुस्तक के छपवाने का भार मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा की असामयिक मृत्यु के बाद मेरे माननीय चचा डा० रामनाथ वर्मा के ऊपर पड़ा था। उन्होंने जिस कुशलता से यह कार्य उसके लिये मैं उनका बहुत अनुगृहीत हूँ।

आशा है पाठकगण पुस्तक को पहले जैसा ही उपयोगी पायेंगे।

हरिश्चन्द्र वर्मा

पिछली आवृत्तियों की भूमिकाओं से उद्धृत

इस पुस्तक के सम्बन्ध में मुझे निम्नलिखित महाशयों से सहायता मिली है।

(अब स्वर्गवासी) मास्टर कृपारामजी, एम० ए०।

डाक्टर विश्वनाथजी, एम० बी०, बी० एस्०।

महामहोपाध्याय डा० पं० गंगानाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट०।

पंडित रासविहारी तिवारी। डा० चन्द्रिका प्रसाद मिश्र।

साहित्याचार्य पं० धनानन्द पन्त।

त्रि० ना० व०

पुस्तक की छठी आवृत्ति को मेरे चचा डा० रामनाथ वर्मा, मुज़फ्फर-नगर ने छपवाया तथा विक्रय किया। जिस योग्यता से उन्होंने इस उत्तरदायित्व का पालन किया उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

हरिश्चन्द्र वर्मा

विषय-सूची

स्वर्गीय डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा

हमारे शरीर की रचना

अध्याय १

परिचय

इस संसार में हमको दो प्रकार की चीजें दिखाई देती हैं; एक वे जिनको हम जीवित कहते हैं जैसे अनेक प्रकार के वृक्ष, पौदे, फूल, भांति-भांति के जल और भूमि पर रहनेवाले और आसमान में उड़नेवाले जानवर जैसे मनुष्य, बानर, मेंढक, मछली, कबूतर इत्यादि; दूसरे वे जो निर्जीव कही जाती हैं, जैसे ईंट, पत्थर, मिट्टी और अनेक प्रकार के धातु (Metal)। इस विचार से हम इस सृष्टि (Creation) के दो बड़े-बड़े भाग कर सकते हैं—

(१) सजीव या चैतन्य (Living) सृष्टि।

(२) निर्जीव या जड (Non-living) सृष्टि।

यदि हम इस सजीव सृष्टि पर दृष्टि डालें तो यह भी दो प्रकार की दिखाई देती हैं। एक ओर फल-फूल वाले वृक्ष; भांति भांति की लताएँ (Creepers) और घासें देख पड़ती हैं दूसरी ओर अनेक प्रकार के जीव दिखाई देते हैं, जैसे मनुष्य, घोड़ा, बैल, कबूतर, मच्छर। पहले प्रकार की जीवित सृष्टि दूसरे प्रकार की जीवित सृष्टि से भिन्न हैं।

जैसे कुल संसार के दो भाग हुए—सजीव और निर्जीव—वैसे ही फिर सजीव सृष्टि के दो भाग हो जाते हैं:—

(१) एक वह जिसमें वृक्ष, पौदों, घासों की गिनती होगी।

(२) दूसरे वह जिसमें मनुष्य, घोड़ा, मेंढक, मच्छर रक्खे जायेंगे।

वैज्ञानिक लोग पहले विभाग को वनस्पतिवर्ग (Vegetable kingdom) कहते हैं और दूसरे को प्राणिवर्ग (Animal kingdom) –

सृष्टि
- सजीव या चैतन्य
  - (१) वनस्पतिवर्ग
  - (२) प्राणिवर्ग
- (३) निर्जीव या जड़
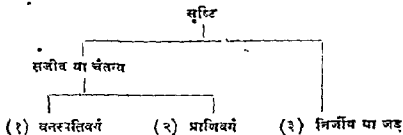
इस प्रकार कुल सृष्टि के तीन बड़े-बड़े विभाग (Divisions) हुए।

चैतन्य सृष्टि चाहे वह वनस्पतिवर्ग की हो और चाहे प्राणिवर्ग की छोटी बड़ी सभी प्रकार की होती है। वनस्पतिवर्ग में जहा एक ओर लम्बे-लम्बे बांस और ऊंचे-ऊंचे बड, आम, सालादि के वृक्ष है वहाँ दूसरी ओर दृष्टि डालने से गेहूँ, चावल, तुलसी के पौदे और इनसे भी छोटी-छोटी अनेक प्रकार की लताएँ और घासें जैसे दूब, कुशा, काई दिखाई देती हैं। यदि और जांच पड़ताल करें तो इनसे भी नन्ही-नन्ही अनेक प्रकार की वनस्पतियां मिलेंगी। उनमें कुछ तो इतनी सूक्ष्म होती हैं कि हम उनको आंखो से नही देख सकते, उनको देखने के लिये ऐसे यंत्र की आवश्यकता है जिससे छोटी वस्तु बड़ी दिखाई दे। ऐसे यंत्र को अणुवीक्षण या सूक्ष्मदर्शक (Microscope) कहते हैं।

परीक्षक चक्षुताल (Eyepiece) में से देखता है। जिस वस्तु की परीक्षा की जाती है, वह एक कांच की पट्टी पर रख दी जाती है; यह पट्टी (Slide) कमानियों से दबाकर मंच (Stage) पर रखी जाती है। मंच के बीच में एक छिद्र होता है; वस्तु इसी छिद्र के ऊपर रहती है। बड़ी नली के नीचे के भाग में एक या कई ताल लगे रहते हैं; यह ताल
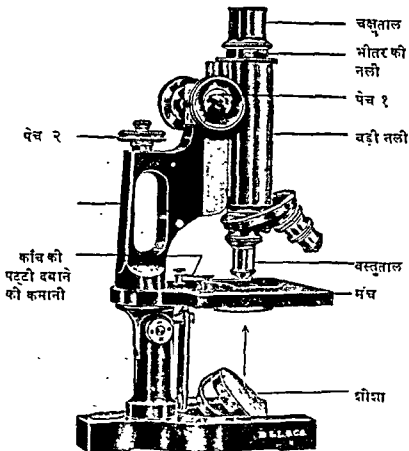
वस्तु के ऊपर रहता है; पेच (१) द्वारा यह नली ऊपर नीचे सरकाई जा सकती है; इस क्रिया से वस्तुताल (Objective) और वस्तु के बीच का अन्तर (Distance) कम और अधिक किया जा सकता

हैं; यदि अन्तर बहुत ही धीरे-धीरे बढ़ाना या घटाना होता है तो पेच (२) से काम लिया जाता है; जहाँ से साफ साफ दीखता है उसी अंतर पर वस्तुताल को रखते हैं। बड़ी नली के भीतर एक नली और होती है; इसी में चक्षुताल लगा होता है। इस नली को ऊपर सरकाने से चक्षुताल और वस्तुताल का अन्तर अधिक किया जा सकता है। प्रकाश (Light) की किरणें शीशे (Mirror) पर से उचट कर मंच के छिद्र में से होती हुई वस्तु पर पड़ती हैं। वस्तु से उचट कर वस्तुताल और नली और चक्षुताल में होती हुई परीक्षक की चक्षु में पहुचती हैं। शीशे से प्रकाश कम या अधिक किया जा सकता है।

इस यन्त्र की सहायता से वैज्ञानिकों (Scientists) ने अनेक प्रकार की सूक्ष्म (Minute) वनस्पतियों को देखा है जिनको साधारण मनुष्यों ने न कभी देखा और न सुना। साधारण मनुष्यों को तो इस बात के सुनने से भी बड़ा आश्चर्य होता है कि जीवधारी इतने सूक्ष्म भी हो सकते हैं जो आंखों से न दिखाई दे; परन्तु इस विषय में सन्देह करना व्यर्थ है यदि आप इस यंत्र के द्वारा वस्तुओं को देखना जान लें तो आपको भी इस बात का पूर्ण विश्वास हो जायगा।

जिस प्रकार वनस्पतिवर्ग में अनेक प्रकार के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे व्यक्ति हैं उसी प्रकार प्राणिवर्ग में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे व्यक्ति हैं। बड़े-बड़े प्राणी ऐसे जैसे कि हाथी, ऊँट, वा समुद्र में रहने वाली ह्वेल (Whale) मछली, मनुष्य, वानर, कबूतर आदि, छोटे-छोटे ऐसे जैसे कि मक्खी, मच्छर, जू, चीटी आदि। प्राणी इनसे भी छोटे-छोटे होते हैं; ये बहुधा जल में रहते हैं और आंखों से केवल एक बिन्दु जैसे देख पड़ते हैं।

यदि और देख भाल की जावे तो ज्ञात होता है कि असंख्य प्राणी

इतने सूक्ष्म हैं कि हम उनको बिना अणुवीक्षण की सहायता के आंखों से नहीं देख सकते। इस तरह से इस सृष्टि में दो भांति के प्राणी पाये जाते हैं —एक वे जो आँखों से देख पड़ते हैं। दूसरे वे जिनको हम आंखों से यंत्र की सहायता के बिना नहीं देख सकते। यदि कोई वस्तु सूक्ष्म होने के कारण आँखों से न दिखाई दे तो यह कहना उचित नहीं कि वह वस्तु है ही नहीं। जिस मनुष्य के आंखें हैं वह उस मनुष्य की अपेक्षा जो अन्धा है इस संसार में अनेक प्रकार की वस्तुएं देखता है और जो मनुष्य अणुवीक्षण की सहायता लेता है वह केवल आँखों से देखनेवाले मनुष्य की अपेक्षा अन्य अनेक प्रकार की वस्तुएँ देख सकता है और इस ज्ञान से अपने आपको और अपनी जाति को लाभ पहुँचा सकता है।

यंत्र ऐसे बने हैं कि जो एक छोटी चीज को कई हजार गुणा बड़ा करके दिखा सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस विचित्र यंत्र की सहायता से छोटी से छोटी वस्तु जो आप आंखों से देख सकते हों उनके दो या तीन हजारवें भाग को भी देख सकते हैं। इन्हीं यंत्रों की सहायता से अनेक प्रकार की बेक्टीरिया (Bacteria) नामक वनस्पतियां वा रोगोत्पादक (Disease producing) जन्तु (Organisms) देखे गये हैं।

जीवधारियों के शरीर की बनावट

जीवधारियों के शरीर की बनावट एक मकान की बनावट के सदृश है। जैसे मकान अनेक छोटी-छोटी ईंटों से बने हैं उसी प्रकार यह शरीर भी बहुत सी छोटी-छोटी ईंटों से बना है। मकान और शरीर की ईंटों में बड़ा भेद यह है कि मकान की ईंटें जड़ हैं, शरीर की ईंटें चैतन्य। जिन छोटी-छोटी चैतन्य ईंटों से जीवधारियों के शरीर बनते हैं उनको सेलें[1] (Cells) कहते हैं

१. "सेल" अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है। कुछ लेखकों ने इसके लिये "कोष" शब्द का प्रयोग किया है।

जैसे एक बड़े महल में कई प्रकार की ईंटें लगी रहती हैं, कोई बड़ी होती हैं और कोई छोटी, कोई मोटी होती हैं और कोई पतली; उसी तरह शरीर भी कई प्रकार की सेलों से बनता है। जिस सेल को जैसा काम करना पड़ता है उसी काम के अनुसार उसका आकार (Shape) और परिमाण (Size) होता है।

कोई जीवधारी बड़ा होता है और कोई छोटा। बड़े जीवधारी के शरीर में अधिक सेलें होती हैं और छोटे के शरीर में कम। जितनी ईंटें एक बड़े महल में होती हैं उतनी एक छोटे मकान में नहीं होतीं। इसी तरह जितनी सेलें एक कबूतर के शरीर में हैं उतनी एक मक्खी के शरीर में नहीं हैं और जितनी सेलें एक मक्खी के शरीर में हैं उतनी जूं जैसे छोटे प्राणी के शरीर में नहीं हैं। जितना छोटा कोई जीवधारी होगा उतनी ही कम सेलें उसके शरीर में होंगी यहां तक कि सब से छोटे जीवधारियों के शरीर केवल एक ही सेल से बनते हैं।

जैसे सब से गरीब मनुष्य अपनी एक ही कोठरी में सब काम कर लेते हैं, वहीं भोजन पकाते और खाते हैं, वहीं सोते और उठते बैठते हैं, इसी प्रकार इन सूक्ष्म एक सेलवाले जीवधारियों के शरीर में आवश्यक कार्य हो जाते हैं। सेलों की संख्या के हिसाब से कुल जीवधारियों की (क्या वनस्पति और क्या प्राणी) दो बड़ी जातियां हो सकती हैं:—

(१) वे जीवधारी जिनके शरीर केवल एक ही सेल से बने हैं:— एक सेलयुक्त (Unicellular) जीवधारी।

(२) वे जीवधारी जिनके शरीर में एक से अधिक सेलें होती हैं— बहुसेलयुक्त (Multicellular) जीवधारी। मनुष्य के शरीर में बहुत सेलें हैं इस कारण उसकी गिनती बहुसेलयुक्त प्राणियों (Animals) में है।

पीछे सेल शब्द का प्रयोग कई बार हो चुका है; इसलिये यह आवश्यक है कि पाठकों को सेल की बनावट से परिचित किया जाय। हम पहले आपको ऐसे प्राणी के शरीर की बनावट बतलाते है, जिसका शरीर एक ही सेल से निर्मित है।

हम इन आंखों से किसी एक सेल को चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो भली प्रकार नही देख सकते। हम सेल-समूह (Cell Mass) को देख सकते हैं। जब हम एक छोटे से खटमल के बच्चे को देखते है तब हमको उसकी सेलें दिखाई नही देती। जो कुछ हमको दिखाई देता है वह सहस्रों छोटी-छोटी सेलों का एक समूह है। सेल के अत्यन्त छोटे होने के कारण हम किसी एक सेलयुक्त प्राणी के शरीर की रचना नही जान सकते जब तक कि हम अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता न लें।

अमीबा[1] (Amoeba)

चित्र २ में एक साधारण एकसेलयुक्त प्राणी का शरीर खिचा हुआ है। इस प्राणी का नाम अमीबा है। वास्तव में शरीर इतना बड़ा नहीं होता परन्तु समझाने के लिये इतना बड़ा बनाया गया है, बड़े यन्त्रों से बहुत बड़ा दिखाई भी देता है। अमीबा का शरीर एक स्वच्छ (Clear) गाढे (Viscid) भली प्रकार न बहनेवाले शहद जैसी वस्तु से बना है, इस वस्तु को जीवोज या जीवनमूल (Protoplasm) कहते हैं। यदि हम ध्यान से देखें तो इस वस्तु के बीच में एक धुंधली मोटी बिन्दु दिखाई देगी, इसका नाम मींगी या चैतन्य केन्द्र (Nucleus) है। प्रत्येक सेल में जीवोज होता है जिसके भीतर मींगी रहती है। बस प्रत्येक सेल के दो मुख्य भाग होते हैं:—

---

१ अंग्रेजी भाषा का शब्द है।

चित्र २ अमीवा
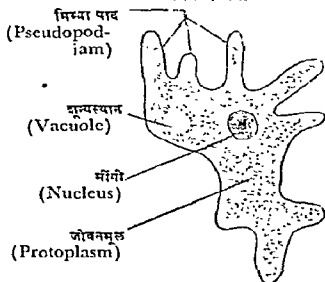
वास्तविक परिमाण १/२५० से १/१०० इञ्च तक (व्यास) (Diameter)

(१) जीवोज। (२) मींगी या चैतन्य केन्द्र।

मींगी कुछ ठोस होती है और जीवोज से अधिक धुंधली होती है।

यदि जीवोज (Protoplasm) की रासायनिक (Chemical) परीक्षा की जाय तो मालूम होगा कि उसका अधिक भाग जल होता है (७५% या इससे भी अधिक); शेष भाग अधिकतर प्रोटीन[1] (Protein) नामक रासायनिक पदार्थ से बनता है। प्रोटीन नामक पदार्थ में कार्बन (Carbon), उदजन (Hydrogen), नत्रजन (Nitrogen), ओषजन (Oxygen), गन्धक (Sulphur) या कभी-कभी स्फुर (Phosphorus) मूलतत्व (Elements)

१. अंग्रेजी भाषा का शब्द है।

या मौलिक पाए जाते हैं अर्थात् प्रोटीन एक संयोजित पदार्थ या यौगिक (Compound) है और वह प्रागुक्त मौलिकों या मूलतत्त्वों के परस्पर सयोग से बनता है। जीवोज में प्रोटीन और जल के अतिरिक्त कई प्रकार के लवण वा दो एक चीजें और होती हैं। मींगी अधिकतर प्रोटीन और प्रोटीन जैसी चीजों से बनती है। मीगी की प्रोटीन में स्फुर बहुत होता है (७, ८%), इस प्रोटीन में कभी-कभी लोहा भी पाया जाता है। वैज्ञानिकों ने जीवोज का विश्लेषण (Analysis) करके मूलतत्त्वों या मौलिकों को तो जान लिया है, परन्तु वे अभी इन मौलिकों को परस्पर मिला कर फिर जीवोज नहीं बना सके। प्रोटीन भी अभी तक नहीं बनाई जा सकी। प्रोटीन, जल और लवण—इनको आपस में हम किस विधि से और किस प्रकार मिलायें कि उनके सयोग से एक चैतन्य सेल बन जावे यह हमको अभी तक मालूम नही हुआ। यदि हमको यह मालूम हो जावे कि चैतन्यता (Life) क्या चीज है और उसको हम जड़ पदार्थों में किस प्रकार प्रवेश करा सकते हैं तब हमको यह समझने में कोई कठिनता न होगी कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई।

यदि हम अमीबा को अच्छी तरह देखें तो हमको ज्ञात होगा कि इसमें चलने फिरने की शक्ति है। यद्यपि इसके हमारी तरह हाथ पांव नहीं हैं और न मक्खी जैसे पर और न मछली जैसे पांखे (Fins), तथापि वह एक स्थान से खिसक कर दूसरे स्थान पर नि.सन्देह जा सकता है। हम बतलाते हैं कि वह ऐसा कैसे कर सकता है।

इस प्राणी के शरीर की आकृति (Contour) क्षण-क्षण में बदलती रहती है (देखो चित्र ३); मान लो कि अभी यह प्राणी "क" रेखा के बाईं ओर है (चित्र ३) और उसकी आकृति कुछ गोलाकार (Spherical) है; क्षण भर पीछे

उसका शरीर लम्बा सा हो जाता है। लम्बा होने पर चौड़ाई कम हो जाती है; अब उसके शरीर में दाहिनी ओर एक अँगुली सी बन जाती है और यह अंगुली "क" रेखा के दाहिनी ओर चली जाती है। पल भर पीछे उसके उस भाग में जो "क" के दाहिनी ओर चला गया है एक और अंगुली निकल आती है; अब उसके शरीर का बहुत थोड़ा अंश "क" के बाईं ओर बचा रहता है। पल भर पीछे उसमें और अंगुली सी निकल

चित्र ३ अमीबा की चाल (Movement)
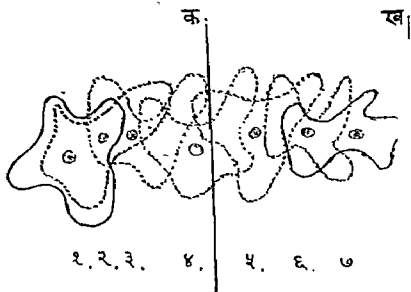
आती है और अब सबका सब शरीर "क" के दाहिनी ओर आ गया। इस प्रकार अपनी आकृति बदलने से वह "क" से चलकर "ख" तक आ पहुँचा। अमीबा इसी प्रकार चलता फिरता है। बस यदि आप चल फिर सकते हैं तो आपका अमीबा भी चल फिर सकता है।

जैसे आप भोजन करते हैं वैसे अमीबा भी खाता पीता है। जिस जल में अमीबा रहता है वह जल उसके शरीर के भीतर पहुँचता रहता है। यही नहीं; वह उस जल में घुले हुए पोषणकारक (Nourishing) पदार्थ भी ग्रहण करता रहता है; कभी-कभी वह छिपकली की भांति शिकार भी मार खाता है। जब कभी वह किसी छोटी वनस्पति (जैसे बेक्टीरिया) या किसी और वस्तु को अपने शरीर में ग्रहण करना चाहता है तो उस वस्तु के चारों ओर उसके जीवोज की अंगुलियां (मिथ्या पाद) निकल आती हैं और उसको घेर लेती हैं और फिर यह सब जीवोज एक हो जाता है और वह वस्तु उसके शरीर के भीतर आ जाती है। शरीर में पहुँच कर यह भोजन पचता है।

अमीबा न केवल चलता फिरता भोजन खाता और उसको पचाता ही है, किन्तु उसके शरीर में उन पदार्थों को जिनको यह पचा नही सकता शरीर से बाहर निकालने का भी प्रबन्ध है। यदि हम इस प्राणी के शरीर को ध्यान से देखें तो उसके जीवोज में कही न कहीं एक छोटा सा गोल-गोल शून्य (खाली) स्थान दिखाई देगा। इस स्थान में शरीर के विविध भागों से बहुत-सी अति सूक्ष्म नालियां आकर खुलती हैं। इन नालियों के द्वारा जल में घुले हुए दुष्पच (Indigestible) पदार्थ व कर्बनद्विओषिद (Carbon-di-oxide) जैसे मलिन (Impure) पदार्थ आकर इकट्ठे होते हैं। जब यह शून्य स्थान इन पदार्थों से भर जाता है तब अमीबा का शरीर कुछ सिकुडता है और उसमें एक छोटी सी दरार (Fissure) आ जाती है जिसमें से होकर ये सब पदार्थ निकल कर जल में मिल जाते है। तत्पश्चात् उसका शरीर ज्यो का त्यों हो जाता है। जिस प्रकार मँडे हुए आटे में आप एक सुई घुभाकर निकाल लें और फिर वह छिद्र आप ही आप बन्द हो जाता है। और उस छिद्र का कोई चिह्न नहीं रहता वैसे ही इस दरार का कोई चिह्न अमीबा के शरीर में नहीं

आप स्पर्श इन्द्रिय (Organ of touch) रखते है; शीत, उष्णता व पीडा का आपको ज्ञान होता है। जांच पडताल से पता लगता है कि अमीवा में भी इन बातो को अनुभव करने की शक्ति है।

इन सब बातो से विदित है कि अमीवा सब ही काम करता है। उसके शरीर में गतिया होती है; वह भोजन खाता और उसको पचाता है और जिन चीजों को वह पचा नही सकता उसको शरीर से बाहर निकाल देता है। चलने फिरने से जो मलिन पदार्थ उसके शरीर मे उत्पन्न होते है उनको बाहर निकालने का भी उसमें प्रबन्ध है। जल में से वह ओषजन गैस को भी ग्रहण करता है और शीत और उष्णता को भी पहचानता है। इन सब आवश्यक कामों के अतिरिक्त उसमें उत्पादन शक्ति भी है। उसके सूक्ष्म शरीर में इस कार्य के लिए कोई विशेष अंग नही है। जब वह यौवन को प्राप्त होता है तो वह पहले तो कुछ लम्बा सा हो जाता है; तत्पश्चात् उसकी मीगी के दो टुकडे हो जाते है। एकमीगी से दो मीगिया बन जाती है; एक मीगी शरीर के एक भाग में चली जाती है और दूसरी दूसरे भाग मे, (देखो चित्र ४) फिर बीच मे से शरीर के दो टुकडे हो जाते है। अब एक अमीबा से दो अमीबा बन गये। इसी तरह इनमें से हर एक व्यक्ति बडा होकर फिर बीच में से फट जाता है और यह बढने और फटने का सिलसिला चलता रहता है। इस तरह से इस एक सेल मे सभी काम हो जाते है। जिन क्रियाओं पर जीवन अवलम्बित है वे सब एक ही सेल द्वारा हो जाती है।

जीवन या चैतन्यता के लक्षण

जो काम अमीबा करता है वह प्रायः प्रत्येक जीवधारी करता है। इन बातों के होने या न होने से हम जीवित वस्तु को निर्जीव

वा मृत वस्तु से पहचान सकते हैं। अब हम जीवन के मुख्य लक्षण गिनाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जब तक यह सब की सब बातें न मिलें तब तक कोई वस्तु जीवित न कही जावे। इनमें से बहुत सी बातें हर एक जीवधारी में प्रायः अवश्य मिलती हैं—

चित्र ४ एक अमीबा से दो अमीबा बन जाते हैं
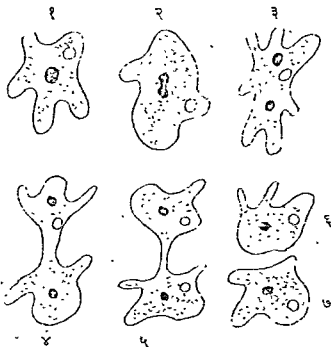
(१) सोते हुए जीवित कुत्ते के शरीर में यदि आप सुई चुभावें तो वह जाग जायगा और क्रुद्ध होकर आपको काटने दौड़ेगा; मृत कुत्ते के शरीर को आप काट भी डालें तो भी वह आप से कुछ न कहेगा। यदि जीवित मनुष्य के हाथ पर उबलता हुआ जल गिरे तो हाथ उस

स्थान से तुरन्त हट जाता है; मृत मनुष्य का हाथ आप जलती हुई भट्टी मे रख दीजिये, वही रहेगा और जलने पर भी वहां से न हटेगा। चींचली को यदि आप पकड़ना चाहें तो वह अपने पैरों को सिकोड़ लेती है, ऐसी बन जाती है कि वह मर गई; मृत चीचली ऐसा नही करती। जीवित सर्प के शरीर पर आप पैर धर दें तो वह तुरन्त काटने के लिये तैयार हो जाता है; मृत सर्प से आप जो चाहें कर सकते हैं। जीवित अमीबा के शरीर में यदि आप सुई चुभावें तो वह उस स्थान से हटने लगता है। जीवित मांस बिजली के प्रभाव से सिकुड़ने लगता है; जब यह मर जाता है तब नही सिकुड़ता।

कारण (Cause) के प्रभाव से कार्य करने और किसी बाह्य (External) उत्तेजना (Stimulus) के बल से उत्तेजित होकर अपने शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की यह शक्ति केवल जीवित चीजों में ही पाई जाती है; निर्जीव या मृत में नही। जीवित चीजो की इस शक्ति का नाम **उत्तेज्य** (Irritability) है।

(२) जीवधारी भोजन ग्रहण करते हैं और उसको पचा कर उससे अपना शरीर बनाते हैं और जो शक्ति उससे प्राप्त होती है उससे शरीर का कारोबार चलाते हैं। मृत मनुष्य या कोई और प्राणी भोजन नही खाता। जीवित वृक्ष वायु और पृथिवी से भोजन की वस्तु ग्रहण करते रहते हैं जिससे उनके शरीर बढ़ते हैं; जब वृक्ष मृत होकर सूख जाता है तो वह पृथिवी और वायु से पोषणकारक पदार्थ ग्रहण नही कर सकता। जीवित अमीबा प्रति क्षण जल से पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करता रहता है; वह मार दिया जाय तो यह काम बन्द हो जाता है। जीवधारियो के इस गुण को **समीकरण** या **एकीकरण** (Assimilation) शक्ति कहते हैं।

(३) जीवधारी भोजन खाते और उसको पचाते हैं और पचे हुए पदार्थों से उनके शरीर बनते और बढ़ते हैं। मृत बालक का शरीर नहीं बढ़ता, जीवित बालक अपनी माता का दुग्ध पी कर और फिर अन्न खा कर और उसको पचा कर अपना शरीर बढ़ाता है। छोटे से बीज से बढ़-बढ़ कर कितने कितने बड़े वृक्ष बन जाते हैं; यदि हम किसी बीज को बहुत उष्णता पहुँचा कर या किसी और विधि से मार डालें और फिर उसको बोवें तो वह कभी भी न उगेगा और उसके शरीर में वृद्धि न होगी। जीवधारियों के भोजन खा खा कर बढ़ने को वर्धन (Growth) शक्ति कहते हैं। निर्जीव या मृत चीजों में इस प्रकार वृद्धि नहीं होती।

(४) जीवधारी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं; जैसे आप हैं वे अपने शरीर से उसी प्रकार के और व्यक्ति बना सकते हैं एक अमीबा से दो अमीबा बन जाते हैं, यदि अमीबा मरा हुआ हो तब उससे कभी भी दूसरा अमीबा न बन सकेगा। जीवित बहुसेलयुक्त प्राणधारियो में भी वैसे ही और प्राणी बन सकते हैं। आम के वृक्ष में बहुत से आम लगते हैं; प्रत्येक आम की गुठली बोने पर एक आम का वृक्ष बना सकती है। जीवित मुर्गी अंडे देती है; जीवित स्त्री बालक जनती है; मृत मुर्गी अंडे नहीं देती न मृत स्त्री गर्भ धारण करके बालक जन सकती है। हमारे शरीर में जीवित अवस्था में एक सेल से और सेलें बनती रहती हैं। जीवधारियों के इस गुण को उत्पादन शक्ति (Reproductive power) कहते हैं।

(५) जीवित शरीर में उन मलिन पदार्थों को जो कार्य करने से उसके भीतर उत्पन्न होते रहते हैं बाहर निकालने का प्रबन्ध होना है। अमीबा के शरीर से मलिन पदार्थ निकल कर जल में मिल जाते है। जब तक हम जीते रहते हैं हम अपने फुप्फुसों (फेफड़ों), गुरदों और त्वचा से ये पदार्थ त्यागते रहते हैं; मरने पर स्वांस नहीं आता; मूत्र बनना बन्द हो

जाता है, पसीना भी नही आता। जीवधारियो के इस कार्य को मलोत्सर्जन (Excretion) कहते है।

संक्षेप—बस जीवन के पाच मुख्य लक्षण ये है—

(१) उत्तेज्य (Irritability)

(२) समीकरण या एकीकरण (Assimilation)

(३) वर्धन (Growth)

(४) उत्पादन शक्ति (Reproductivity)

(५) मलोत्सर्जन (Excretion)

इनमें से तीसरा और पाचवा लक्षण औरों की अपेक्षा अधिक आवश्यक समझे जाते है।

सेल के विषय में कुछ और बातें

हमारा विश्वास है कि पाठक अमीवा का हाल पढ कर सेल की साधारण बनावट समझ गये होगे। यह न समझना चाहिये कि सेल के

चित्र ५ सेल
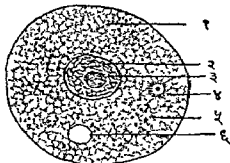
विषय में इतना ही मालूम है; सत्य तो यह है कि जितने बडे यन्त्र से सेल देखी जावे उतनी ही नई-नई बातें उसकी रचना के विषय में मालूम

होती है। परन्तु हम इन सब बातों को बतला कर पाठकों को भँवरजाल में नहीं डालना चाहते; केवल एक दो बातें बतला कर सेल का साधारण वर्णन समाप्त करेंगे।

यदि हम किसी सेल को बड़े यंत्र की सहायता से गौर से देखें तो मींगी के भीतर एक छोटा सा बिन्दु दिखाई देता है इसको अणु मींगी (Nucleolus) कहते हैं (चित्र ५ में ३) जीवोज में मींगी से भिन्न एक और बिन्दु जैसी चीज दिखाई देती है; इसके चारों ओर पहिये के आरों के समान रेखाएँ दिखाई देती हैं; इस कुल वस्तु को आकर्षण गोला (Attraction sphere) कहते है। (चित्र ५ में ४)

इस तरह से सेल के मुख्य भाग ये होते हैं:—

(१) जीवोज (Protoplasm)।

(२) जीवोज के भीतर मींगी (Nucleus)।

(३) मींगी के भीतर अणु मींगी (Nucleolus)।

(४) आकर्षण गोला (Attraction sphere)।

इनके अतिरिक्त बहुत सी सेलों में दानेदार ((Paraplasm) या किसी और विशेष प्रकार की चीजें भी पाई जाती हैं। (चित्र ५ में ५); कभी-कभी शून्य स्थान (Vacuole) भी होता है। (देखो चित्र ५ में ६)

बहुसेलयुक्त जीवधारी (Multicellular organism)

बहुसेलयुक्त जीवधारियों के शरीर में एक से अधिक सेलें होती हैं। इनमें से हर एक सेल हर एक काम नहीं करती जैसा कि अमीबा में होता है। जिस मकान में एक से अधिक कोठरियाँ होती हैं वहाँ सब कोठरियाँ एक ही काम में नहीं लाई जाती और न कोठरियाँ हर एक काम में लाई जाती हैं। कोई कोठरी भोजनशाला बनाई जाती है, कोई स्नानगृह और कोई दफ्तर। इसी प्रकार जब शरीर में एक से अधिक सेलें होती हैं तो

वह सब काम जो अमीबा में केवल एक ही सेल को करना पडता था अब इन सेलों में आपस मे बँट जाता है किसी का काम भोजन पचाने का हो जाता है और किसी का मल त्यागने का; किसी का वायु या जल से ओषजन ग्रहण करने का; किसी को शेष शरीर की रक्षा का काम सुपुर्द किया जाता है। जब सेलो को भिन्न-भिन्न काम करने पडते हैं तो उनकी आकृति, आकार, परिमाण में भी भेद हो जाता है। कोई सेल कोमल होती है और कोई कठिन; कोई गोल होती है और कोई लम्बी; कोई मोटी होती है और कोई पतली। जैसा काम किसी सेल को करना पड़ता है उसी के अनुसार उसकी आकृति बदल जाती है। किसी बड़े कारखाने को चलाने के लिए कई प्रकार के मनुष्यो की आवश्यकता होती है; कुछ मनुष्य बुद्धिमान् होने चाहियें जो उसका प्रबन्ध कर सकें; कुछ हृष्ट-पुष्ट होने चाहिये जो ऐसे काम कर सकें जिनमें शारीरिक बल की आवश्यकता हो; ऐसे मनुष्य भी चाहियें जो मशीन चलाना जानते हों, उसकी सफाई भली प्रकार कर सकते हो, कुछ मजदूर भी चाहियें। यद्यपि ये सब मनुष्य ही होते हैं तथापि उनमें योग्यता के अनुसार आपस में भेद होता है। यही हाल शरीर में है।

इस तरह से यदि हम एकसेलयुक्त जीवधारी के शरीर की बहुसेल-युक्त जीवधारी के शरीर से तुलना करे तो दो नियम काम करते हुए दिखाई देते हैं:—

(१) जब शरीर मे सेलो की सख्या बढ़ती है, तो कुल काम जो जीवधारी को जीवित रहने के लिए करना पड़ता है अब इन बहुत सी सेलो में आपस में थोड़ा-थोड़ा बँट जाता है। इसको **श्रमविभाग** (Division of labour) या **कार्यविभाग** कहते हैं।

(२) जब काम सेलों में बँटता है तो उनकी आकृति, आकार, परिमाण में अन्तर आ जाता है इसको **रचनाविभेदन** (Differentia-

tion of structure) या रचनाभेद कहते हैं।

मनुष्य के शरीर में कई प्रकार की सेलें हैं

कार्यविभाग और रचनाविभेदन के कारण प्राणियों के शरीर में कई प्रकार की सेलें पाई जाती हैं। जैसी-जैसी सेलें हमारे शरीर में पाई जाती हैं हम इनको संक्षेपतः नीचे गिनाते हैं। उनका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया जायगा जब हम उन अंगों की रचना लिखेंगे जिनमें वे पाई जाती हैं:—(देखो चित्र ६)

(१) कुछ सेलें चपटी होती हैं; मोटाई बहुत कम होती है; इन सेलों को ऐसा समझिये जैसे ईंटों के मुकाबिले में खपरैल या स्लेट। (चित्र ६ में १) ये सपाट (Squamous) सेलें कहलाती हैं।

(२) कुछ सेलें ईंटों जैसी होती हैं; इनकी लम्बाई अधिक होती है और चौड़ाई और मोटाई कम। ये स्तम्भाकार (Columnar) सेलें कहलाती हैं, कुछ सेलों में लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई बराबर होती हैं; इनको घनाकार (Cubical) सेलें कहते हैं। बहुत सी सेलें बेलनाकार (Cylindrical) होती हैं। ये सेलें अन्नमार्ग की भीतरी दीवार में पाई जाती हैं। (चित्र ६ में २)

(३) बहुत सी सेलों के एक सिरे पर बड़े सूक्ष्म-सूक्ष्म कोमल-बाल जैसे तार निकले रहते हैं। ये तार एक ओर को गति किया करते हैं। ऐसी सेलें कंठ, टेंटुवे, वायु प्रणालियों की भीतरी दीवार में और अन्य कई स्थानों में पाई जाती हैं; देखो (चित्र ६ में ३) ये लोमस (Ciliated) सेलें हैं।

(४) कुछ सेलें गोलाकार (Spherical) होती हैं। पास-पास रहने से जो दबाव एक सेल का दूसरी सेल पर पड़ता है उसके कारण कुछ सेलें अठपहलू या छः पहलू दिखाई देने लगती हैं। ऐसी सेलें यकृत (जिगर) में मिलती हैं। (चित्र ६ में १६)

(५) कुछ सेले बीच में से मोटी होती है और उनके सिरे नोकीले होते है ये **तर्क्वाकार** (Spindle shaped) सेलें कहलाती हैं । ये सेले सौत्रिक तंतु में पाई जाती है। (चित्र ६ मे ५)

(६) कुछ सेलें ऐसी होती हैं जैसे छोटी मकड़ी; बीच में से मोटी होती है और इस मोटे गात्र से मकडी के पैरो के सदृश बहुत से तार निकले रहते है। ये **मर्कटकाकार** (Spider cell) सेलें अस्थि (हड्डी) में पाई जाती हैं। (चित्र ६ में ६)

(७) बहुत सी सेले सूची (Pyramid) जैसी होती है। इनके कोनो और तलो से बहुत से तार निकलते रहते हैं। ये **सूच्याकार** (Pyramidal) सेलें मस्तिष्क मे पाई जाती हैं। (चित्र ६ में ७, ८)

(८) कुछ सेलें लहसुन या शलजम जैसी होती हैं; इनमें भी बहुत से तार होते है। ये भी मस्तिष्क मे पाई जाती है। (चित्र ६ मे १०)

(९) कुछ सेल सर्प जैसी होती है इनमें एक मोटा सिरा होता है जिससे एक लम्बा और पतला पूंछ जैसा भाग लगा रहता है। ये सेलें मनुष्य के अंड में बनती है और **शुक्रकीट** (Spermatozoon) कहलाती है। (चित्र ६ में ११)

(१०) ऊपर गिनाई हुई सेलो के अतिरिक्त और कई प्रकार की सेलें होती हैं जैसे मास (Muscle) सेलें (चित्र ६ मे १३, १४, १५); रक्त की सेलें (चित्र ६ मे १२); कारटिलेज (Cartilage) की सेलें (चित्र ६ मे १७); मज्जा की बहु-मीगीवाली सेलें (चित्र ६ में १८); चक्षु, कर्णादि अगों मे पाई जाने वाली विशेष प्रकार की सेलें।

शरीर में सेलों के अतिरिक्त और वस्तुएँ भी हैं

जैसे मकान में केवल ईटें ही नही होती; ईटो को छोड कर और भी कई चीजें होती है जैसे चूना, लोहे के शहतीर, कड़ियाँ; वैसे ही

चित्र ६ भाँति भाँति की सेलें

पृष्ठ २० के सम्मुख
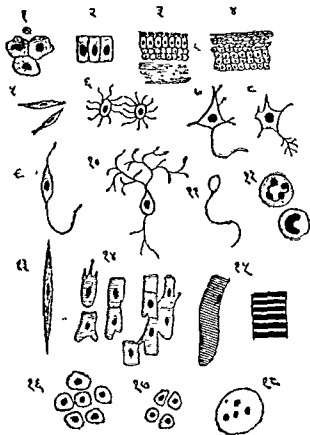
यद्यपि सेलें शरीर में मुख्य चीजें हैं, तथापि उनके अतिरिक्त और भी चीजें रहती हैं यथा—मकान के चूने की तरह शरीर में भी एक ऐसी वस्तु पाई जाती है जो सेलों के बीच में रहती है और उनको एक दूसरे से जोडने का काम देती है। यह मसाला (Cementing substance) कही अधिक होता है और कहीं इतना कम की भली प्रकार मालूम भी नही होता।

तीसरी चीज़ जो शरीर मे रहती है वह बहुत बारीक बारीक सूत्र है। इन सूत्रों के परस्पर मेल मे जालियाँ और चादरें बन जाती हैं। इन जालियों के छिद्रों में सेलें फँसी रहती है। इन सूत्रो और सेलो से बनी हुई चादर को झिल्ली (Membrane) कहते हैं। कही सेले अधिक होती है और कही कम। कई स्थानों में इन सूत्रों से निर्मित चादरों के पृष्ठों पर पतली-पतली सेलों की तहें (स्तरें) (Layers) बिछी रहती हैं। कहीं-कहो जो सेलें इन सूत्रों के बीच में होती है उनमें चर्बी (वसा) भरी रहती है; इन चादरों में ऐसी सेलों के लोथड़े रहते हैं। ऐसी चादर को वसामय झिल्ली (Fatty membrane) कहते हैं। हमारी त्वचा के नीचे दो तीन स्थानों को छोड़कर हर जगह वसामय झिल्ली रहती है। बहुत से कोमल अंग झिल्लियों से ढँके रहते है।

जिन सूत्रों से ये चादरें बनती है वे दो प्रकार के होते हैं:—

(१) श्वेत　　(चित्र ७ में २)

(२) पीले　　(चित्र ७ में १)

पीले सूत्र खींचने मे बढ जाते हैं और फिर सिकुड़ कर पूर्व दशा को प्राप्त होते हैं अर्थात् वे रबड़ की भाँति स्थिति-स्थापक (Elastic) होते हैं। श्वेत सूत्र ऐसे नही होते।

इन तीनों चीजों के अतिरिक्त शरीर में तरल (Fluid) भी रहता है। इस तरह से शरीर में चार प्रकार की चीजें रहती है:—

(१) सेलें (Cells)।
(२) मसाला जो सेलो को आपस में जोडता है (Cementing substance)।
(३) सूत्र (Fibres)।
(४) तरल (Fluid)।

चित्र ७ सौत्रिक तंतु (Fibrous tissue)
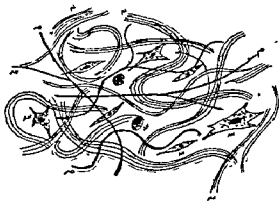
१ =पीले सूत्र २ =श्वेत सूत्र ३ = सेलें

शरीर के अंग

सेलो, सूत्रो, सेलो को जोडनेवाले मसाले और तरल से समस्त शरीर निर्मित है। शरीर के छोटे-छोटे भागों को अंग (Organ) कहते हैं जैसे हाथ, पैर, जंघा, हृदय, अन्न, चक्षु। कुछ अग ठोस होते हैं जैसे बाहु, जंघा, यकृत; कुछ अग पोले होते हैं और थैली के समान होते हैं जैसे मूत्राशय (Urinary bladder), शुक्राशय (Seminal vesicle) आमाशय (Stomach), गर्भाशय (Uterus), कुछ अग नलियों

(Tubular) के सदृश होते हैं जैसे रक्त की नलियाँ, पाचक रसों की नलियाँ, शुक्र की नलियाँ, मूत्र की नलियाँ।

शरीर की एक राज्य से तुलना

शरीर एक बड़े राज्य के समान है। राज्यशासन का कुछ काम कई विभागों के सुपुर्द रहता है और ये विभाग अपने अपने कार्यों की पूर्ति के लिये उत्तरदाता होते हैं। ऐसे ही शरीर के भी कई विभाग हैं। कई-कई अंगों से मिलकर एक एक विभाग बनता है। शरीर के विभागों को संस्थान (System) कहते हैं। जिन अंगो द्वारा शरीर का पोषण होता है अर्थात् जिन अंगों में भोजन पचता है और उससे आवश्यक पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं उन सब अंगों को मिलाकर एक संस्थान बनता है; और इसको **पोषण संस्थान** (Digestive system) कहते हैं। ऐसे ही उन सब अंगों से जिनका कार्य रक्त को शरीर भर में भ्रमण कराने का है रक्त **संचालक या (रक्तवाहक) संस्थान** (Circulatory system) बनता है। ऐसे ही और कई संस्थान हैं। एक संस्थान के सब अंग एक दूसरे के सहकारी तो होते ही हैं, सब संस्थान भी एक दूसरे के सहकारी होते हैं। यदि यह सह-व्यापार (Co-operation) बिगड़ जाय तो शरीर का काम अच्छी तरह न हो।

शरीर के मुख्य संस्थानों के नाम

(१) **अस्थिसंस्थान**—हड्डियाँ (Osseous system)।

(२) **संधिसंस्थान**—अस्थियों के जोड़ (Joints)।

(३) **मांससंस्थान**—मांस या पेशियाँ। (Muscular system)

(४) **रक्त और रक्तवाहक संस्थान** (Circulatory system) —रक्त और वे अंग जिनकी सहायता से रक्त समस्त शरीर में भ्रमण करता है जैसे हृदय, रक्तवाहक नलियाँ।

(५) श्वासोच्छ्वास संस्थान (Respiratory system)—वे अंग जिनसे हम श्वास लेते हैं—नासिका, टेंटुआ, फुप्फुस आदि।

(६) पोषण संस्थान (Digestive system)—इन अंगों द्वारा हम भोजन खाते और पचाते हैं—आमाशय, अन्न, यकृत आदि।

(७) मूत्रवाहक संस्थान (Urinary system)—इन अंगों में मूत्र बनता है और शरीर से बाहर निकलता है—वृक्क, मूत्राशय आदि।

(८) वात या नाड़ी संस्थान (Nervous system)—इसमें मस्तिष्क और वे अंग हैं, जिनके द्वारा मस्तिष्क शेष शरीर पर शासन करता है—मस्तिष्क, नाड़ियाँ, वातसूत्र आदि।

(९) विशेष ज्ञान इन्द्रियाँ (Special senses)—चक्षु, कर्ण, त्वचा, नासिका, जिह्वा।

(१०) उत्पादक संस्थान (Reproductive system)—वे अंग जिनके द्वारा सन्तान उत्पन्न की जाती है जैसे अंड, शिश्न, योनि, गर्भाशय आदि।

अध्याय २
शरीर के अङ्गों के नाम

शरीर के तीन बड़े भाग :—

(१) शिर (सिर)

(२) ग्रीवा (गरदन)

(३) धड़; धड़ से ऊपर हाथ और नीचे पैर जुड़े रहते हैं।

सिर शरीर के उस भाग को कहते हैं जिसमें आँखे, कान, मुह और नाक हैं। शिर और धड़ के बीच में जो भाग है वह ग्रीवा या गरदन कहलाता है। जहाँ ग्रीवा धड़ मे जुड़ती है वहाँ से ऊपर की शाखाएँ (ऊर्ध्व शाखाएँ) (Superior Extremities) निकलती हैं। धड़ के नीचे-नीचे की शाखाएँ (निम्न या अधो शाखाएँ) (Inferior Extremities) लगी रहती है।

धड़ के दो भाग हैं—एक ऊपर का भाग जिसमें पसलियाँ हैं और जिसमें सामने स्तन होते हैं; इसको वक्षःस्थल (Thorax) या छाती कहते हैं। दूसरा नीचे का भाग जिसमें सामने मूंडी या नाभि होती है और जिसके नीच के भाग में पुरुषों के शिश्न (Penis) वा स्त्रियों के भग (Vulva) नामक अंग होते हैं; इसको उदर (Abdomen) या पेट कहते है।

शिर

शिर में सामने दो आँखें या चक्षु (या नेत्र) होते है। आँखों के बीच में नासिका (Nose) या नाक होती है। हर एक आँख के ऊपर कुछ बाल होते है ये भँवें (या भ्रू) कहलाती है। दोनो भँवों (भ्रुओं) के ऊपर जो बालरहित शिर का भाग है उसको मस्तक, ललाट या माथा (Fore-

head) कहते हैं। नासिका के नीचे मुख (मुह) होता है। मुख और नासिका के इधर-उधर आंखो के नीचे गाल (कपोल) होते हैं। मुख दो होठो के बीच में एक रास्ता है; एक ओष्ठ ऊपर होता है (ऊर्ध्व ओष्ठ) यह ऊपर के जवडे या ऊर्ध्व हनु (Upper Jaw) मे लगा रहता है; दूसरा ओष्ठ नीचे होता है (निम्न या अधोओष्ठ) यह नीचे के जवड़े या निम्न हनु (Lower Jaw) मे लगा रहता है। दोनों हनुओ में दांत (दन्त) जडे रहते हैं। प्रौढावस्था में (जवान होने पर) प्रत्येक हनु में सोलह-सोलह दांत होते हैं। ऊपर नीचे मिलाकर ३२ हुए। निम्न ओष्ठ के नीचे जो उभरा हुआ भाग दिखाई देता है वह ठुड्डी (ठोड़ी या चिबुक) (Chin) कहलाता है। पुरुषो में ऊर्ध्व ओष्ठ की त्वचा (Skin) (या खाल) में बाल होते हैं जिनको मूछ कहते हैं; स्त्रियो में केवल रोवाँ सा होता है। नीचे के ओष्ठ और ठोडी पर जो पुरुषों में बाल उगते हैं उनको डाढी या कूर्च (Beard) कहते हैं (कभी-कभी स्त्रियो मे भी इस स्थान में बाल निकल आते है)।[1]

मुह के भीतर दांतो की जडों में लाल मसूड़े (Gums) होते हैं। मुंह खोला जाय तो ऊपर के दांतो के पीछे एक छत दिखाई देगी। इसको तालु (Palate) कहते हैं। तालु का पिछला भाग जो नीचे को हिलता हुआ दिखाई देता है, मुलायम है; अगले कठिन भाग को कठिन तालु (Hard Palate) और पिछले मुलायम भाग को कोमल तालु (Soft Palate) कहते हैं। इस कोमल तालु के पिछले भाग में एक खूंटी सी दिखाई देती है, इसको मुह का काग, कौव्वा, अलिजिह्वा या शुण्डिका (Uvula) कहते हैं।

---

१. लेखक ने यूरोप में बहुत सी स्त्रियों के छोटी सी डाढ़ी और मूंछें देखी हैं।

नीचे के दाँतों के पीछे जिह्वा रहती है। जिह्वा का अगला भाग उसकी फुंग और पिछला भाग उसकी जड़ कहलाता है। मुंह के भीतर जिह्वा की जड़ के दाहिनी और बाईं ओर दो महराबें दिखाई देती हैं। हर एक ओर महराबों के बीच में एक छोटा सा गुठली जैसा अंग रहता है; ये तालु की ग्रन्थियाँ (Tonsils) हैं; कभी-कभी ये सूजकर बड़ी हो जाया करती हैं, विशेषकर उन लोगों में जिनको जुकाम खाँसी बहुत होता है। मुंहका वह भाग जो महराबों के पीछे है, गला या कंठ (Throat) कहलाता है। कंठ के ऊपर के भाग में कोमल तालु के ऊपर और उससे ढके हुए नासिका के पिछले छिद्र या नकने (Nares) होते हैं। जिह्वा की जड़ के पीछे स्वरयंत्र (Larynx) का ऊपर का भाग रहता है जिसके ऊपर एक ढँकना लगा रहता है, जिह्वा को खूब बाहर निकालने पर उस ढँकने का कुछ भाग दिखाई देता है; स्वरयंत्र के पीछे भोजन जाने का रास्ता है।

आँखों के पीछे कान होते हैं। कान और माथे के बीच में जो भाग है वह कनपटी या शंखदेश (Temple) कहलाता है। कानों के पीछे मध्य रेखा में जो शिर का भाग है वह गुद्दी (मन्या) (Nape of Neck) कहलाता है। शिर के सब से ऊँचे भाग को (जहाँ चोटी रखाई जाती है) शीर्ष कहते हैं। शिर का ऊपर का भाग भीतर से खोखला होता है; इसके भीतर मस्तिष्क (Brain) या दिमाग़ रहता है। (चित्र ८)

ग्रीवा (Neck) (चित्र ८)

निम्न हनु के नीचे गरदन के बीच में जो मोटी और कड़ी चीज है वह स्वरयंत्र (Larynx) है; यदि ठोडी ऊपर की जावे तो इसके ऊपर के किनारे और ठोड़ी के बीच में टटोलने से एक कड़ी चीज मालूम होगी यह कंठिकास्थि (Hyoid bone) नामक हड्डी है। भोजन निगलते समय

स्वरयंत्र ऊपर को उठता और फिर नीचे को आता दिखाई देता है। स्वरयंत्र से जो कड़ी नली नीचे को जाती है वह टेंटुवा (Trachea) है (चित्र ८ में ट) स्वरयंत्र और टेंटुवे में होकर ही वायु फेफड़ों में जाती है। टेंटुवें के पीछे अन्न-प्रणाली (Oesophagus) रहती है (चित्र ८ में अ) (बाहर से इसको टटोल नहीं सकते); टेंटुवे के दोनों ओर एक तिर्छा मुलायम डंडा-सा होता है, यदि आप शिर बाएँ कन्धे की ओर मोड़ें तो दाहिनी ओर का डंडा साफ दिखाई देगा; और दाहिनी ओर को मोडें तो बाईं ओर का दिखाई देगा ये गरदन की दो बड़ी माँस पेशियाँ हैं। स्वरयंत्र के दोनों ओर इन पेशियों को अँगुली से दबाने पर एक फड़क मालूम होती है। जिस अंग में यह फड़क है वह रक्त की नली है जो पेशी के नीचे रहती है। ग्रीवा के पिछले भाग को कृकाटिका (Back of neck) कहते हैं; यहाँ मध्य रेखा में टटोलने से जो कड़ी चीजें मालूम होती हैं वे रीढ़ (Vertebral Column) की अस्थियाँ हैं।

वक्ष (वक्षःस्थल); उरस्थल (Thorax) (चित्र ९)

ग्रीवा के नीचे जो धड़ का ऊपर का भाग है उसको वक्ष-स्थल कहते हैं। इसके दाहिनी ओर बाईं ओर भुजा है। ऊपर के भाग में गरदन के नीचे मध्यरेखा के इधर-उधर टटोलने से जो कंधे की ओर को जाती हुई कड़ी चीज मालूम होती है वह हँसली नाम की अस्थि है; इसको अक्षक (Clavicle) भी कहते हैं। दुबले मनुष्यों में यह दूर से उठी हुई देख पड़ती है। हँसली के नीचे कुछ दूरी पर स्तन (Mamma) होते हैं। स्त्रियों में यह बड़े होते हैं और इनमें दुग्ध बनता है। स्तन की घुंडी को स्तनवृन्त या चूचुक (Nipple) कहते हैं। वक्ष के सामने मध्यरेखा में जो चौड़ी अस्थि लगी है उसको वक्षोऽस्थि (Sternum) कहते हैं। हँसली (अक्षक) के नीचे दोनों ओर वक्ष की दीवार में बारह

चित्र ८

वृ—वृहत्‌मस्तिष्क, १—ललाट ध्रुव, २—शंख ध्रुव
३—पाश्चात्य ध्रुव, ल—लघु मस्तिष्क, से—सेतु
सु—सुषुम्ना शीर्षक, घ—ऊर्ध्व शुक्तिका, म—मध्य शुक्तिका,
न—अधः शुक्तिका, कं—कंठ, अ—अन्न प्रणाली,
थ—स्वरयंत्र ट—टेंटुआ

पृष्ठ २८ के सम्मुख

हमारे शरीर की रचना—भाग १. कलछी आकृति—प्लेट २

चित्र ९

पृष्ठ २९ के सम्मुख

बारह पसलियां (Ribs) होती हैं; पतले मनुष्यों में ये पसलियां दूर से दिखाई देती हैं, मोटे मनुष्यों में केवल दबाकर मालूम की जा सकती हैं।
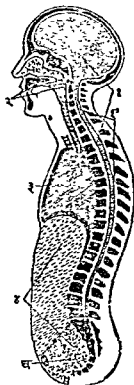
चित्र नं० १०

१—कपाल (Cranium) और काशेरुकी नली
१—काशेरुकी नली (Spinal canal)

भाग को पीठ (पृष्ठ देश) (Back) कहते हैं। पीठ का
पास है उभरा रहता है और कंधे उचकाने से यह उभरा

बारह पसलियाँ (Ribs) होती हैं; पतले मनुष्यों में ये पसलियाँ दूर से दिखाई देती हैं, मोटे मनुष्यों में केवल दबाकर मालूम की जा सकती हैं।

चित्र नं० १०

१—कपाल (Granium) और कशेरुकी नली
१—कशेरुकी नली (Spinal canal)

वक्ष के पीछे के भाग को पीठ (पृष्ठ देश) (Back) कहते हैं। पीठ का वह भाग जो कंधे के पास है उभरा रहता है और कंधे उचकाने से यह उभरा

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति — प्लेट २

चित्र ९
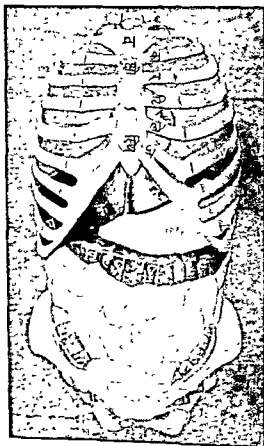
पृष्ठ २९ के सम्मुख

बारह पसलियाँ (Ribs) होती हैं; पतले मनुष्यों में ये पसलियाँ दूर से दिखाई देती हैं, मोटे मनुष्यों में केवल दबाकर मालूम की जा सकती हैं।

चित्र नं० १०
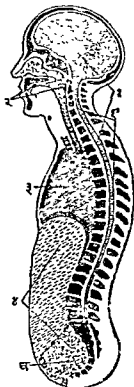
१—कपाल (Cranium) और काशेरुकी नली
१—काशेरुकी नली (Spinal canal)

वक्ष के पीछे के भाग को पीठ (पृष्ठ देश) (Back) कहते हैं। पीठ का वह भाग जो कंधे के पास है उभरा रहता है और कंधे उचकाने से यह उभरा

भाग हिलता दिखाई देता है, ये उभरे हुए भाग खडे (Scapular region) कहलाते हैं। मध्यरेखा में टटोलने से पीठ में रीढ की अस्थियाँ मालूम होती है। वक्ष के अन्दर तीन बडे अग रहते हैं; इनमें से दो फेफड़े या फुप्फुस (Lungs) हैं एक दाहिना दूसरा बायां इन दोनो के बीच में हृदय (Heart) या दिल रहता है। इन अगों के अतिरिक्त वक्ष में रक्त को नलियाँ, अन्नप्रणाली, टेंटुवा, वातसूत्र (Nerve fibres) और लसीका ग्रन्थियाँ (Lymph glands) रहती हैं।

उदर (Abdomen) (चित्र ९, १०, ११)

धड़ एक बडा कोठा है जिसके चौडाई के रुख लगे हुए एक परदे द्वारा भीतर से दो भाग हो जाते हैं—ऊपर का कोष्ठ जिसमें पसलियाँ लगी हैं और जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं वक्ष कहलाता है। परदे के नीचे का कोष्ठ जिसमें पसलियाँ नहीं होती उदर या पेट कहलाता है। जिस परदे द्वारा धड़ के दो भाग हो जाते हे वह मांस का होता है और उसको **वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी** (*Diaphragm*) कहते हैं। वक्षोऽस्थि के नीचे और पसलियो की महराब के बीच में जो भाग है उसको **कौड़ी देश** (Epigastric region) कहते हैं। कौडी के नीचे मध्य रेखा में सूडी या नाभि (Umbilicus) है। मध्य-रेखा में नाभि के नीचे ओर जनन इंद्रियों के ठीक ऊपर टटोलने से एक कड़ी चीज मालूम होती है। यह दो हड्डियों का जोड (**भग संधि**) (Pubic symphysis) है। इस संधि के पीछे उदर में मूत्राशय (स्त्रियो में गर्भाशय भी) रहता है। उदर के पीछे के भाग को **कमर** (**कटि देश**) (Lumbar region) कहते हैं। मध्यरेखा मे टटोलने से इसमें रीढ़ की हड्डियाँ मालूम होती हैं।

उदर के सबसे नीचे के भाग में संधि के नीचे पुरुषों वा स्त्रियों के
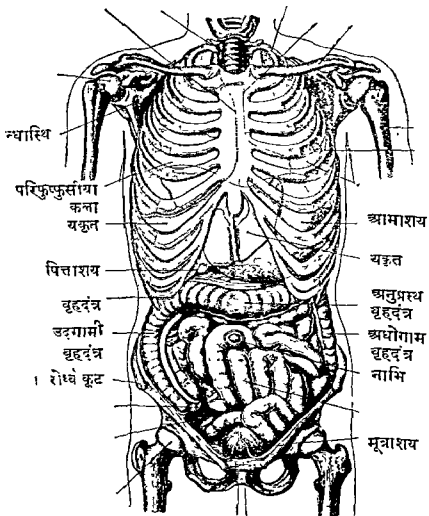
(Bardeleben & Haeckel's A

विशिष्ट अंग होते हैं। पुरुषों में शिश्न (जिसमें मैथुन किया जाता है और जिसमें से मूत्र निकलता है) होता है और शिश्न के नीचे और पीछे एक थैली होती है जिसको अंडकोष या वृषण (Scrotum) कहते हैं। थैली में लटके हुए दो अंड (Testis) होते हैं। स्त्रियों में इस स्थान में जो अंग होते हैं उन सबको मिलाकर भग (Vulva) कहते हैं। भग में दो छिद्र होते हैं एक छोटा जिसमें से मूत्र निकलता है दूसरा बड़ा जो उसके नीचे रहता है, इस बड़े छिद्र द्वारा मैथुन किया जाता है, इसी में से मासिक स्राव निकलता है और बच्चा जन्म लेता है, यह योनिद्वार (Vaginal orifice) है। इन जनन इंद्रियों के पीछे पुरुष और स्त्री दोनों में चूतड़ों के बीच में एक छिद्र और होता है। इसमें से मल निकलता है, इसको मलद्वार (Anus) या चूति कहते हैं।

उदर के भीतर भोजन पचाने और पाचक रस बनाने वाले अंग रहते हैं जैसे आमाशय (Stomach), अंत्र (Intestine), यकृत (Liver) (जिगर), क्लोम (Pancreas), प्लीहा (Spleen)। वृक्क (Kidney) (गुरदे) भी यहीं रहते हैं। उदर का नीचे का भाग एक कटोरे की शकल का है इसमें अंत्र का नीचे का या अंतिम भाग और मूत्र की थैली (मूत्राशय) (Urinary bladder) और ऐसे अंग जो उत्पादन संस्थान के हैं, रहते हैं। पुरुषों में मूत्राशय के पीछे शुक्र या वीर्य की थैलियाँ (शुक्राशय) (Seminal vesicle) रहती हैं। स्त्रियों में मूत्राशय के पीछे गर्भाशय (Uterus) (रहम) रहता है, इस अंग के भीतर गर्भस्थिति होती है। इस अंग के इधर-उधर दो छोटे-छोटे अंग और होते हैं जिनको डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries) कहते हैं।

उदर के इस नीचेवाले कटोरे जैसे भाग को जिसमें उपर्युक्त अंग रहते हैं वस्तिगह्वर (Pelvis) कहते हैं।
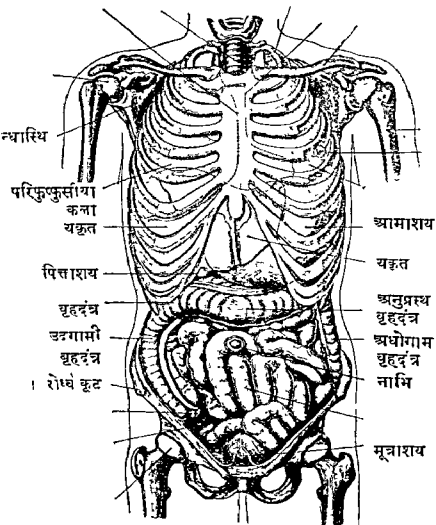
(Bardeleben & Haeckel's Atlas)

पृष्ठ ३१ के सम्मुख

चित्र १२

उर्ध्व शाखाएँ (Superior Extremities) (चित्र १२)

दाहिनी शाखा (भुजा) वक्ष के दाहिनी ओर, बाईं शाखा बाईं ओर रहती है। भुजा का वह भाग जो गरदन के समीप है उभरा हुआ और मोटा होता है और स्कंध या कन्धा (Shoulder) कहलाता है। कन्धे के नीचे बाहु (Arm) (या प्रगंड) होती है। बाहु और वक्ष के बीच में कन्धे के नीचे एक गढ़ा होता है, यहाँ की त्वचा में कुछ बाल होते हैं; इस स्थान को बगल या कक्ष (Axilla) (या कक्षतल)) कहते हैं। बाहु के नीचे कोहनी या कूर्पर (Elbow) है और कोहनी के नीचे अग्रबाहु या प्रकोष्ट (Forearm) है। अग्रबाहु कोहनी के स्थान पर बांह के ऊपर मुड़ जाती है। अग्रबाहु के नीचे कलाई या पहुँचा (Wrist) होता है। कलाई हाथ और अग्रबाहु के बीच के भाग को कहते हैं। पहुँचे के नीचे हाथ या हस्त (Hand) रहता है। हस्त में सामने की ओर एक गढा होता है जिसको हस्ततल या करतल (Palm) या हथेली कहते हैं। हथेली के नीचे पांच अंगुलियां होती है जिनमें मे एक सब से मोटी होती है इसको अंगुष्ठ (Thumb) कहते हैं; एक सबमें पतली और छोटी होती है इसको कनिष्ठा (Little finger) कहते हैं। शेष अंगुलियों में से जो अगुष्ठ के निकट है उसको प्रदेशिनी या तर्जनी (Index finger) कहते हैं और जो कनिष्ठा के पास है वह अनामिका (Ring finger) कहलाती है। अनामिका और तर्जनी के बीच की अगुली को मध्यमा (Middle finger) कहते हैं। अंगुष्ठ के दो अंश होते हैं, और अंगुलियों के तीन तीन। इन अंशों को पोर्वे[1] (Phalanges) कहते हैं, प्रत्येक अंगुली के सिरे पर एक नख (Nail) या नाखून होता है। हाथ के पिछले भाग को करभ (Back of Hand) कहते हैं।

१. संस्कृत शब्द पर्व है।

निम्न (अधो) शाखाएँ (Inferior Extremities)

(चित्र १२)

उदर के नीचे निम्न शाखाएँ होती हैं। घुटने (Knee) और उदर के बीच में जो भाग है उसको ऊरु (Thigh) या जाँघ कहते हैं। जाँघ उदर पर मुड जाती है। जिस स्थान पर यह गति हो सकती है अर्थात् जहाँ से जाँघ का आरंभ होता है वह भाग कुछ दबा रहता है; यह स्थान भग या शिश्न के इधर-उधर होता है इसको वंक्षण (Groin) (या जँघासा) कहते हैं। वंक्षण में अगुली से टटोलने पर छोटी-छोटी गुठलियाँ मालूम होती हैं ये लसीका-ग्रन्थियाँ (Lymph glands) हैं। वक्षण के मध्य में दबाने पर एक फडक भी मालूम होती है; यह उरु या जाँघ की रक्त की नली (धमनी) की फडक है।

पीछे कमर के नीचे मध्य रेखा में एक दरार होती है। इस दरार के इधर उधर दो उभार होते हैं; इन उभारों को चूतड़ (Buttocks) कहते हैं। चूतड़ों के बीच में इस दरार में मलद्वार होता है। चूतड़ों के पास जो जाँघ का पिछला मोटा भाग है वह कूल्हा या नितंब (Hip) कहलाता है; अधिक वसा (चर्बी) के कारण स्त्रियों के कूल्हे पुरुषों के कूल्हों से ज्यादा मोटे होते हैं।

जिस स्थान पर टाँग जाँघ पर पीछे को मुड जाती है वह जानु (Knee) है। जानु के सामने एक हिलनेवाली कड़ी चीज है, यह चाली (Patella) या चपनी नाम की अस्थि है।

जानु के नीचे टाँग (leg) है, इसको जंघा भी कहते हैं; टाँग के नीचे पैर या पद (Foot) है। पैर सामने और पीछे को मुड सकता है, जिस स्थान पर यह गति होती है उसको टखना (Ankle) कहते है। टखने में इधर उधर दो उभार होते हैं ये गट्टे या गुल्फ (Malleolus) कहलाते है। टखने के नीचे जो पीछे को निकला हुआ पैर का भाग है वह

पार्ष्णि (Heel) या एड़ी कहलाता है। पैर के नीचे एक गढ़ा सा होता है यह तला (Sole) (पादतल) है। पैर में पांच अंगुलियाँ है इनके नाम वही है जो हाथ की अंगुलियो के। हाथ के समान अंगुष्ठ में दो, और शेष अंगुलियो में तीन पोर्व होते है।

शरीर की स्थूल रचना

शरीर के किसी अंग की सूक्ष्म बनावट जानने के लिये एक अणुवीक्षण की आवश्यकता है। यंत्रों द्वारा इस अग के बहुत पतले पतले पन्ने (Sections) काटे जाते है और फिर ये पन्ने अणुवीक्षण द्वारा देखे जाते है। पन्ने काटने से पहले उस अंग को कई विशेष साधनों से इस योग्य बना लेना होता है कि उसके पन्ने भली प्रकार कट सके। बनावट अच्छी तरह समझने के लिये इन पन्नों को कई प्रकार के रंगों से रंगने की भी आवश्यकता होती है। परन्तु स्थूल बनावट जानने के लिये इतने साधनों की आवश्यकता नही है; यह शस्त्रों द्वारा अंग को काट छांट कर जानी जा सकती है। जिस विद्या से हमको शरीर की बनावट का ज्ञान होता है वह **व्यवच्छेद विद्या** (Anatomy) (**शवच्छेद विद्या**) या **छेदन शास्त्र** (Science of Dissection) कहलाती है, क्योकि यह विद्या शरीर को काट छांटकर छोटे-छोटे टुकड़े करके सीखी जाती है। जो वैज्ञानिक इस विद्या में निपुण होता है उसको **व्यवच्छेदक** (Anatomist) कहते है।

जो विद्या हमको अंगों के कार्य बताती है उसको **इन्द्रियव्यापार शास्त्र** (Physiology) कहते है। यदि हम कहें कि हृदय शरीर के अमुक स्थान में अवस्थित है और उसका यह आकार और परिमाण है और उसकी ऐसी रचना है तो हृदय का यह सब वृत्तान्त छेदन शास्त्र में आवेगा। परन्तु जब हम यह बतलायें कि हृदय शरीर में ये ये कार्य करता है तब ये बातें इन्द्रियव्यापार शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली होगी।

किसी अग का छेदन किये विना अर्थात् उसकी स्थूल वा सूक्ष्म रचना जाने बिना उसके कार्य भली प्रकार नही जाने जा सकते। इस कारण अग के कार्य बतलाने से पहले उसकी रचना बतलानी आवश्यक है।

वैज्ञानिकों ने अगो की रचना तो अच्छी तरह से जान ली है परन्तु वे सब अगो के कार्य पूर्ण रीति से अभी तक नही जान सके हैं। किसी किसी अंग के कार्यों के विषय मे बड़े-बडे वैज्ञानिकों मे आपस मे कुछ मतभेद भी है। हम इस लघुपुस्तक में केवल वही बातें लिखेंगे जिनको सब वैज्ञानिक मानते है, मतभेद की बातें लिखकर पाठको को भ्रम में न डालेंगे।

बाहु की स्थूल रचना

शरीर की स्थूल बनावट मृत शरीर को शस्त्रों द्वारा विधिपूर्वक काटने से सीखी जाती हैं। मान लो कि हम बाहु की बनावट जानना चाहते हैं:—बाहु के ऊपर बालो वाली जो चीज मढी हुई है, उसको **त्वचा** (खाल) कहते है। हम सब से पहले चाकू से इस त्वचा में एक **लम्बा चीरा** (Incision) देते है अर्थात् उसको काटते है जीवित शरीर में त्वचा को काटने से एक लाल तरल निकलता है, इसको **रक्त** कहते है यह मृत शरीर में नही निकलता); चीरा देकर और फिर कटे हुए सिरो को चिमटी (Forceps) से पकड़कर हम चाकू (Scalpel) की सहायता से त्वचा को उसके नीचे रहनेवाली चीजो से धीरे-धीरे अलग करते हैं। अलग करने पर हमको पता लगता है कि त्वचा बाहु के ऊपर तकिये के गिलाफ की तरह नही चढी हुई है, प्रत्युत वह अपने नीचे की चीजों से उसी तरह जुडी हुई है जैसे कि किसी फल में छिलका गूदे से जुडा रहता है।

त्वचा के हटाने पर उसके नीचे पडी हुई एक पीली-पीली चिकनाई-दार वस्तु दिखाई देती है; वैज्ञानिक इस पीली वस्तु को **वसा** (Fat) कहते हैं; साधारण बोलचाल मे इसको चर्बी कहते हैं। मोटे मनुष्यो में पतले

मनुष्य की अपेक्षा अधिक चर्बी होती है। यदि हम सँभालकर काटें, तो हम इस चर्बी को त्वचा की भाँति एक तह में उठा सकते हैं। इस चर्बी को काट छाँट कर देखने पर मालूम होता है कि वास्तव में चर्बी के छोटे-छोटे टुकड़े कुछ सूत्रों के बीच में फँसे रहते हैं; इन सूत्रों के परस्पर मेल से एक जाली-सी बन जाती है जिसके छिद्रों में ये वसा की गाँठें फँसी रहती हैं। इस जाली को विज्ञान की परिभाषा में झिल्ली (Membrane; Fascia) (या कला) कहते हैं; वसा से भरी रहने के कारण वह वसामय झिल्ली कहलाती है।

यदि हम वसामय झिल्ली को और ध्यान से काटें, तो उसमें रमे हुए कुछ श्वेत रंग के मोटे और पतले सूत्र दिखाई देंगे। ये उन सूत्रों से जिनसे झिल्ली निर्मित है भिन्न हैं और खींचने पर शीघ्र नहीं टूटते, ये वात (या नाड़ी) सूत्र (Nerve fibres) हैं और मस्तिष्क से आकर त्वचा की ओर जा रहे हैं, इनकी सूक्ष्म शाखाएँ त्वचा में लगी हुई देखी जा सकती हैं।

त्वचा और वसा के बीच में या वसा के भीतर कुछ चौड़ी डोरियाँ भी दिखाई देती हैं; काटने पर ये भीतर से खोखली मिलती हैं; ये वे डोरियाँ हैं जो जीवित शरीर में त्वचा में चमकती हुई नीली-सी दिखाई देती हैं; इनमें रक्त रहता है। ये एक प्रकार की रक्त की नलियाँ (Blood Vessels) हैं।

यदि हम वसामय झिल्ली को धीरे-धीरे एक तह में हटा दें, तो हमको उसके नीचे लाल-लाल चीज चमकती हुई दिखाई देगी; यह मांस (Muscle) है। वसामय झिल्ली और मांस के बीच में अर्थात् मांस को ऊपर से ढाँके हुए एक पतली झिल्ली रहती है, जिसमें वसा नहीं होती। यह मांस आदरक झिल्ली (Fascia of muscle) है। यह झिल्ली भी सूत्रों से निर्मित है। शरीर में मांस छोटे-छोटे बंडलों में विभक्त रहता है। ये टुकड़े आपस में केवल कुछ सूत्रों द्वारा ही जुड़े रहते हैं; इस सौत्रिक वस्तु

को हटाकर हम मांस के टुकड़ों को पृथक्-पृथक् कर सकते हैं; छेदन शास्त्र की परिभाषा में मांस के एक टुकड़े को जो और टुकड़ों में सहज ही बिना मांस को चीरे और मांस-सेलो को तोड़े पृथक् किया जा सकता है मांसपेशी (Muscle) या केवल पेशी कहते हैं।

किसी अंग का कुल मांस प्रायः एक से अधिक पेशियों के आपस में मिले रहने से बनता है। मांसपेशियों की लम्बाई चौड़ाई भिन्न-भिन्न होती है। कोई मोटी और छोटी होती है। कोई पतली और लम्बी। प्रत्येक मांसपेशी वास्तव में छोटे-छोटे गट्ठों का एक समूह होती है, ये छोटे-छोटे गट्ठे सौत्रिक तन्तु (Fibrous tissue) द्वारा जुड़े रहते हैं। मांसपेशियों के बीच में झिल्ली रहती है, कहीं-कहीं कुछ वसा भी होती है।

यदि हम ध्यान से देखें, तो मांसपेशियों के बीच में या उनके भीतर घुसती हुई या उनमें बाहर आती हुई कुछ पतली और मोटी श्वेत डोरियाँ मिलेंगी। उनमें से कुछ भीतर से खोखली होती हैं; ये रक्त की नलियाँ हैं। कुछ ठोस होती हैं और दबाने से कड़ी मालूम होती हैं; ये वात-रज्जुएँ (या नाड़ियाँ) (Nerves) हैं। वसा में जो वातसूत्र देखे थे, वे इन वातरज्जुओं से ही निकल कर गये थे।

यदि हम मांसपेशी को हटाना चाहें तो मालूम होगा कि उसको हटाना सहज नहीं; वह कहीं न कहीं अपने नीचे रहने वाली चीजों से जुड़ी हुई है। अब हम मांस को काट कर हटायें तो उसके नीचे एक बहुत कठोर चीज मिलेगी, यह चीज वसा और मांस की तरह चाकू से शीघ्र नहीं कटती, यह अस्थि (Bone) है। बाहु में केवल एक ही अस्थि होती है। अस्थि के ऊपर एक पतली झिल्ली लगी रहती है; इसको अस्थ्या-वरक या अस्थिवेष्ट (Periosteum) कहते हैं। अस्थि आरी से कट सकती है। काटने पर वह बीच में से खोखली दिखाई देगी; उसके भीतर

जो चिकनाईदार गुलाबी मायल पीला सा गूदा भरा रहता है, उसको मज्जा (Bone marrow) कहते हैं।

चित्र १३ बाहुका व्यत्यस्त काट
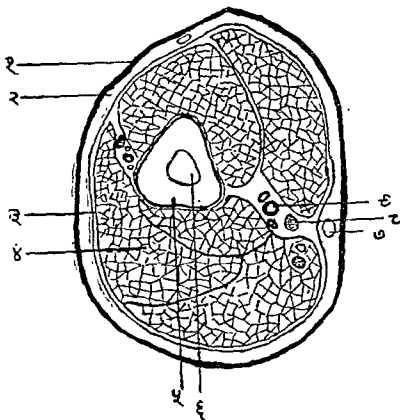
यदि हम बाहु को आरी से मोटाई के रुख बीच में से काट डालें, तो कट हुए भाग में (व्यत्यस्त काट) (Transverse section में) ये चीजें दिखाई देंगी (देखो चित्र १३)।

(१) मध्य में कटी हुई अस्थि है, जिसके ऊपर अस्थिवेष्ट चढा है (चित्र १३ में ५) ; अस्थि के भीतर मज्जा है (चित्र १३ में ६)।

(२) अस्थि के बाहर मासपेशियाँ है (चित्र १३ में ४)।

(३) मास में और मासपेशियों के बीच में वात-रज्जुएँ (चित्र १३ में ८) वा रक्त की नलियाँ (चित्र १३ में ९) है।

(४) मास के ऊपर मांसावरक (चित्र १३ में ३)।

(५) वसामय झिल्ली (चित्र १३ मे २) और उसमें रमते हुए वात-सूत्र वा रक्त को नलियाँ (चित्र १३ में ७)।

(६) सब से बाहर त्वचा (चित्र १३ मे १)।

शरीर के तन्तु (Tissues of the body)

छेदन शास्त्र के अनुसार कुल शरीर सेलो (वा मसाला) सूत्रो और तरल से निर्मित है। परन्तु इंद्रियव्यापार शास्त्र की दृष्टि से देखने पर इन सेलो, सूत्रो वा तरल से बने हुए शरीर भर में चार प्रकार की चीजे मिलती है। इनमें से हरएक का जुदा-जुदा विशेष गुण है। ये चीजें शरीर के तंतु कहलाती है। शरीर के किसी भाग को लें उसकी बनावट में इन ततुओ में से कोई न कोई तंतु अवश्य मिलेगा। बहुधा सभी तंतु थोडे-थोडे हर एक अग में पाये जाते है —

(१) मासतंतु (Muscular tissue)—आवश्यकतानुसार सिकुड कर छोटा हो जाना और फिर अपने पूर्व परिमाण को प्राप्त कर लेना इस ततु का विशेष गुण है। इस तंतु से शरीर की सब गतियाँ होती है।

(२) वाततंतु (Nervous tissue)—मस्तिष्क (दिमाग) और मस्तिष्क से निकली हुई नाड़ियाँ वा वातसूत्र इसी तंतु से बनते है। वातसूत्र बिजली के तारो के समान काम करते है; वे मस्तिष्क की आज्ञा और अगो को और इन अंगों की सूचनाएँ मस्तिष्क को ले जाते है। सोचने

विचारने का काम मस्तिष्क करता है। यह गुण किसी और तंतु में नहीं है।

(३) बंधक तंतु (Connective tissue)—इस तंतु से एक अंग दूसरे अग से बँधा रहता है; शरीर के कोमल भागों को सहारा भी मिलता है। बंधक तंतु कई कई प्रकार के है जैसे:—

(१) सौत्रिक तंतु (Fibrous tissue)—जिससे झिल्लियाँ और बंधन बनते है;

(२) वसामय सौत्रिक तंतु (Adipose tissue)—इस तंतु में सूत्रों के बीच से वसा रहती है;

(३) अस्थि (Bone)—जो सूत्रों, सेलों और खनिज पदार्थ (Minerals) से बनती है।

यह शरीर के कोमल भागों को सहारा देती है; उससे मांस-पेशियाँ लगी रहती हैं;

(४) कारटिलेज और तरुण अस्थि (Cartilage)—ये अस्थि का सा काम देती है।

(५) रक्त (Blood)—रक्त तो तरल होता है फिर यह बाँधने जोड़नेवाले तंतुओं की श्रेणी में क्यों रक्खा गया? उत्तर यह है कि रक्त शरीर के एक अग का दूसरे अंग से विशेष विधि से सम्बन्ध कराता है; वह एक अग से पोषणकारक पदार्थ लेकर दूसरे अंग को देता है; बहुत से अंगों से मलिन पदार्थ इकट्ठे करके ऐसे अंगों में ले जाता है जो इन पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देते हैं। यदि शरीर के अंगों में इस प्रकार सम्बन्ध करानें वाला यह तरल न रहे, तो सब काम क्षण भर में बन्द हो जावें।

(४) पृष्ठाच्छादक तंतु (Epithelial tissue)—अंगों के पृष्ठों या तलों को ढाँकनेवाला तंतु—यह तंतु पृष्ठों पर रहता है और पृष्ठ के नीचे रहनेवाली चीजों की रक्षा करता है। इस तंतु में केवल सेलें ही होती हैं; सूत्र नहीं होते। इन सेलों में मांस या वातसेलों का सा कोई

चित्र १४ मनुष्य का कंकाल
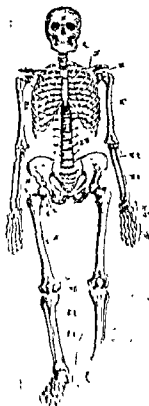
चित्र १५ घोड़े का कंकाल
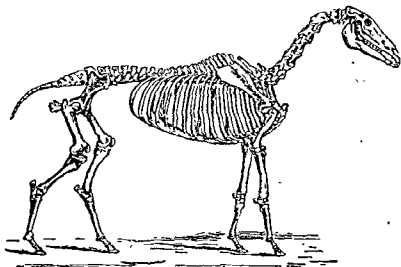
चित्र १६ गाय का कंकाल
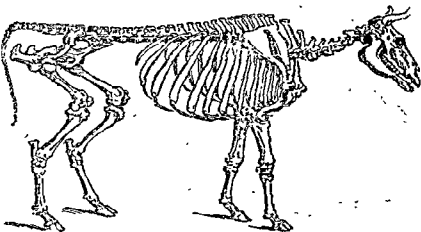
From Protheroe's Handy Natural History by kind permission.

चित्र १७ बकरे का कंकाल
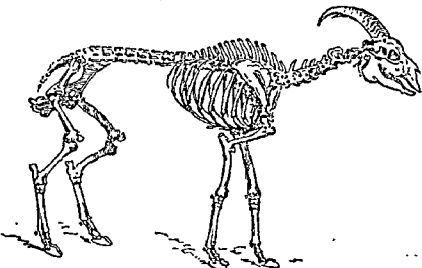
चित्र १८ हाथी का कंकाल
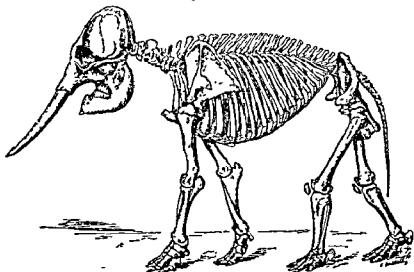
Protheroe's Handy Natural History.

चित्र १९ जिराफ़ का कंकाल
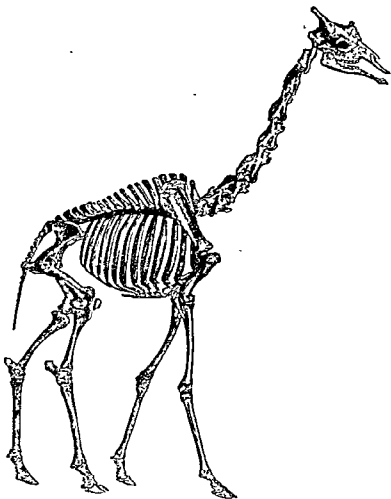
From Protheroe's Handy Natural History.

चित्र २० शेर का कंकाल
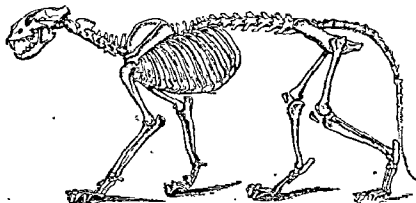
From Protheroe's Handy Natural History.

अस्थियों के कार्य

अस्थियो से शरीर में दृढता आती है; दृढता से शरीर की शकल एक सी रहती है; दबाव पड़ने से अगो की आकृति में बहुत अन्तर नही आ सकता; यदि टाँगो मे अस्थि न होती, तो खड़ा होना असम्भव होता, टाँग की आकृति दबाव के अनुसार तुरन्त बदल जाती। जब टाँग या जाँघ की अस्थियाँ टूट जाती है, तब उस टाँग के सहारे खडा होना असम्भव हो जाता है, क्योकि अस्थि के टूट जाने से शरीर का भार सभालने के लिए जितनी दृढता की आवश्यकता है, वह नही रहती।

अस्थियाँ कोमल अगो को सहारा देती है और उनकी रक्षा करती है। कई अस्थियो के परस्पर मेल से शरीर में कोष्ठ (Cavities) भी बन जाते है जिनके भीतर कोमल अंग सुरक्षित रहते है। मस्तिष्क आठ अस्थियो से बने हुए एक डिब्बे के भीतर रहता है। वक्ष की दीवारें अस्थियो के

कारण मजबूत होती हैं; इस कोष्ठ में भी शरीर के तीन बड़े आवश्यक कोमल अंग रहते हैं। उदर के वस्तिगह्वर नामक भाग की दीवारें भी अस्थि से बनी है।

मांसपेशियाँ बहुधा अस्थियों से लगी रहती हैं और उन्ही के सहारे से सिकुड़ कर शरीर में गतियाँ उत्पन्न करती हैं।

अस्थियों की संख्या

प्रौढ मनुष्य के कंकाल में (२५–२६ वर्ष की आयु वाले मनुष्य के शरीर में) छोटी बड़ी कुल २०६ अस्थियाँ होती हैं। जितनी अस्थियाँ पुरुष के शरीर में है, उतनी ही स्त्री के शरीर में होती है।

कंकाल के भाग

कंकाल के पाँच भाग हैं:—

(१) कर्पर या करोटि या खोपड़ी—(Skull)—यह २२ अस्थियों से बनी है।

(२) पृष्ठवंश, मेरुदण्ड या रीढ़ (Vertebral column) या कशेरु—यह २६ अस्थियों से बना है।

(३) ऊर्ध्व शाखाएँ (Upper extremities)—प्रत्येक शाखा में ३२ अस्थियाँ हैं—दोनों मे ६४।

(४) निम्न शाखाएँ (Lower extremities)—प्रत्येक शाखा में ३१ अस्थियाँ हैं—दोनो में ६२।

(५) वक्षःस्थल (Thorax) में २५ विशेष अस्थियाँ हैं।

(६) ग्रीवा में स्वरयंत्र और ठोड़ी के बीच में एक कंठिकास्थि (Hyoid) नाम की अस्थि होती है। कर्ण (Ear) में तीन छोटी अस्थियाँ होती हैं; दोनों ओर ६।

कुल मिलाकर = २०६

अस्थियों के विषय में कुछ साधारण बातें

(१) रग-राफ की हुई अस्थि धूसर श्वेत (Grey) होती है। जीवित अवस्था में रक्त के कारण रग में कुछ लाली रहती है।

(२) आकार, परिमाण—सब अस्थियो की आकृति, आकार परिमाण एक जैसा नही होता। कोई अस्थि लम्बी होती है जैसे जघा और बाहु की; कोई छोटी होती है जैसे कलाई की; कुछ अस्थियाँ सपाट और चौडी होती हैं जैसे खोपड़ी की कई अस्थियाँ। कुछ अस्थियाँ विरूप (Irregular) होती हैं उनकी गिनती न लम्बी अस्थियों में हो सकती है न छोटी और न सपाट अस्थियों में; इनमें कई प्रकार के उभार होते हैं जैसे पृष्ठवंश की अस्थियाँ।

अस्थियों की नामकरणविधि (Nomenclature)

(१) बहुत सी अस्थियों के नाम देशानुसार (Regionwise) रक्खे जाते हैं जैसे जो अस्थि जाँघ या ऊरु में होती है, वह ऊर्वस्थि कहलाती है; जो कूल्हे या नितंब में है, वह नितंबास्थि कहलाती है; ऐसे ही नासिका की अस्थि को नासास्थि कहते हैं।

(२) कुछ अस्थियो के नाम उनकी आकृति के अनुसार रक्खे जाते हैं जैसे त्रिपार्श्विकास्थि, मटराकार अस्थि (जो मटर के सदृश है); जतूकास्थि (जिसकी शकल जतूक जैसी होती है); घनास्थि; सीपाकृति या शुक्तिकास्थि (सीपी जैसी)।

(३) किसी-किसी अस्थि में कोई ऐसी विशेषता होती है, जो किसी और अस्थि में न हो जैसे बहुछिद्र अस्थि (जिसमें बहुत से छिद्र हो)।

(४) दिशा अनुसार भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे खोपड़ी की अस्थियों का:—पार्श्विकास्थि; पश्चात् अस्थि।

(५) और कई कारणों से भी नाम पड़ जाते हैं जैसे कशेरुका (रीढ की हड्डी); अक्षक।

अब हम हर एक अस्थि का थोड़ा-थोड़ा वर्णन करेंगे।

अस्थि सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या

प्रवर्द्धन (Process) = अस्थि का बाहर को निकला हुआ भाग
कण्टक (Spine) = नोकीला प्रवर्द्धन
अर्बुद (Protruberance) = अस्थि का उभरा हुआ भाग
कूट (Process) = उभार
पिण्डक (Tuberosity) = उभार
तोरणिका (Ridge) = उभरी हुई रेखा
खात (Fossa) = गढ़ा
पीठ (Depression) = गढ़ा
उलूखल (Deep depression) = गहरा गढ़ा
शिखरक (Trochanter) = चोटी जैसा उभार
अधोभाग (Lower part; base) = अस्थि की तली या चौड़ा भाग
छेद या भंग (Notch) = अस्थि की घाई
शोफ; उद्भेद (Small projection) = छोटे उभार
परिखा (Groove) = दो उभरी हुई रेखाओं के बीच की नाली या अंतर
स्थालक (Facet) = कम गहरा गड्ढा जहां कोई और अस्थि आकर मिले;

	कभी-कभी इस शब्द का प्रयोग सपाट या उभरे स्थान के लिए जहां दूसरी अस्थि आकर मिले होता है
शिर (Head)	= अस्थि का गोल भाग जिसके द्वारा वह और किसी अस्थि से मिली रहती है।
ग्रीवा (Neck)	= शिर के नीचे का कुछ दबा हुआ भाग
गात्र, शरीर या पिंड (Body)	= लम्बी अस्थियों का बीच का लम्बा भाग; छोटी अस्थियों का मोटा या स्थूल भाग
धारा (Border)	= किनारा
कोण (Angle)	= कोना
तुण्ड (Beak)	= चोंच जैसा उभार
उदरतल (Ventral)	= सामने का या उदर की ओर का पृष्ठ या भाग
पृष्ठ तल (Dorsal)	= पिछला या पीठ की ओर का भाग
कोटर (Sinus)	= अस्थियों का खोखला और वायु से भरा हुआ भाग
–आनुगा	= 'ओर का; जैसे कक्षानुगा = कक्ष की ओर का
–आन्तरिक	= अन्तर में रहने वाला जैसे अस्थ्यान्तरिका = दो अस्थियों के अन्तर या बीच में रहनेवाला
दूरस्थ (Distal)	= अस्थियों का वह भाग या तल या सिरा जो मध्य रेखा या धड़ से दूर रहता है।

समीपस्थ (Proximal) = अस्थियों का वह भाग या तल जो मध्य रेखा (Median line) या धड़ (Trunk) के निकट रहता है; लम्बी अस्थियों का ऊपर का सिरा समीपस्थ भाग और नीचे का सिरा दूरस्थ भाग होता है।

ऊर्ध्व शाखाओं की अस्थियाँ

कंधे या स्कंध के बनाने में तीन अस्थियाँ सहायता देती हैं; इनमें से एक अस्थि बाहु की है जिसका वर्णन हम आगे करेंगे। शेष दो अस्थियों में से एक वह है, जिसको हम पीछे अक्षक और हँसली (Clavicle) के नाम से बतला चुके हैं, यह वक्ष के अगले और सबसे ऊपर के भाग में रहती है। दूसरी अस्थि पीठ के उस भाग में रहती है, जिसको खवा कहते है इस अस्थि को स्कंधास्थि (Scapula) कहते हैं। ये दोनों अस्थियाँ अर्थात् अक्षक व स्कंधास्थि वक्ष की अस्थियों से मांस और बन्धन (Ligaments) द्वारा बँधी रहती है।

(१) अक्षक या हँसली (चित्र २१, २२) यह लम्बी अस्थि है। इसके दो सिरे होते है जिनमे से एक सिरा वक्ष की सामने की चौडी अस्थि (वक्षोऽस्थि; Strenum) के ऊपर के भाग से मिला और बँधा रहता है; दूसरा सिरा कंधे में रहता है और स्कंधास्थि के अमकूट (Acromion) नामक भाग से बंधा रहता है। इस अस्थि के नीचे पहली पसली रहती है; इन दोनों के बीच में एक मासपेशी रहती है जिससे ये दोनों अस्थियाँ आपस में बँधी रहती है इस पेशी को "अक्षकाधरा पेशी" (Subclavius) कहते है। यह अस्थि दो जगह से बल या मोड़ खाये रहती है। दुर्बल मनुष्यों मे यह अस्थि दूर से उभरी हुई दिखाई देती है और उसका टेढापन स्पष्ट मालूम होता है। स्थूल शरीर में हम इस अस्थि का टेढापन दबा कर मालूम कर सकते है। अस्थि की लम्बाई ६–७ इंच होती है।
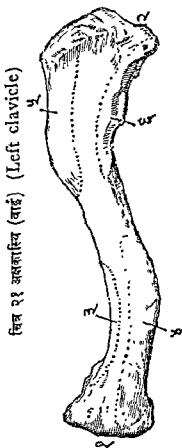
चित्र २१ अक्षकास्थि (बाईं) (Left clavicle)

१—वक्षोऽस्थि की ओर का सिरा (Sternal end), २—स्कन्धास्थि की ओर का सिरा (Acromial end), ३—उरः कर्ण मूलिका पेशी (Sterno-mastoid), ४—उरस्या बृहती पे० (Pectoralis major), ५—कशेरु अंस अक्षका पे० (Trapezius), ६—अंसाच्छादनी पे० (Deltoid),

चित्र २२ बाईं अक्षक (अधोतल) (Left Clavicle, inferior aspect)
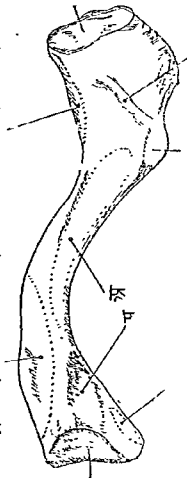
अक्षक का बाह्य ⅓ भाग चपटा और आन्तरिक ⅔ भाग कुछ कुछ त्रिपार्श्विक होता है। बाह्यभाग के दो तल होते हैं—ऊपर का और नीचे का, और दो किनारे (धारा) होते हैं—अगला और पिछला। ऊपर के तल से आगे कशेरु अंश अक्षका (Trapezius) और पीछे अंसाच्छादनी (Deltoid) पेशियाँ लगी रहती हैं। नीचे के तल पर शंकु प्रवर्द्धन नाम का एक उभार होता है, जिसमें एक निरणिका का आरम्भ होता है।

आन्तरिक ⅔ भाग के अगले, पिछले और नीचे के तीन तल होते हैं। नीचे क तल पर अक्षकाधरा पेशी के लिये एक परिखा होती है।

(२) स्कंधास्थि (Scapula) (चित्र २३) इसका अधिक भाग खवे में रहता है। पतले मनुष्यों में यह भाग सब का सब अगुली से टटोला जा सकता है। यह अस्थि कुछ तिकोनी और सपाट होती है परन्तु इसमें कई उभार होते हैं। इसकी शकल घास छीलने के खुरपे से कुछ-कुछ मिलती है। चौड़ा भाग खवे में रहता है और मोटा भाग (जहाँ खुरपे में बेंटा लगता है) कन्धे में रहता है। इस मोटे भाग में एक गढ़ा होता है जिसे अंसपीठ (Glenoid fossa) कहते हैं; यहाँ पर बाहु की अस्थि का शिर उसमे मिला और बँधा रहता है। चौड़े भाग के दो पृष्ठ होते हैं—एक सामने का जो पसलियों के समीप रहता है दूसरा पिछला जो स्पर्श किया जा सकता है। पिछले पृष्ठ पर एक उभार होता है जिसे अंस प्राचीरक (Spine of Scapula) कहते हैं। पिछले पृष्ठ का वह भाग जो प्राचीरक के ऊपर है प्राचीरकोर्ध्व खात (Supraspinous fossa) और जो नीचे है वह प्राचीरकाधः खात (Infraspinous fossa) कहलाता है; प्राचीर-कोर्ध्व खात मे प्राचीरकोर्ध्वा (Supraspinatous) और प्राचीरकाधः खात से प्राचीरकाधोना (Infraspinatous) पेशियां लगी रहती हैं; अगले पृष्ठ से अंसाधारा (Subscapularis) पेशी
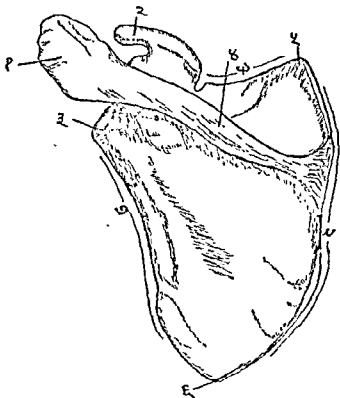
चित्र २३ बाईं स्कंधास्थि या अंसफलक का पिछला पृष्ठ

१—अंसकूट (Acromion); इस उभार से अक्षक बंधी रहती है २—अंसतुण्ड (Coracoid) ३—अंसपीठ (Glenoid); प्रगण्डास्थि का सिर इस गढ़े से मिला रहता है। ४—अंस प्राचीरक (Spine of Scapula); उभार जो पीठ में टटोला जा सकता है। ५—ऊपर का कोना। ६—नीचे का कोना। ७—कक्षतल की ओर का किनारा (Axillary border) = कक्षानुगा धारा। ८—पृष्ठवंश की ओर का किनारा = वंशानुगा धारा (Vertebral border)। ९—ऊपर का किनारा = ऊर्ध्व धारा।

लगी रहती है, असप्राचीरक कधे की ओर जाकर एक प्रवर्द्धन की शकल में हो गया है। इस मुडे हुए और कन्धे की ओर निकले हुए भाग को **असकूट** (Acromion) कहते है।

इस अस्थि में तीन किनारे होते है—एक ऊपर का (**ऊर्ध्व धारा**) चित्र २३ में ९, दूसरा पृष्ठवश की ओर वाला (**वंशानुगा धारा**) चित्र २३ में ८; तीसरा कक्षतल की ओर रहता है (**कक्षानुगा धारा**) चित्र २३ में ७। इनमें ऊपर का किनारा सबसे छोटा, पृष्ठवंश की ओर का सबसे लम्बा, और कक्ष की ओर का सबसे मोटा होता है। ऊपर के किनारे के पास **अंसतुण्ड** नामक मुडा हुआ उभार होता है (चित्र २३ में २)।

इस अस्थि से १६ मासपेशियाँ लगी रहती है (देखो पेशियो का वर्णन)

(३) **बाहु की अस्थि—प्रगंडास्थि** (Humerus)—(चित्र २४)—बाहु में एक लम्बी अस्थि होती है जिसको प्रगंडास्थि कहते है। इसके दो सिरे है एक ऊपर का जो स्कधास्थि की ओर रहता है, दूसरा नीचे का जो कोहनी में रहता है और जिससे अग्रबाहु की दोनो अस्थियो के ऊपर के सिरे मिले रहते है। दोनो सिरो के वीच में जो भाग है उसको अस्थि का **गात्र** (Body) कहते है।

ऊपर के सिरे का प्रारम्भिक भाग कुछ-कुछ अर्धगोलाकार होता है; इस भाग का नाम **शिर** (Head) है जो अस पीठ मे मिला रहता है। शिर के नीचे जो दबा हुआ भाग है वह **ग्रीवा** (Neck) कहलाती है (चित्र २४ मे × से × तक), ग्रीवा के नीचे दो उभार रहते है; एक उभार बड़ा होता है यह **महा पिण्डक** (Greater tuberosity) है; दूसरा उभार छोटा होता है यह **लघु पिण्डक** (Lesser tuberosity) है। इन दोनों उभारो के बीच मे नाली जैसा अन्तर रहता है। **इसको पिण्डकान्तरिका परिखा** (Intertubercular sulcus)

चित्र २४ प्रगंडास्थि (बाईं) का अगला पृष्ठ

महापिण्डक
(Greater tuberosity)
शिर
लघुपिण्डक
(Lesser tuberosity)
पिण्डकांतरिका परिखा
× से × तक ग्रीवा
(Intertubecular sulcus)
महापिण्डक चूड़ा
लघु पिण्डक चूड़ा
गात्र
अंसार्बुद
(Deltoid tuberosity)
१ = उभरी हुई रेखा
चञ्चु खात
(Coronoid fossa)
बहिः प्रकोष्ठास्थि खात
(Radial fossa)
आन्तरार्बुद
(Medial condyle)
बाह्यार्बुद
(Lateral condyle)
डमरुक (Trochlea)
कन्दली (Capitulum)
१
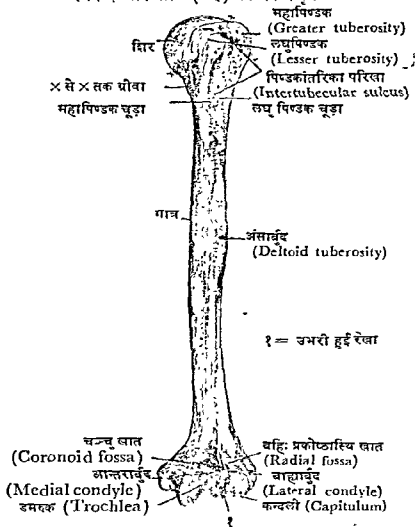
कहते हैं। यहाँ द्विशिरस्का की कडरा (Tendon of Biceps), और कडरा का कोष (Synovial sheath) और एक धमनी रहती है।

अस्थि के गात्र का ऊपर का भाग कुछ-कुछ बेलनाकार और नीचे का भाग कुछ-कुछ त्रिपार्श्विक होता है।

नीचे के सिरे पर इधर उधर दो उभार होते है जो कुहनी में टटोल कर स्पर्श किये जा सकते है। भीतर की ओर का उभार **आन्तरार्बुद** (Medial condyle) कहलाता है, बाहर की ओर के उभार का नाम **बाह्यार्बुद** (Lateral condyle) है। आन्तरार्बुद बाह्यार्बुद की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है और पीछे की ओर को कुछ मुड़ा रहता है। आन्तरार्बुद के पीछे एक परिखा होती है यहाँ पर अन्तः प्रकोष्ठिका नाड़ी (Ulnar nerve) रहती है; जीवित शरीर में यह स्पर्श की जा सकती है; यहाँ जोर से दबाने से एक झनझनाहट भी मालूम हुआ करती है।

नीचे का सिरा प्रकोष्ठ (Forearm) की दोनों अस्थियो से मिला रहता है; इन दोनो अस्थियो से मेल खाने के लिए उस पर गड्ढे और उभार होते है जैसा कि चित्र २४, २५ से विदित है।

आन्तरार्बुद के पास जो सामने की ओर खाँचा है उसे डमरुक (Trochlea) कहते है, यह अन्त. प्रकोष्ठास्थि (Ulna) से मिलता है; बाह्यार्बुद के पास जो उभरा भाग होता है उसको कन्दली (Capitulum) कहते है यह बहिः प्रकोष्ठास्थि (Radius) से मिलता है। इन दोनों के बीच में एक उभरी हुई रेखा होती है। सामने की ओर डमरुक के ऊपर **चंचुखात** (Coronoid fossa) नामक एक गड्ढा होता है; जब कुहनी मुड़ती है तो **चंचु प्रवर्द्धन,** (Coronoid process) यहाँ ठहरता है। पीछे की ओर डमरुक के ऊपर जो खात है उसको **कूर्परखात**

(Olecranon fossa) कहते हैं; कुहनी सीधी करने पर कूर्परकूट (Olecranon process) यहाँ आता है।

गात्र ऊपर में कुछ-कुछ वेलनाकार और नीचे में चपटा होता है। आन्तरार्वुद और वाह्यार्वुद में ऊपर की ओर को उभरी हुई रेखाएँ

चित्र २५—दाहिनी प्रगंडास्थि का नीचे का भाग (पिछला पृष्ठ)
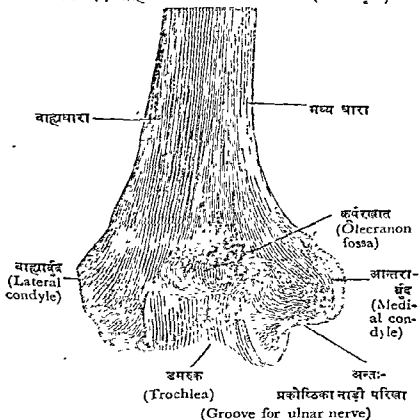
चित्र २६ प्रकोष्ठास्थियां (बाई) (Forearm bones)

क–कपालिका या कूर्परकूट (Olecranon) —वह उभार जो कोहनी में मालूम होता है ।
सं–प्रकोष्ठास्थियों की संधि ।
१–प्रगंडास्थि खात है ।
२—चंचु प्रवर्द्धन । (Coronoid process)
३—बहिः प्रकोष्ठास्थि खात है । (Radial fossa)
४–अन्तः प्रकोष्ठास्थि का गात्र (Shaft of Ulna)
५–अन्तः प्रकोष्ठास्थि का नीचे का सिरा ।
६—अन्तर्मणिक (Styloid process of ulna)
७—बहि प्रकोष्ठास्थि का शिर (Head of Radius)
८—बहिःप्रकोष्ठार्बुद (Radial tuberosity)
९—बहिःप्रकोष्ठास्थि का गात्र (Shaft of Radius)
१०—बहिःप्रकोष्ठास्थि का नीचे का सिरा ।
११—बहिर्मणिक (Styloid process of Radius)
१२—रक्त की नलियों के छिद्र (Nutrient foramina)
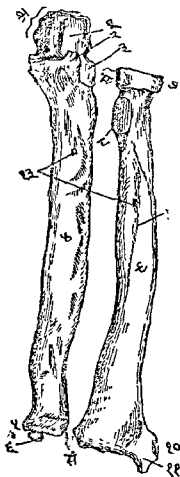
जाती हैं इनको आन्तरार्बुदिक और बाह्यार्बुदिक तोरणिकाएँ (Medial and Lateral Supracondylar ridges) कहते हैं। गात्र के मध्य में बाहर की ओर अंसार्बुद (Deltoid tuberosity) नामक उभार होता है यहाँ पर अंसाच्छादनी पेशी का अन्त होता है।

गात्र के अग्र धारा (Anterior border), मध्य धारा (Medial border) और बाह्य धारा (Lateral border) नामक तीन किनारे और अग्रबाह्य (Antero lateral), अग्रआंतर (Antero medial) और पाश्चात्य (Posterior) तीन तल या पृष्ठ होते हैं।

प्रगंडास्थि की लम्बाई की कुल शरीर की ऊँचाई से यह निस्बत है:— १:४·९३ से ५·२५ तक। यदि किसी प्रगंडास्थि की लम्बाई १२ इन्च है तो उस मनुष्य की ऊँचाई जिसके शरीर की वह अस्थि है अनुमान से $\frac{१२\times४\cdot९३}{१२}$ और $\frac{१२\times५\cdot२५}{१२}$ फुट के बीच में होगी; ४·९३ और ५·२५ फुट के बीच में समझिये।

(४,५) प्रकोष्ठ की अस्थियां (Forearm bones) (चित्र २६, २७, २८, २९, ३०) प्रकोष्ठ में दो लम्बी अस्थियां होती हैं। ये अस्थियाँ पास पास रहती हैं; एक अगुष्ठ की ओर, दूसरी कनिष्ठा की ओर। दोनों अस्थियों के ऊपर के सिरे प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे से मिले और बँधे रहते हैं; नीचे के सिरे कलाई की अस्थियों से मिले रहते हैं।

यदि हम प्रकोष्ठ को इस प्रकार रक्खें कि हथेली सामने को रहे तो इन दोनों अस्थियों में से एक अस्थि शरीर की मध्य रेखा की ओर रहेगी और दूसरी उससे परे। जो चीज शरीर में मध्य रेखा की ओर रहती है उसके लिये छेदन शास्त्र की परिभाषा में अन्तरीय (Medial) या अन्तः शब्द का प्रयोग होता है; और जो चीज इस रेखा से परे होती है उसके
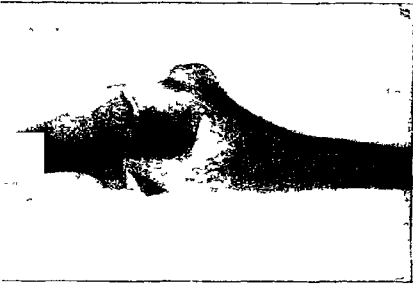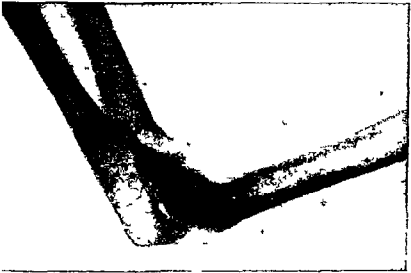
चित्र २९, ३० लेखक की दाहिनी कुहनी के एक्सरे यन्त्र द्वारा खिंचे हुए फोटो हैं। चित्र २७, २८ इन फोटो की व्याख्या है।

.९ सीधी कुहनी एक्स-रे चित्र Radiograms' by Dr Mation of Vienna चित्र १० मुडी हुई कुहनी एक्स-रे चि

लिये बाह्य (Lateral) या बहिः शब्द का प्रयोग होता है। हथेली को सामने रखते हुए इन दोनों अस्थियों में से अंगुष्ठ की ओर की अस्थि मध्यरेखा से दूर हो जाती है इस कारण यह बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) कहलाती है, कनिष्ठा की ओर की अस्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna) है।

बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) (चित्र २६)–इसके दो सिरे हैं जिनके बीच में अस्थि का गात्र है। गात्र का ऊपर का कुछ भाग बेलनाकार है; नीचे का अधिक भाग त्रिपार्श्विक है। ऊपर के सिरे का ऊपर का भाग गोल होता है और शिर कहलाता है; शिर के नीचे अस्थि की ग्रीवा है; ग्रीवा के नीचे सामने की ओर एक अर्बुद होता है जिसे द्विशिरस्कार्बुद (Radial tuberosity) कहते हैं; शिर पर एक गढ़ा होता है यह गढ़ा प्रगंडास्थि के कन्दली नामक उभार में मिला रहता है; शिर अन्तःप्रकोष्ठास्थि के ऊपर के सिरे के एक गढे में भी मिला रहता है (चित्र २६ में मं) गात्र नीचे जाकर अधिक चौड़ा हो गया है। नीचे के चौड़े और चौकोर सिरे के अग्र, पाश्चात्य, बाह्य, मध्य, और अधो पांच पृष्ठ या तल होते हैं। बाह्य पृष्ठ नीचे जाकर एक अर्बुद बन गया है जिसको बहिर्मणिक, (Radial styloid) कहते हैं—इसको जीवित शरीर में सहज में स्पर्श कर सकते हैं। मध्य पृष्ठ पर एक गड्ढा होता है इसे अन्तःप्रकोष्ठिका भंग, (Ulnar notch) कहते हैं क्योंकि यहां अन्तःप्रकोष्ठिका का शिर मिलता है। पाश्चात्य पृष्ठपर मध्य में पाश्चात्यार्बुद (Dorsal tubercle) नामक एक उभार होता है। इस अर्बुद के दोनो ओर कंडराओं के लिये परिखाएँ होती हैं। नीचे के पृष्ठ पर कलाई की अस्थियों के मिलने के लिये स्थालक होते हैं। (चित्र ३३)

चित्र ३१—यह ३५ वर्ष की स्त्री के हाथ का एक्स-रे यंत्र द्वारा खींचा गया फोटो है। करभास्थियों, अंगुल्यस्थियों और प्रकोष्ठास्थियों के सिरे गात्रों से जुड़ गये हैं। अंगुष्ठ की एक कंडरा में दो छोटी अस्थियां

चित्र ३१—३५ वर्ष की स्त्री के हाथ का एक्स-रे चित्र
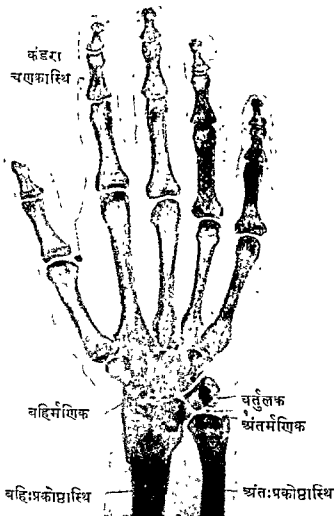
१ = सूत्रमय कारटिलेज

लिये बाह्य (Lateral) या बहिः शब्द का प्रयोग होता है। हथेली को सामने रखते हुए इन दोनों अस्थियों में से अगुष्ठ की ओर की अस्थि मध्यरेखा से दूर हो जाती है इस कारण यह **बहिःप्रकोष्ठास्थि** (Radius) कहलाती है, कनिष्ठा की ओर की अस्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna) है।

बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) (चित्र २६)—इसके दो सिरे हैं जिनके बीच में अस्थि का गात्र है। गात्र का ऊपर का कुछ भाग बेलनाकार है; नीचे का अधिक भाग त्रिपार्श्विक है। ऊपर के सिरे का ऊपर का भाग गोल होता है और शिर कहलाता है; शिर के नीचे अस्थि की ग्रीवा है, ग्रीवा के नीचे सामने की ओर एक अर्बुद होता है जिसे द्विशिरस्कार्बुद (Radial tuberosity) कहते हैं; शिर पर एक गढा होता है यह गढा प्रगंडास्थि के कन्दली नामक उभार से मिला रहता है; शिर अन्तःप्रकोष्ठास्थि के ऊपर के सिरे के एक गढे से भी मिला रहता है (चित्र २६ में नं) गात्र नीचे जाकर अधिक चौड़ा हो गया है। नीचे के चौड़े और चौकोर सिरे के अग्र, पाश्चात्य, बाह्य, मध्य, और अधो पांच पृष्ठ या तल होते हैं। बाह्य पृष्ठ नीचे जाकर एक अर्बुद बन गया है जिसको बहिर्मणिक, (Radial styloid) कहते हैं—इसको जीवित शरीर में सहज में स्पर्श कर सकते हैं। मध्य पृष्ठ पर एक गड्ढा होता है इसे अन्तःप्रकोष्ठिका भंग, (Ulnar notch) कहते हैं क्योंकि यहां अन्तःप्रकोष्ठिका का सिर मिलता है। पाश्चात्य पृष्ठ पर मध्य में पाश्चात्यार्बुद (Dorsal tubercle) नामक एक उभार होता है। इस अर्बुद के दोनों ओर कंडराओं के लिये परिखाएँ होती हैं। नीचे के पृष्ठ पर कलाई की अस्थियों के मिलने के लिये स्थान होते हैं। (चित्र ३३)

चित्र ३१—यह ३५ वर्ष की स्त्री के हाथ का एक्स-रे यंत्र द्वारा खींचा गया फोटो है। करभास्थियों, अंगुल्यस्थियों और प्रकोष्ठास्थियों के सिरे गात्रों से जुड़ गये हैं। अंगुष्ठ की एक कंडरा में दो छोटी अस्थियां

हैं, चित्र में वे साफ दिखाई देती हैं। इस चित्र का चित्र १०५ से मुकाबला करो।

एक्स-रे चित्रों में अस्थि, कंकड़, लोहा इत्यादि दृढ़ चीजें साफ दिखाई देती हैं। मांस, त्वचा जैसी मुलायम चीजें बहुत हलकी दिखाई देती हैं।

गात्र के अग्र, पाश्चात्य और मध्य तीन धाराएँ होती हैं; इन धाराओं के बीच में अग्र; पाश्चात्य और वाह्य पृष्ठ होते हैं; इन पृष्ठों में बहुत सी पेशियाँ लगी रहती हैं। मध्य धारा से **अस्थ्यान्तरिक कला** (Interosseous membrane) लगी रहती है।

इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्वत १:६·७ से ७·११ तक होती है।

यह अस्थि प्रकोष्ठ के ऊपर के भाग में मांस से खूब ढके रहने के कारण सहज में टटोली नहीं जा सकती। नीचे कलाई के पास अंगुली से टटोली जा सकती है।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna)—इस अस्थि के भी दो सिरे होते हैं जिनके बीच में उसका गात्र रहता है। ऊपर का सिर मोटा होता है और इसमें दो गढे होते हैं एक बड़ा दूसरा छोटा (चित्र २६ में १,३), बडे गढे में प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे का डमरुक नामक भाग टिकता है; छोटा गड्ढा बहिःप्रकोष्ठास्थि के ऊपर के सिरे के मिलने के लिये है; बडा गड्ढा **प्रगंडीय भग** और छोटा **बहिःप्रकोष्ठास्थि का भंग** (Radial notch) कहलाता है। जब हम कोहनी मोडते हैं तब उसमें पीछे की तरफ एक लम्बा और नोकीला उभार दिखाई देता है; इस उभार को **कपालिका या कूर्परकूट** (Olecranon) कहते हैं (चित्र २६ में क)। गढों के नीचे कुछ दूर तक अस्थि का गात्र त्रिपार्श्विक होता है और ऊपर से नीचे को पतला होता चला गया है। गात्र का नीचे का अंश बेलनाकार होता है। अस्थि का नीचे

का सिरा गोल होता है और सिर कहलाता है; सिर के और कलाई की अस्थियों के बीच में एक कार्टिलेज रहता है। सिर के पास एक छोटा नोकीला उभार होता है जो अंगुली से टटोल कर मालूम किया जा सकता है (चित्र २६ में ६) यह अन्तर्मणिक (Ulnar styloid) है। इस अस्थि के गात्र का पिछला किनारा समस्त प्रकोष्ठ में टटोल कर स्पर्श किया जा सकता है।

गात्र—के अग्र, पाश्चात्य और बाह्य तीन धाराएँ और इनके बीच में अग्र, मध्य और पाश्चात्य तल होते हैं।

इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १:६.२६ से ६.६६ तक है।

जब हम कुहनी मोड़ते हैं तो टटोलने पर हमको तीन उभार मालूम होते हैं—दो उभार ऊपर होते हैं और एक इन दोनों के नीचे। ऊपर वाले उभार प्रगंडास्थि के अर्बुद हैं, नीचे का मोटा उभार अन्तः-प्रकोष्ठास्थि का कूर्परकूट है। जब कुहनी आधी मुड़ी रहती है अर्थात् जब प्रकोष्ठ और प्रगंड के बीच में समकोण बनता है तब इन तीनों उभारों की स्थिति इस प्रकार होती है कि यदि उनके बीच में रेखाएँ खींची जावें तो एक समत्रिकोण (Equilateral triangle) बनेगा।

यदि कुहनी सीधी कर दी जावे तो इन उभारों की आपेक्षिक स्थिति और हो जायगी; पहले ये एक समकोण के कोने पर थे; अब य एक रेखा में आ जाते हैं (चित्र २७, २९)। जब हड्डियाँ टूट जाती हैं या कुहनी का जोड़ उखड़ जाता है तब इन उभारों की आपेक्षिक स्थितियों की जाँच पड़ताल करने की आवश्यकता होती है।

जब हमारे हाथ की हथेली सामने को या ऊपर को रहती है तब प्रकोष्ठास्थियां एक दूसरे के समानांतर रहती हैं (चित्र ३४ दाहिना हाथ)

परन्तु जब हथेली नीचे को या पीछे को रहती है तब वहिःप्रकोष्ठास्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थि के ऊपर हो जाती है (चित्र ३४ बाया हाथ)।

(६–१३) कलाई या पहुँचे की अस्थिया (Carpal bones) (चित्र ३१, ३२, ३३) कलाई में आठ छोटी-छोटी अस्थियां रहती हैं। ये अस्थियां दो समानान्तर पंक्तियों में रखी रहती है। एक पंक्ति (Row) प्रकोष्ठ की अस्थियो के नीचे के सिरो के निकट रहती है दूसरी हस्ततल की अस्थियों से मिली रहती है। ये चार-चार अस्थिया कलाई की चौडाई के रुख रहती हैं। (चित्र ३२) प्रत्येक अस्थि का नाम उसकी आकृति के अनुसार रक्खा गया है—

ऊपर की पंक्ति में अंगुष्ठ की ओर से गिनते हुए ये चार अस्थियां मिलती हैं :—

(१) नौकाकृति (Scaphoid)—इस अस्थि की शकल नाव जैसी होती है; एक ओर इसमें नाव जैसा गहराव होता है दूसरी ओर से नाव की तली की तरह उभरी रहती है। इसमें नौकार्बुद (Tubercle of Scaphoid) नाम का एक उभार होता है जो अगुष्ठ की ओर कलाई में टटोलने से स्पर्श किया जा सकता है।

(२) चतुर्थी चन्द्राकार (Lunate)—शुक्लपक्ष की चौथी तिथि को जैसा चन्द्र होता है वैसा ही गहराव इस अस्थि में होता है।

(३) त्रिकोण (Triquetral)—इसकी शकल ठोस त्रिकोण से मिलती है।

इन तीनो अस्थियों में से पहली और दूसरी अस्थियो के ऊपर के पृष्ठ (समीपस्थ) वहिःप्रकोष्ठास्थि के नीचे के सिरे से मिले रहते हैं। तीसरी अस्थि और अन्तःप्रकोष्ठास्थि के नीचे के (दूरस्थ) सिरे के बीच में एक पतला कारटिलेज रहता है (चित्र १०६ में ८)।

(४) मटराकार (Pisiform)—यह मटर के बडे दाने जैसी

चित्र ३२ हाथ की हड्डियां

१	२	३	४
Scaphoid	Lunate	Triquetral	Pisiform
नौकाकृति	चतुर्थी चन्द्राकार	त्रिकोण	मटराकार या वर्तुलक[1]

नीचे की पंक्ति में यह चार अस्थियाँ रहती हैं :—

५	६	७	८
Trapezium	Trapezoid	Capitate	Hamate
वृहत् बहुकोण	क्षुद्र बहुकोण	शिरोधारी	वक्रास्थि या फणधर

१. वर्तुल = गोल; मटर।

चित्र ३३

(From Sparke's Artistic Anatomy
Baillicre. Tindal & Cox, London)

चित्र ३३ की व्याख्या

इस चित्र में यह समझाया गया है कि प्रकोष्ठ की अस्थियां कलाई की ऊपर की पंक्ति की अस्थियों से कैसे मिलती हैं और कलाई की ऊपर की पंक्ति की अस्थियां नीचे की पंक्ति की अस्थियों से कैसे मिलती हैं। प्रकोष्ठ की दोनों अस्थियों के नीचे के सिरों के पिछले पृष्ठों पर पेशियों के लिये कई परिखाएँ रहती हैं।

३, ४, ५ क = तीसरी, चौथी, पांचवीं, करभास्थियां (3rd, 4th, 5th Metacarpals)

६ = वध्रास्थि (Hammate)

७ = शिरोधारी (Capitate)

८ = शिरोधारी का सिर (Head of Capitate)

९ = त्रिकोण (Triquetral)

१० = वर्त्तुलक (Pisiform)

११ = चन्द्राकार (Lunate)

१२ = मणिबन्ध प्रसारणी अन्तस्था परिखा (Groove for Extensor carpi ulnaris)।

१३ = कनिष्ठा प्रसारणी परिखा (Groove for Extensor indicis)

१४ = अंगुली प्रसारणी परिखा (Groove for Extensor digitorum)

१५ = अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna)

१६ = मणिबन्ध (प्रकोष्ठास्थियों और कलाई की ऊपर की पंक्ति की अस्थियों का जोड़) (Radio carpal joint)

बीच में एक पतला कारटिलेज रहता है (चित्र १०६ में ८)।

१७ = कलाई की दोनों पंक्तियों की अस्थियों का जोड़।

गोल-गोल होती है। यह अस्थि त्रिकोण के सामने रहती है और वह प्रकोष्ठ की किसी अस्थि से मिली हुई नहीं रहती। इस अस्थि को कलाई के सामने के भाग में टटोल कर स्पर्श कर सकते है।

(५-६) वृहत् और क्षुद्र बहुकोण (Trapezium & Trapezoid)—इन अस्थियों में कई पार्श्व (पहलू) और कई कोने होते हैं। अंगुष्ठ की ओर की अस्थि बड़ी होती है, दूसरी छोटी होती है; इस कारण वे वृहत् और क्षुद्र कही गई हैं।

वृहत् बहुकोण के अगले तल पर एक परिखा और एक तोरणिका होती है।

(७) शिरोधारी (Capitate)—इसका ऊपर का अंश सिर की भांति मोटा और गोल सा होता है।

(८) वक्रास्थि (Hammate)—इसका एक अंश नाक काटने के कटिये या दात्र की भांति मुडा हुआ होता है। इसको दात्रवत् अस्थि या फणधर भी कहते है।

इन चारों (५—६—७—८) अस्थियों के ऊपर के (समीपस्थ) पृष्ठ पहली पंक्ति की तीन अस्थियों (मटराकार को छोड कर) के नीचे के (दूरस्थ) पृष्ठों से मिले रहते हैं। नीचे के (दूरस्थ) पृष्ठ हस्ततल की अस्थियों से मिले रहते हैं। देखो चित्र ३३। ऊपर की प्रत्येक अस्थि के ६ तल होते हैं—समीपस्थ, दूरस्थ, वाह्य, मध्य, अग्र, पाश्चात्य।

(१४-१८) हस्ततल की अस्थियां (Bones of Hand)—(चित्र ३१, ३२) कलाई की दूसरी पंक्ति की अस्थियों के आगे (या नीचे) हस्ततल की पाँच लम्बी अस्थियाँ रहती हैं। इनमें से प्रत्येक को करभास्थि (Metacarpal) कहते हैं। करभ हाथ के पीछे के भाग

अधोशाखाओं (Inferior Extremities) की अस्थियाँ

(१) नितंबास्थि[1] (Hip bone)—(चित्र ३५,३८,३९,४०,४१) कूल्हे या नितंब में एक बड़ी, चौड़ी, विरूप अस्थि होती है; यह नितंबास्थि कहलाती है; दोनों नितंबास्थियाँ पीछे जाकर कमर के नीचे जो त्रिक नाम की अस्थि होती है, उससे बँधी रहती हैं (चित्र ३४)। दाहिनी नितंबास्थि त्रिक के दाहिनी और बाईं उसके बाईं ओर रहती है; सामने आकर ये दोनों अस्थियाँ आपस में मध्य रेखा में जुड़ जाती हैं। इन दोनों अस्थियों के इस जोड़ या सन्धि को विटप सन्धि (Pubic-symphysis) (या भग सन्धि) कहते हैं। यह सन्धि सामने मध्य रेखा में उदर के सबसे नीचे के भाग में होती है। इस स्थान पर ऊपर से नीचे तक इन अस्थियों का नाप १—१½ इंच होता है। सन्धि के नीचे पुरुष में शिश्न और स्त्री में भग नामक अंग रहते हैं। सन्धि के ऊपर की त्वचा में तारुण्यावस्था (यौवन) में बाल उग आते हैं और यह स्थान विटपदेश (Pubic region) कहलाता है।

त्रिक अस्थि (Sacrum) के नीचे एक छोटी सी अस्थि और रहती है इसका नाम गुदास्थि (Coccyx) है। नितंबास्थिया इस अस्थि से मिली हुई नहीं रहती।

---

१. १३ या १४ वर्ष की आयु तक इस अस्थि के तीन बड़े भाग रहते हैं, एक ऊपर का चौड़ा भाग जो जघनास्थि या श्रोणी अस्थि (Ilium) कहलाता है। दूसरा सामने का भाग जिसको भगास्थि (Pubis) कहते हैं। तीसरा वह भाग (Ischium) जो चूतड़ में टटोलने से मालूम होता है (देखो चित्र ३८, ३९)। १८ वर्ष के लगभग इन तीनों भागों से एक अस्थि बन जाती है जिसको नितंबास्थि कहते हैं।

चित्र ३४
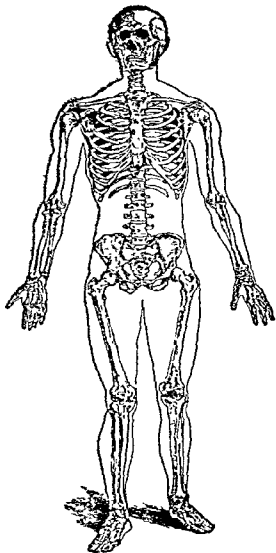
From Piersol's Human Anatomy

चित्र ३५ नितंबास्थि (Hip bone)
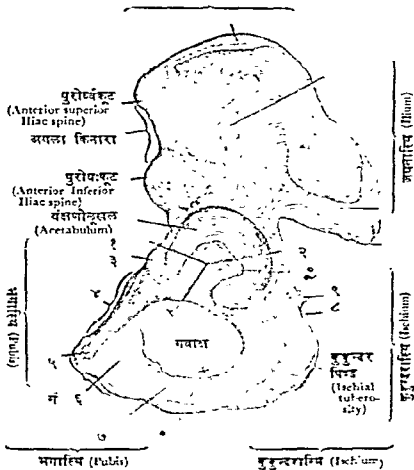
चित्र ३५ की व्याख्या

१, २ से ऊपर जघनास्थि है; उसके नीचे भगास्थि और कुकुन्दरास्थि। ३ = भगास्थि का अश है। ४ = भगास्थि का उत्तर शृंग (Superior ramus of Pubis) ६, ७ = भगास्थि का अधर शृंग (Inferior ramus of Pubis)। ५ = भगकंटक (Pubic tubercle); मं = संधि यह भाग दूसरी ओर की अस्थि से मिलता है। + *भगास्थि और कुकुन्दरास्थि का जोड़। ८ = कुकुन्दर-भंग (Lesser Sciatic notch)। ९ = कुकुन्दरकण्टक (Ischial spine)। १० = उलूखल खात (Acetabulum)।

इन चारों अस्थियों से एक घेरा बन जाता है, दो अस्थियां घेरे के पिछले भाग में रहती है, शेष दो (नितवास्थियाँ) अस्थियो से उस घेरे का पार्श्विक और अगला भाग पूर्ण होता है। इन चारों अस्थियों के बीच में जो गहरा कटोरे की शक्ल का स्थान है उसको वस्तिगह्वर (Pelvis) कहते हैं (चित्र ४२, ४३)। इस गह्वर की तली में कोई अस्थि नहीं होती; यह तली मांस व वसा से ही बनती है और इसके बाहर त्वचा रहती है। इसके कोमल फर्श में कई छिद्र होते है; स्त्रियों में पीछे मलद्वार और उसके आगे भग की दरार रहती है; इस दरार में योनि और मूत्रद्वार के छिद्र होते हैं; पुरुषों में मलद्वार होता है और विटपसन्धि के नीचे शिश्न रहता है जिसका कुछ भाग वस्तिगह्वर के भीतर से आता है।

वस्तिगह्वर उदर की कोठरी का नीचे का भाग है। उसमें पुरुष में मूत्राशय, शुक्राशय, मलाशय; स्त्रियों में मूत्राशय, गर्भाशय, मलाशय, डिम्ब ग्रन्थियां नामक अंग रहते हैं; अस्थियों के भीतरी पृष्ठों पर मांस-पेशियां लगी रहती हैं। स्त्री का वस्तिगह्वर पुरुष के वस्तिगह्वर की अपेक्षा कम गहरा परन्तु अधिक चौड़ा और विशाल होता है।

जब स्त्री बच्चा जनती है तो बच्चा इन चारों अस्थियों के बीच में से होकर योनि से बाहर निकलता है। बच्चे के सिर के दबाव से वस्तिगह्वर के फर्श की कोमल चीजें पिच-पिचाकर अलग हो जाती है और योनि का छिद्र फैल कर बड़ा हो जाता है और बच्चे का शरीर बाहर निकल आता है।

चित्र ३६ वस्तिगह्वर (Pelvis) (Jellet)
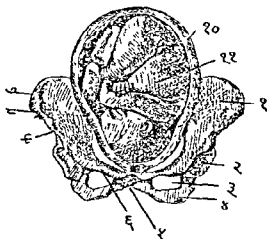
१० = गर्भाशय (Uterus); ११ = बच्चा; ५ = भगसंधि

कभी-कभी अस्थियों के टेढ़े होने से इनके बीच में जो रास्ता है वह कम चौड़ा होता है; ऐसी दशा में बच्चे का सिर बड़ी कठिनता से बाहर निकलता है और जननी को अधिक कष्ट होता है। कभी-कभी यह रास्ता इतना तंग होता है कि बच्चे का सिर इसमें से निकल ही नहीं

सकता; उसकी मृत्यु हो जाती है और यदि उसको निकालने की कोई तदबीर न की जाय तो माता की जान भी जोखो में रहती है।

कोख (जघन; Iliac region) के नीचे टटोलने से जो अस्थि मालूम होती है वह इसी अस्थि का ऊपर का किनारा (जघन चूड़ा; Iliac crest) है। कूल्हे में यह अस्थि मोटी-मोटी पेशियो से ढँकी रहती है; इस कारण इसको आसानी से टटोल कर स्पर्श नही कर सकते। चूतड़ में दवाने से जो अस्थि मालूम होती है यह इसी अस्थि का नीचे का भाग है। जब हम बैठते है तब इसी के सहारे बैठते है।

चित्र ३७ बच्चा वस्तिगह्वर से बाहर आ रहा है (Jellet)

नौ दस वर्ष की कन्या की नितंबास्थि

चित्र ३८
नितंबतल

जघनास्थि
कुकुन्दरास्थि
भगास्थि

चित्र ३
उदर तल

जघनास्थि
भगास्थि
कुकुन्दरास्थि

पृष्ठ ७९ के सम्मुख
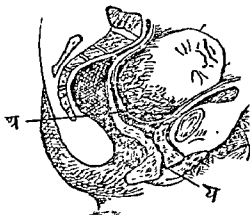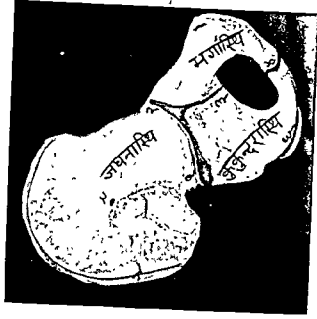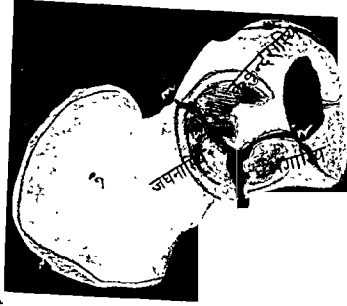
कड़ी होती है। इस उभार को कुकुन्दरपिण्ड (Ischial tuberosity) कहते हैं।

प्रत्येक नितंबास्थि के बाहरी पृष्ठ पर एक गहरा गोल गढ़ा होता है। उर्वस्थि का सिर इसी गढ़े में टिकता है। इस गढ़े को वंक्षणोलूखल (Acetabulum) कहते हैं। वंक्षणोलूखल के नीचे जो बड़ा छिद्र होता है उसका नाम गवाक्ष (Obturator foramen) है। वंक्षणोलूखल के बनाने में तीनों अस्थियाँ सहायता देती हैं जैसा कि चित्र ३८, ३९ से विदित है। ये चित्र एक नौ वर्ष की कन्या की नितंबास्थियों के फोटो हैं। (तीनों अस्थियाँ वंक्षणोलूखल के स्थान पर आपस में— आकार (१, २, ३) के कारटिलेज द्वारा जुड़ी रहती हैं)। इस कारटिलेज में १२वें वर्ष में अस्थि का बनना आरम्भ होता है। १४-१५ वर्ष के लगभग और कभी-कभी १६ वर्ष तक भी ये तीनों भाग मिलकर एक हो जाते हैं अर्थात् कारटिलेज नहीं रहते। जघन चूड़ा भी १५ वर्ष तक कारटिलेज का होता है (चित्र ३८, ३९ में ५)। (देखो आगे) १५ वर्ष में अस्थि बनने लगती है और यह शेष जघनास्थि से २०—२५ वर्ष के बीच में जुड़ती है। कुकुन्दरपिंड के पिछले भाग में भी (चित्र ३९ में ६) १५ वर्ष में अस्थि बनने लगती है और २०—२५ वर्ष में यह भाग पूर्ण होता है। चित्र ३५, ४०, ४१ के देखने से विदित है कि नितंबास्थि पर कई उभार होते हैं।

जघन चूड़ा का अगला सिरा पुरोर्ध्वकूट (Ant. Superior Iliac Spine) कहलाता है उसके नीचे छोटा सा भंग होता है और फिर पुरोधःकूट (Ant. Inferior Iliac Spine) होता है। जघन चूड़ा का पिछला सिरा पश्चिमोर्ध्वकूट (Post. Superior Iliac Spine) है जिसके नीचे छोटा सा भंग होता है और फिर पश्चिमाधःकूट (Post. Inferior Iliac Spine) है। पश्चिमाधःकूट के नीचे गृध्रसी भंग

(Greater Sciatic Notch) होता है; उसके नीचे एक नोकीला उभार होता है इसे कुकुन्दरकंटक (Ischial Spine) कहते हैं; इसके नीचे कुकुन्दरभग (Lesser Sciatic Notch) होता है।

चित्र ४० नितंबास्थि (नितंबतल)

जघन चूड़ा
(Iliac crest)

मध्य तोरणिका
(Middle gluteal line)
ऊर्ध्व तोरणिका
(Sup gluteal line)
अधो तोरणिका
(Inf gluteal line)
पश्चिमोर्ध्व कूट
(Post. Superior Iliac spine)
पश्चिमाधः कूट
Post. Inferior Iliac spine)
गृध्रसी भग
(Greater Sciatic notch)
कुकुन्दर कंटक
कुकुन्दर भंग
कुकुन्दर पिण्ड
वंक्षणोलूखल
(Acetabulum)
वंक्षणोलूखल की तली

नैतंबिका मध्यस्था
(Gluteus medius)
जघनार्बुद
(Tubercle of Iliac crest)
नैतंबिका लघ्वी
(Gluteus minimus)
पुरोर्ध्व कूट
(Ant. Sup Iliac spine)
पुराधः कूट
(Ant. Inf Iliac spine)
सरलाऔर्वी पे०
(Rectus femoris)
कंकतिकार्बुद
(Pectineal eminence)
भग कंटक
(Pubic tubercle)

गवाक्ष
(Obturator foramen)
उलूखल भंग
(Acetabular notch).

जघनास्थि के कुल्हे वाले पृष्ठ पर (नितंबतल ; Gluteal Surface), ऊर्ध्व (Superior), मध्य (Middle), तथा

अधो (Inferior) तीन उभरी हुई रेखाएं (तोरणिकाएँ) होती हैं ऊर्ध्व तोरणिका के पीछे से नैतंबिका महती (Gluteus maximus) पेशी का, ऊर्ध्व और मध्य तोरणिकाओं के बीच में नैतंबिका मध्यस्था (Gluteus medius) का और मध्य और अधोतोरणिकाओं

चित्र ४१ नितंबास्थि उदर तल
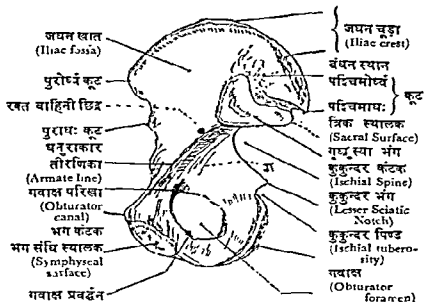
के बीच में नैतंबिका लघ्वी (Gluteus minimus) का आरम्भ होता है।

जघनास्थि के उदर की ओर वाले पृष्ठ पर एक गढ़ा होता है, इसे जघनखात (Iliac fossa) कहते हैं (चित्र ४१) यहाँ जघनीया (Iliacus) पेशी रहती है। जघनखात के पीछे एक कान की शकल का कुछ

चित्र ४२ नर वस्तिगह्वर (Male pelvis)
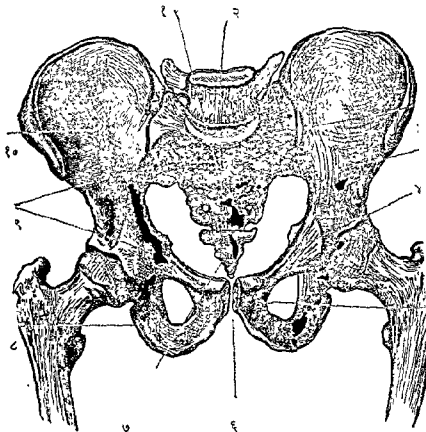
(Toldt's Atlas of Anatomy)

१ = त्रिकास्थि (Sacrum); २ = पंचम कटिकशेरुका (Fifth lumb vertebra); ५ = भग संधि (Pubic symphysis); ६ = भग क (Sub pubic angle); ७ = गुदास्थि (Coccyx); ८ = कुकुन्दरा (Ischial tuberosity); ९ = धनुषाकार परिखा (Arcuate line) १० = श्रोणिफलक (Ilium)।
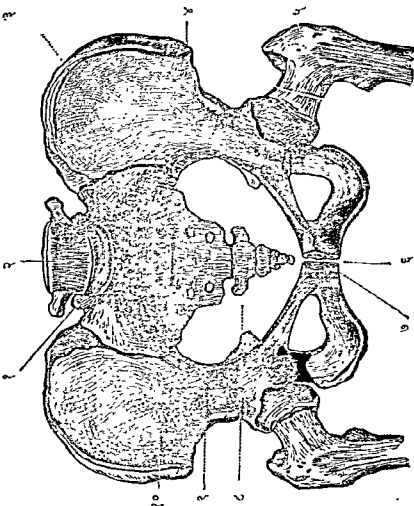
उभरा और कुछ दबा भाग है, यहां त्रिकास्थि मिलती है। इसको त्रिकस्यालक (Sacral surface) कहते हैं। त्रिकस्यालक के ऊपर जो खुर्दरी जगह है, वह बन्धनो के लिये है। नर और नारी वस्तिगह्वरो में कुछ भेद होता है जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है। नारी वस्ति-गह्वर की समाई नर गह्वर से अधिक होती है। भगास्थियो से जो महराव—भगकोण (Sub-pubic angle) बनती है (चित्र ४२ के ६ का, चित्र ४३ के ६ से मुकाबला करो) यह नारियों में समकोण से अधिक होती है, नरों में समकोण या समकोण से कम। नारियो की जघनास्थियाँ नरों की अपेक्षा अधिक चौड़ी और फैली होती है, जिसके कारण नारियों के कूल्हे चौड़े होते हैं। नारियो में त्रिकास्थि भी अधिक चौडी, कम लम्वी, कम मुडी हुई और पीछे को अधिक झुकी हुई होती है (देखो त्रिकास्थि)।

(२) ऊर्वस्थि (Femur) (चित्र ४४, ४५, ४६)

बाहु की तरह जांघ में केवल एक ही अस्थि होती है। इसका नाम ऊर्वस्थि है। ऊर्वस्थि शरीर भर में सबसे लम्बी और मजबूत अस्थि है। और लम्बी अस्थियो की भांति ऊर्वस्थि के दो सिरे होते है और इनके बीच में उसका गात्र रहता है। ऊपर का सिरा तिरछा होता है; इस सिरे और गात्र के बीच में एक कोण बनता है; इस कोण का परिमाण १२५° दरजे होता है। ऊपर के सिरे का वह भाग जो वंक्षणोलूखल में रहता है, गोलाकार होता है। यह गोल भाग इस अस्थि का शिर कहलाता है; शिर के नीचे गात्र तक जो भाग है उसको अस्थि की ग्रीवा कहते है जहाँ ग्रीवा गात्र से मिलती है, वहां दो उभार होते है एक बडा उभार ऊपर (महा शिखरक; Greater trochanter) दूसरा छोटा उभार नीचे (लघु शिखरक; Lesser trochanter)। बड़ा उभार कूल्हे में दबाकर स्पर्श किया जा सकता है। अस्थि का गात्र बेलनाकार

होता है; यह नीचे जाकर कुछ चौडा हो जाता है। नीचे के सिरे में सामने एक खांचा—जान्वस्थि स्यालक (Patellar surface) होता है, जिसके ऊपर पाली अस्थि सरका करती है। इस खांचे के इधर-उधर दो मोटे-मोटे उभार होते हैं, ये उभार टांग की मोटी अस्थि के ऊपर के सिरे के ऊपर टिकते हैं। इन उभारों को आन्तर (Medial) और बाह्य ऊर्वार्बुद (Lateral Condyle) कहते हैं। प्रत्येक ऊर्वार्बुद के ऊपर एक छोटा-सा उभार और होता है, जिसे उपार्बुद (Epicondyle) कहते हैं।

गात्र के पिछले पृष्ठ पर मध्य में एक उभरी हुई रेखा होती है। ऊपर और नीचे ये दो शाखाओं में फट जाती है (बहुधा ऊपर की ओर तीन शाखाएँ होती हैं) इस रेखा को विश्लेषित तीरणिका (Linea aspera) कहते हैं। इस अस्थि से बहुत सी पेशियां लगी रहती हैं।

चित्र ३४ से स्पष्ट है कि यह अस्थि जाघ में कुछ तिरछी रहती है, और मांस से खूब ढँकी रहती है। नीचे के सिरे के उभार पाली अस्थि को इधर-उधर टटोल कर स्पर्श किये जा सकते हैं। इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १:३·५३ से ३·९२ तक होती है।

३–४ जंघा या टाँग (Leg) की अस्थियाँ चित्र (४७)

टांग में दो लम्बी अस्थियां रहती हैं, इनमें से एक अंगुष्ठ (शरीर की मध्यरेखा के निकट) की ओर रहती है और दूसरी कनिष्ठा की ओर (मध्यरेखा से परे); पहली अस्थि को जंघास्थि (Tibia) दूसरी को अनुजंघास्थि (Fibula) कहते हैं।

चित्र ४४ कंकाल (Skeleton) (Haeckel)
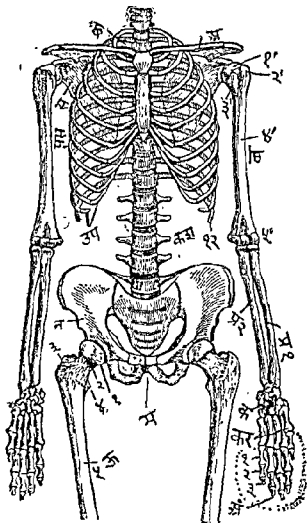
चित्र ४४ की व्याख्या

ऊ = ऊर्वस्थि (Femur); १ = शिर, २ = ग्रीवा, ३ = महाशिखरक, (Greater trochanter), ४ = लघु शिखरक (Lesser trochanter), ५ = गात्र। म = भगास्थि कोण (Sub-pubic angle)। न = नितंबास्थि (Hip bone)

व = प्रगंडास्थि (Humerus); १' = शिर, २' = महापिण्डक, (Greater tuberosity), ३' = लघु पिण्डक (Lesser tuberosity), ४' = गात्र, ५' = नीचे का सिरा।

प्र १ = वहिः प्रकोष्ठास्थि (Radius)। प्र २ = अंतःप्रकोष्ठास्थि (Ulna)।

क = कलाई की अस्थियाँ (Carpal bones)। कर = करभास्थियाँ (Metacarpals)। अं = अंगुल्यस्थियाँ (Phalanges)।

१, २, ३ = पोर्वे (Phalanges)। पस = पसुलियाँ (Ribs)। उप = उपपर्शुका (Costal cartilages)। कश = कशेरुका (Vertebra)। स = स्कन्धास्थि (Scapula)। अ = अक्षक (Clavicle)। छ = इस छिद्र की सीमायें इन अस्थियों से बनती हैं :—पीछे वक्ष का पहला कशेरुका, सामने उरोस्थि (Manubrium sterni), इधर-उधर दोनों ओर की पहली पसलियाँ। यह वक्ष का ऊपर का द्वार (Thoracic inlet) है।

चित्र ४५ की व्याख्या

१ = विश्लेपित तोरणिका (Linea aspera), २ = तोरणिका की ऊपर की बाह्य शाखा (Lateral lip); ३ = तोरणिका की अंतरीय

शाखा (Medial lip), ४=गोल बंधन का गड्ढा (For lig teres), ५=पश्चिम शिखरांतरिक तोरणिका (Trochanteric crest), र=अग्र शिखरांतरिक तोरणिका (Trochanteric line), ६ = लघु शिखरक (Lesser trochanter), ७ = ऊरु प्रसारणी अंतःस्था (Vastus medialis) ब = ऊरु प्रसारणी बहिस्था (Vastus lateralis), ८ = जानु पृष्ठ स्थान (Popliteal surface), ९ = अर्बुदांतरिक स्थान (Intercondylar notch), १० = अर्बुद (Adductor tubercle), ११ = उपार्बुद (Medial Epicondyle), १२ = आन्तर ऊर्वर्बुद (Medial condyle), १३ = बाह्य ऊर्वर्बुद (Lateral condyle), चः = चतुरस्त्रा अर्बुद (Quadrate tubercle).

जंघास्थि (Tibia)—यह दोनो अस्थियों में सबसे मोटी होती है; इसका ऊपर का सिरा नीचे के सिरे से अधिक मोटा और चौड़ा होता है। इस सिरे पर दो उभार होते हैं जो आन्तर (Medial) और बाह्य जंघार्बुद (Lateral Tibial Condyle) कहलाते हैं इस सिरे के ऊपर के पृष्ठ पर उर्वस्थि के उभारों को सहारने के लिए दो निधान (स्थालक) होते हैं (चित्र-४८) दोनों स्थालको के बीच में जंघा कटक (Inter condylar eminence) नाम का एक प्रवर्द्धन होता है। हरएक स्थालक पर एकअर्ध चक्राकार कारटिलेज (Semilunar cartilage) रहता है। सामने इस सिरे पर एक अर्बुद होता है, जो पाली अस्थि के नीचे अंगुली से टटोल कर मालूम किया जा सकता है, इसको जंघा प्रवर्द्धन (Tibial tubercle) कहते हैं। इस अस्थि का गात्र कुछ त्रिपार्श्विक होता है और ऊपर से नीचे का कम चौड़ा होता चला गया है। इस गात्र का सामने का पृष्ठ और किनारा भले प्रकार टटोले जा सकते हैं। नीचे के सिरे में अंगुष्ठ की ओर एक उभार होता

चित्र ४५
दाहिनी ऊर्वस्थि पिछला पृष्ठ
महा शिखरक
(Greater trochanter)
चित्र ४६
दाहिनी ऊर्वस्थि अगला पृष्ठ
शिर (Head)
यहां गोल बंधन लगता है
(For Lig. Teres)
ग्रीवा (Neck)
लघु शिखरक
(Lesser trochanter)
गात्र (Body)
अंतरीयधारा
(Medial border)
बाह्य धारा
(Lateral border)
अर्बुद
जान्वस्थि
स्थालक
(Patellar facet)
उपार्बुद
बाह्य उपार्बुद (Lateral Epicondyle)
४
५
६
३
७
८
९
१०
११
१२
१३
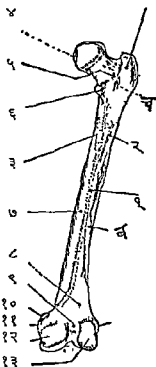
चित्र ४७ जंघास्थि (Tibia) और अनुजंघास्थि (Fibula) (दाहिनी)

१ = यहाँ ऊर्वस्थि का नीचे का सिरा टिकता है (Femoral surface)

२ = जंघा कण्टक (Intercondylar eminence)

३ = जंघा प्रवर्द्धन (Tibial tubercle)

४ = जंघास्थि का गात्र (Shaft of tibia)

५ = जंघास्थि का अगला किनारा जो (Anterior border of Tibia) स्पर्श किया जा सकता है।

६ = अन्तर्गुल्फ (Medial malleolus)

७ = { नीचे के सिरे का नीचे का पृष्ठ इस भाग के नीचे गुल्फास्थि (Talus) रहती है

८ = अनुजंघास्थि का शिर (Head of Fibula)

९ = अनुजंघास्थि का गात्र (Shaft of Fibula)

१० = बहिर्गुल्फ (Lateral malleolus)

सं० = दोनों अस्थियों की संधि (Tibio fibular joint)

अनुजंघास्थि (Fibula)
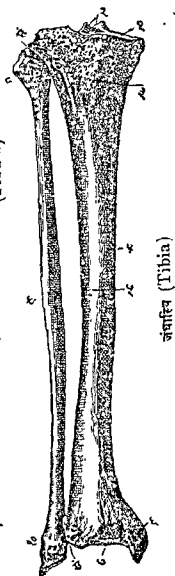
जंघास्थि (Tibia)

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट ७

चित्र ४८ लेखक के जानु का एक्स-रे चित्र

Radiograph by Dr. M. Umar, L. M. S.

ऊ = ऊर्वस्थि (Femur) जा = जान्वस्थि (Patella)

जं = जंघास्थि (Tibia) अ = अनुजंघास्थि (Fibula)

बं = जान्वस्थि बंधन (Lig. Patellae) व = वसा की गद्दी (Pad of fat)

पृष्ठ ९० के सम्मुख

चित्र ५६ पैर की अस्थियाँ

१ = गुल्फास्थि (Talus)
२ = पार्ष्णि (Calcaneum)
३ = नौकाकृति (Navicular)
४ = अन्तः ि ५) (Medial
५ = मध्य त्रिपार्श्विक (Intermediate cuneiform)
६ = बहिः ि
७ — घनास्थि (Cuboid)
१, २, ३, ४,

हैं; अंगुष्ठ की ओर का गट्टा इसी उभार से बनता है; यह उभार अन्तर्गुल्फ (Medial malleolus) कहलाता है। यह सिरा टखने की एक अस्थि (गुल्फास्थि; Talus) के ऊपर टिका रहता है।

अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊंचाई से निस्बत :—

१ : ४·३२ से ४·८० तक।

अनुजंघास्थि (Fibula):—यह जंघास्थि से बहुत पतली और कमजोर होती है। और नली जैसी होती है ऊपर का सिरा जिसे शिर कहते हैं कुछ-कुछ चौपहलू होता है और यह जंघास्थि से बधा रहता है; यह त्वचा में टटोल कर स्पर्श किया जा सकता है। अस्थि के गात्र का अधिकांश मांस से खूब ढँका रहता है इस कारण उसको टटोल कर मालूम करना कठिन है। नीचे के सिरे से कनिष्ठा की ओर का गट्टा बनता है; इसको बहिर्गुल्फ (Leteral malleolus) कहते हैं; यह सिरा टखने की गुल्फास्थि नामक अस्थि से मिला रहता है। इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १ : ४·३७ से ४·८२ तक होती है।

(५) पाली या जान्वस्थि (Patella); जानु के सामने एक तिकोनिया अस्थि रहती है। यह अस्थि हिलाई जा सकती है। यह अस्थि ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे के सामने रहती है। जब टांग सीधी की जाती है, तब पतले मनुष्यों में यह दूर से भी दिखाई देती है (चित्र ४८ में जा)।

पैर की अस्थियां (चित्र ४९) टांग के नीचे जो निम्न शाखा का भाग है, वह पैर या पाद (पद; Foot) कहलाता है। जिस स्थान पर टांग पैर से जुड़ी रहती है और जहां इन दोनों में गति होती है, वह स्थान टखना (Ankle) कहलाता है। टखने के नीचे और पीछे एड़ी (या पार्ष्णि; Calcaneum) होती है। एड़ी और टखने के दोनों

में ७ अस्थियां होती हैं । यह अस्थियां कलाई की अस्थियों की भांति सबकी सब सीधी पंक्तियों में नहीं रक्खी रहती । बड़े छोटे होने के कारण वे कुछ आगे पीछे और ऊपर नीचे रहती हैं ।

६–१२ टखने और एड़ी की अस्थियां (कूर्चास्थियां)

(Tarsal bones)

(१) टांग की दोनों अस्थियों के नीचे एक विरूप अस्थि रहती है। इस अस्थि को गुल्फास्थि (Talus) कहते हैं; उसका अगला भाग शिर कहलाता है; शिर का अगला पृष्ठ अण्डाकार होता है और वह नौकाकृति (Navicular) से मिला रहता है; शिर के नीचे के पृष्ठ पर पार्ष्णि (Calcaneum) से मिलने के लिये स्थालक होते हैं । शिर के पीछे ग्रीवा है । ग्रीवा के नीचे के पृष्ठ पर गुल्फ खात (Sulcus tali) होता है । ग्रीवा के पीछे का मोटा भाग गात्र कहलाता है । गात्र के ऊपर के पृष्ठ पर जंघास्थि टिकती है; गात्र के अन्तरीय तल से अन्तर्गुल्फ मिलता है; बाह्य तल से बहिर्गुल्फ मिलता है; नीचे, पृष्ठ पर पार्ष्णि से मिलने के लिये स्थालक होता है । (चित्र ५०, ५१)

(२) गुल्फास्थि के नीचे एक बड़ी और विरूप अस्थि रहती है; इसके अगले भाग के ऊपर गुल्फास्थि टिकी रहती है; पिछला भाग पीछे को निकला रहता है और इसी उभार को एडी (Heel) कहते हैं । इस अस्थि का नाम पार्ष्णि (Calcaneum) है। यह कूर्चास्थियों में सबसे बड़ी है। उसके छः पृष्ठ होते हैं। ऊपर के पृष्ठ पर गुल्फास्थि के टिकने के लिये स्थालक होते हैं; नीचे के पृष्ठ पर पिछले भाग में दो प्रवर्द्धन होते हैं; बाह्य पृष्ठ त्वचा में से टटोला जा सकता है; अन्तर पृष्ठ पर ऊपर के भाग में

दाहिनी गुल्फास्थि [Talus] और पार्ष्णि [Calcaneum] बहिस्तल [Latera surface] ~ जहां जंघास्थि टिकती है
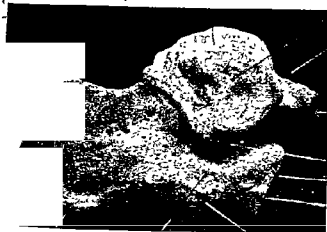
बहिर्गुल्फ स्थालक (Facet for later malleol

ग्रीवा [Neck]

शिर [Head]

नौकाकृति स्थालक (Facet for navicular

कर्च सुरंग (Sulcastarsi)

घन स्थालक (Facet for cuboid)

प्रवर्द्धन [Tuberal

प्रवर्द्धन पादविवर्तनी दीर्घा परिखा (Groove for peroneus longus

चित्र ५१ उन्हीं अस्थियों का अन्तस्तल [Medial Surface]

कूर्च सुरंग [Sulcus tarsi]

acet for जंघास्थि स्थालक ibia

अंतर्गुल्फ स्थालक [Surface for medial nalleolus]

ग्रीवा

नौकाकृति स्थालक

बंधन का स्थान

गुल्फ प्रवर्द्धन Sustentaculum tali]
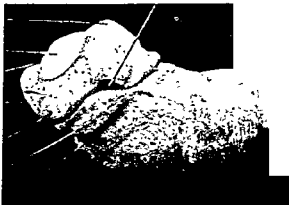
ाद अंगुष्ठ संकोचनी दीर्घा परिखा [Groove for Flexor hallucis longus]

पृष्ठ ९२ के स

चित्र ५२ पैर का एक्स रे चित्र

चित्र ५३ पैर का एक्स-रे चित्र
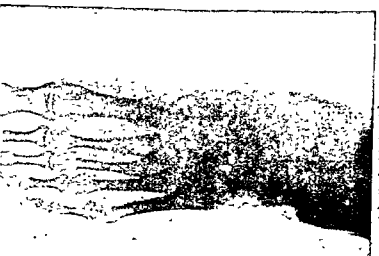
चित्र ५५ एक्स-रे चित्र ५३ की सूची
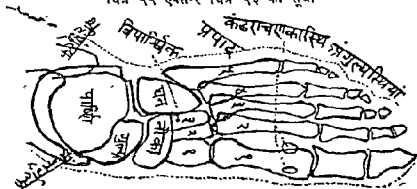
चित्र ५४ एक्स रे चित्र ५२ की सूची
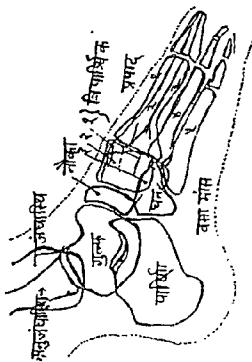
गुल्फ प्रवर्द्धन (Sustentaculum tali) होता है इसके ऊपर गुल्फास्थि का एक भाग रहता है; गुल्फ प्रवर्द्धन के नीचे के पृष्ठ पर एक परिखा होती है, जिसमें पादगुष्ठ सकोचनी दीर्घा की कण्डरा (Tendon of Flexor Hallucis longus) रहती है, अगला पृष्ठ घनास्थि से मिला रहता है; पिछला पृष्ठ टटोला जा सकता है। (चित्र ५०, ५१)

(३) गुल्फास्थि के अगले गोल सिरे के सामने एक अस्थि रहती है, जिसकी शकल नौका जैसी होती है यह पैर की नौकाकृति (Navicular) अस्थि है। इसका गहरा भाग (नतोदर पृष्ठ) (Concave surface) पीछे को रहता है यही गुल्फास्थि का गोल सिर उससे मिला रहता है; उभरा (उन्नतोदर) पृष्ठ आगे को रहता है। यह अस्थि पैर के अगुष्ठ की ओर के किनारे के मध्य में टटोलने से स्पर्श की जा सकती है। (चित्र ४९ में ३)

४, ५, ६—नौकाकृति के अगले पृष्ठ से तीन छोटी-छोटी अस्थिया मिली रहती है इनकी शकल कुछ-कुछ त्रिपार्श्व जैसी होती है इस कारण ये त्रिपार्श्विक (Cuneiform) अस्थियां कहलाती है; इन अस्थियों की गिनती अंगुष्ठ की ओर से होती है:—प्रथमा (या अन्त: ; Medial), द्वितीया (या मध्य ; Intermediate), तृतीया (या वहि: ; Lateral) त्रिपार्श्विक अस्थियाँ (Cuneiform bones) कहलाती है। (चित्र ४९ में ४, ५, ६)

७—पार्ष्णि के अगले सिरे से लगी हुई कनिष्ठा की ओर एक घनाकार अस्थि रहती है; यह पैर की घनास्थि (Cuboid) कहलाती है (चित्र ४९ में ७)।

इन सातों कूर्चास्थियों में से अगली चार अर्थात् प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, त्रिपार्श्विक और घन एक पंक्ति में रहती हैं। पिछली अस्थियों

में से गुल्फास्थि पार्ष्णि के ऊपर रहती है। पार्ष्णि आड़ी रहती है; उसका अगला सिरा पैर के कनिष्ठा की ओर के किनारे की तरफ को रहता है। गुल्फास्थि भी कुछ आड़ी रहती है; उसका अगला सिरा पैर के अंगुष्ठ की ओर के किनारे की तरफ रहता है; इस अगले सिरे के सामने नौकाकृति अस्थि रहती है।

१३–१७ प्रपाद की अस्थियां (Metatarsals) (चित्र ४९, ५२[1] ५३, ५४, ५५) त्रिपार्श्विक वा घन अस्थियों के सामने और अंगुलियों के पीछे पैर का जो भाग है, वह प्रपाद या प्रपाद कहलाता है। प्रपाद में हस्ततल की तरह पांच लम्बी-लम्बी शलाकाकार अस्थियां होती हैं। अंगुष्ठ की प्रपादास्थि सबसे मोटी होती है। इन अस्थियों के अगले सिरे गोल होते हैं। इनकी गिनती अंगुष्ठ की ओर से १-२-३-४-५ होती है। पहली तीन प्रपादास्थियां (Metatarsals) त्रिपार्श्विक अस्थियों के सामने रहती हैं; ४, ५ प्रपादास्थियां घनास्थि के अगले पृष्ठ से मिली रहती है। प्रपादास्थियां करभ की अस्थियों से तुरन्त पहचानी जा सकती हैं (चित्र ४९ में १′, २′, ३′, ४′ ५′)

१८–३१ अंगुलियों की अस्थियां

पैर की अंगुलियों में उतनी ही अस्थियां हैं, जितनी हाथ की अंगुलियों में; इनको भी पोर्वे (Phalanges, या अंगुल्यस्थियां) कहते हैं। अंगुष्ठ में दो मोटे-मोटे पोर्वे होते हैं; शेष अंगुलियों में तीन-तीन। सबसे अगले पोर्वे खुर जैसे होते हैं और इन पर नख रहते हैं। कनिष्ठा के पोर्वे बहुत छोटे-छोटे हैं।

इस प्रकार दोनों निम्न शाखाओं में ३१ × २ = ६२ अस्थियां हुईं।

---

१. चित्र ५२, ५३ लेखक के दाहिने पैर के एक्सरे-फोटो हैं और चित्र ५४, ५५ इन फोटो की व्याख्या है।

अध्याय ४

रीढ़ (पृष्ठवंश) (Vertebral column) की अस्थियां (चित्र ५६, ५७) ग्रीवा, पीठ और कमर की मध्य रेखा में, अंगुली से टटोलने से जो डंडे जैसी कडी चीज मालूम होती है, उसको रीढ, पृष्ठवश या कशेरू (Spine) कहते हैं। इस डडे के वास्तव में २६ टुकडे हैं, जो आपस में बन्धनो से बधे रहते हैं। इन २६ पृथक्-पृथक् अस्थियों में से सबसे नीचे की दो अस्थिया वास्तव में कई छोटी-छोटी अस्थियों के आपस में जुड जाने से बनी हैं। यदि हम इन अस्थियों की गिनती अलग-अलग करें तो रीढ की कुल अस्थियो की संख्या ३३ हो जायगी। पृष्ठवश की हरएक अस्थि को कशेरुका (Vertebra) या मोहरा कहते हैं। एक कशेरुका दूसरे के ऊपर रक्खा रहता है। यदि पृष्ठवंश में अलग-अलग अस्थियां न होतीं और वह केवल एक लम्बा डडा होता तो जो गतियां ग्रीवा और धड में होती हैं वे कदापि न हो सकती।

इन २६ अस्थियों में से ७ ग्रीवा में रहती हैं; १२ पीठ में; ५ कमर में, शेष २ अस्थियाँ कमर के नीचे वस्तिगह्वर की पिछली दीवार में रहती हैं। इन नीचे वाली दोनो अस्थियों मे से ऊपर की बडी होती है और नीचे की छोटी। बड़ी अस्थि वास्तव में ५ कशेरुका के आपस में जुड जाने से बनी है; और छोटी अस्थि ४ कशेरुका से। बडी अस्थि को त्रिक (Sacrum) और छोटी को पुच्छास्थि, गुदास्थि या चंचु (Coccyx) कहते हैं।

कशेरुका की गिनती विरूप अस्थियो में है, क्योकि इनमें कही उभार होता है, कही छिद्र होता है, कही से ये मोटे होते है, और कही से

चित्र ५६ कशेरुका (Vertebrae]
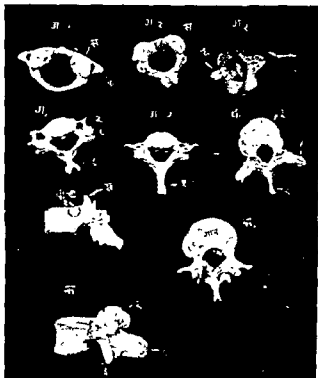
ग—ग्रीवा, पी—पीठ, क—कटि, (Lumbar)
ग १—ग्रीवा का पहला कशेरुका. (Atlas)
ग २— ,, दूसरा कशेरुका (Axis)
ग —ग्रीवा का सामान्य कशेरुका पा—पार्श्वप्रवर्द्धन (Transverse Process)
स—संधि प्रवर्द्धन (Articular Process)
द—दंत प्रवर्द्धन (Odontoid process)
१—लंबा कशेरु कण्टक (Spine)

पृष्ठ ६६ के सम्मुख

चित्र ५७ पृष्ठवंश
(Vertebral column)

१ से ७ तक = ग्रीवाके कशेरुका (Cervical Vertebrae)

१' से १२' तक = पीठ के कशेरुका (Thoracic Vertebrae)

१'' से ५'' तक = कटि या कमर के कशेरुका (Lumbar Vertebrae)

क क = कशेरु कण्टक या पाश्चात्य प्रवर्द्धन (Spine; Spinous processes)

रा = स्थालक या गढ़ा यहाँ पसली का अर्बुद या उभार मिलता है (Facet for the tubercle *of the rib*)

स ग = गात्र का स्थालक, यहाँ पसली का पिछला सिरा मिलता है (Facet for the head of the rib)

च = कारटिलेज की चक्री (Intervertebral disc; cartilage)

ट = नाड़ियों के बाहर आने के लिये रास्ता (Intervertebral foramen.)

पतले । रीढ की लम्बाई पुरुषो मे २८ इंच, स्त्रियो में २४ इच के लगभग होती है । रीढ की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १ २·४ से २ ७ तक के लगभग होती है ।

चित्र ५८ पीठ का कशेरुका (Thoracic vertebra)
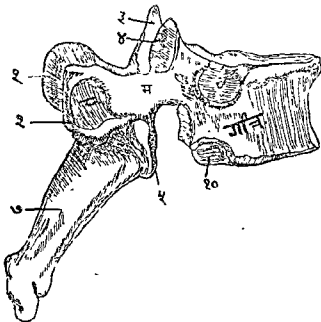
१, २ पार्श्व प्रवर्द्धन (Transverse processes) । ३, ४, ५—संधि प्रवर्द्धन (Articular processes) । ७—पाश्चात्य प्रवर्द्धन या कशेरुकण्टक (Spinous process) । ८—स्थालक (Facet for the tubercle of the rib) । ९, १०—स्थालक (Facets for the heads of the ribs) । म = चक्रमूल (Pedicle) ।

एक सामान्य कशेरुका का वर्णन

कशेरुका की शकल कुछ-कुछ नगदार अंगूठी से मिलती है। अंगूठी का नगवाला भाग मोटा होता है और शेष भाग जो घेरा बनाता है, पतला। कशेरुका के भी दो मुख्य अंश होते हैं; अगला अंश मोटा होता है। इसको गात्र या पिण्ड (Body) कहते है। गात्र के पीछे उससे जुड़ा हुआ एक घेरा (चक्र; Arch) रहता है। इन दोनों भागों से अर्थात् गात्र और घेरे से कई उभार निकले रहते है। इन उभारों को छेदन शास्त्र की परिभाषा में प्रवर्द्धन (Process) कहते हैं। प्रत्येक कशेरुका में सात प्रवर्द्धन होते हैं:—

(१--२) जिस स्थान पर घेरा गात्र से जुड़ा रहता है, वहां से दोनों ओर एक-एक अनुप्रस्थ प्रवर्द्धन निकला रहता है। ये पार्श्व प्रवर्द्धन (Transverse processes) कहलाते हैं। (चित्र ५८ में १–२)

(३--४; ५—६) जहाँ गात्र, पार्श्व प्रवर्द्धन या घेरा एक दूसरे से मिलते है, वहाँ दोनों ओर दो-दो प्रवर्द्धन होते हैं इनमें से एक ऊपर को खड़ा रहता है और दूसरा नीचे को जाता है। जब कशेरुका एक दूसरे के ऊपर रहते है, तो ऊपर के कशेरुका के नीचे के प्रवर्द्धन नीचे वाले कशेरुका के ऊपर के प्रवर्द्धनों से मिल जाते हैं और इस मेल से संधियाँ या जोड़ बन जाते हैं; इन प्रवर्द्धनों को संधि प्रवर्द्धन कहते है। ऊपर वाले ऊर्ध्व और नीचे वाले निम्न, सन्धि प्रवर्द्धन (Articular processes) कहलाते हैं। (चित्र ५८ में ३–४; ५)।

(७) घेरे के पिछले भाग से एक नोकीला प्रवर्द्धन निकला रहता है। जब हम रीढ को अँगुली से टटोलते है तब मध्य रेखा में इन्ही प्रवर्द्धनों को स्पर्श करते हैं यह पाश्चात्य प्रवंद्धन (Spinous process) या कशेरुकंटक (Spine) कहलाता है। (चित्र ५८ में ७) कशेरुका का वह

घेरा और गात्र एक दूसरे से मिलते ह, चक्रमूल (Pedicle) कह-लाता है।

एक कशेरुका का गात्र दूसरे के गात्र के ऊपर टिका रहता है। दो गात्रों के बीच में सूत्रमय कारटिलेज की एक मोटी चक्री रहती है। घेरे एक दूसरे के ऊपर आ जाते हैं; इनके एक-दूसरे के ऊपर रहने से एक नली बन जाती है, जो कशेरुकी नली (Vertebral canal) कहलाती है। इस नली में वात संस्थान का वह भाग रहता है, जिसको सुषुम्णा (Spinal Cord) कहते हैं। दो कशेरुका के बीच में गात्रों के पीछे और संधि प्रवर्द्धनो के आगे एक रास्ता (Intervertebral foramen) रहता है, जिसमें से होकर सुषुम्णा से निकली हुई नाड़ियां कशेरुकी नली से बाहर आती हैं।

अब हम हर एक देश के मोहरों में जो विशेष बातें होती हैं उनका वर्णन करते हैं।

ग्रीवा के कशेरुका के लक्षण (चित्र ५६ में ग १ ग २, ग, ग ७) पहले और दूसरे मोहरों को छोडकर शेष मोहरे एक ही जैसे होते हैं केवल छोटे-बड़े का भेद होता है। नीचे वाले मोहरे ऊपर वालों से कुछ बड़े होते हैं। इन मोहरो के पार्श्व प्रवर्द्धनो में एक छिद्र (Foramen transversarium) होता है; छिद्र के आगे यह प्रवर्द्धन बहुधा फटकर दो भागों में विभक्त हो जाता है (चित्र ५६ में ग,)। पहले और सातवें मोहरों को (चित्र ५६ में ग ७) छोड कर और सब मोहरो के पाश्चात्य प्रवर्द्धन नोक पर से फटे हुए होते हैं। सातवें मोहरे का यह प्रवर्द्धन बहुत लम्बा होता है और नोक पर से फटा हुआ नही होता (चित्र ५६ ग ७ में १)।

पहले मोहरे मे और मोहरों के गात्र जैसा कोई मोटा भाग नही होता। गात्र के स्थान में एक महराब होती है। पाश्चात्य प्रवर्द्धन बहुत छोटा होता है। संधि प्रवर्द्धन भिन्न प्रकार के होते है; इनमें से ऊपर

चित्र ५९ प्रथमा ग्रीवा कशेरुका (Atlas)
(ऊपर का भाग)

चित्र ६० प्रथमा ग्रीवा कशेरुका
(नीचे का भाग)

के प्रवर्द्धनों पर कपाल की पाश्चात्य अस्थि (Occipital bone) आश्रित रहती है। (चित्र ५६ मे ग १, चित्र ५९, ६०)

दूसरे मोहरे में यह विशेषता है कि गात्र के ऊपर से एक दांत के सदृश (दंतवत्) प्रवर्द्धन (Odontoid process) और निकला रहता है। (चित्र ५६–ग २ में द)

पीठ के मोहरों के लक्षण (Thoracic vertebrae) (चित्र ५८ चित्र ५६ में पी) पीठ के मोहरे ग्रीवा के मोहरो से

चित्र ६१ कटि कशेरुका
(Lumbar Vertebra)
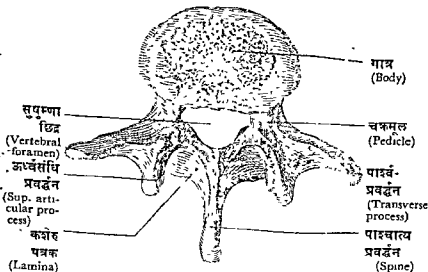
अधिक मोटे और मजबूत होते हैं। इनके पार्श्व प्रवर्द्धनो में कोई छिद्र नही होता, परन्तु ऊपर के दस मोहरों में इन प्रवर्द्धनों के सिरो पर एक छोटा सा गढ़ा या स्थालक होता है; यहाँ पर पसली

के पिछले सिरे का एक अंश आकर मिलता है। सब मोहरों के गात्रों पर दोनों ओर पार्श्व प्रवर्द्धनों के आगे पसलियों के पिछले सिरों के मिलने के लिए दो (या एक) गढे होते हैं। ऊपर के आठ मोहरों में दो-दो गढे होते हैं। एक ऊपर के किनारे के पास दूसरा नीचे के किनारे के पास (चित्र ५८ में ९, १०)। ९, १०, ११, १२ मोहरों के गात्रों पर केवल एक-एक गढ़ा होता है। पाश्चात्य प्रवर्द्धन सिरों पर से फटे हुए नहीं होते और वे नीचे को झुके रहते हैं।

कमर (कटि) के मोहरों (Lumbar Vertebrae) के लक्षण (चित्र ५६ क, क, चित्र ६१) इस देश के मोहरे सबसे मोटे और मजबूत होते हैं। इनके गात्र बहुत चौड़े और मोटे होते हैं। इस देश में पसलियों के न होने के कारण गात्रों पर पीठ के मोहरों की भांति कोई गढ़ा नहीं होता है। पार्श्व-प्रवर्द्धन बहुत मोटे होते हैं और उन पर कई छोटे-छोटे उभार होते हैं। इन प्रवर्द्धनों में न कोई छिद्र होता है और न कोई गढ़ा।

त्रिक (Sacral) देश के मोहरे (चित्र ६२, ६३)

त्रिक देश में दो अस्थियाँ हैं, जिनमें से ऊपर की बड़ी होती है और नीचे की छोटी।

बड़ी अस्थि-त्रिकास्थि (Sacrum) वास्तव में पाँच मोहरों के आपस में जुड़ जाने से बनी है; इस बात के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। अस्थि के अगले पृष्ठ पर चौड़ाई के रुख चार उभरी हुई रेखाएँ होती हैं; यहीं पर इन मोहरों के गात्र आपस में जुड़े हैं। गात्रों के इधर-उधर अस्थि का जो भाग है, वह पार्श्व-प्रवर्द्धनों के जुड़ जाने से बना है। अस्थि का पिछला भाग मोहरों के घेरों और सन्धि प्रवर्द्धनों के आपस में मिल जाने से बना है; इनके आपस में जुड़ने से एक नली बन जाती है, जिसके भीतर नाड़ियाँ रहती हैं। ऊपर वाले मोहरों के नीचे वालों से बड़े होने के कारण इस अस्थि की शकल तिकोनी होती है (शायद इसी कारण

चित्र ६२ त्रिकास्थि (Sacrum) (अगला पृष्ट)
त्रिक के पहले कशेरुका के गात्र का ऊपर का पृष्ट
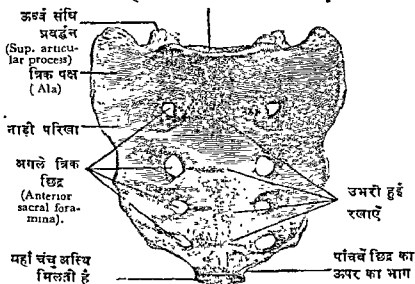
इसका नाम त्रिक पड़ा है) इस अस्थि के अगले और पिछले पृष्ठों पर ८, ८ छिद्र होते है, चार मध्य रेखा के एक ओर और चार दूसरी ओर। इन छिद्रों में से होकर नाड़ियाँ बाहर निकलती है और रक्त की नलियाँ आती जाती है ।

इस अस्थि के पार्श्वों से नितंबास्थियां जुड़ी रहती है ।

पुच्छास्थि या गुदास्थि (Coccyx) :—वास्तव में यह चार छोटी-छोटी अस्थियों के जुड़ जाने से बनी है । जिन जानवरों में पूछ होती है उनमें ये मोहरें जुदा-जुदा होते है[1]। यह अस्थि पूँछ की अस्थि है ।

१. घोड़े की पूँछ में १५–२१ तक सामान्यत: १८; बैल में १८–२०; सुअर और कुत्ते में २०–२३ कशेरुका होते हैं । (देखो चित्र १५–१९ तक)

चित्र ६३ त्रिकास्थि (Sacrum) (पिछला पृष्ट)
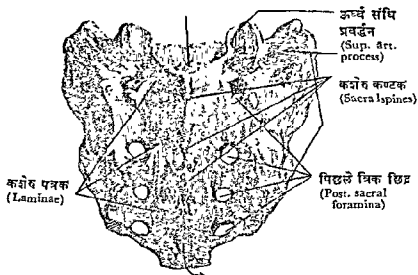
मनुष्य के शरीर के विकास के समय यह पूंछ लुप्त हो गई। इसकी शक्ल तिकोनी होती है। यह अस्थि ऊपर चौड़ी होती है और नीचे नोकीली। मलद्वार से पीछे अँगुली से दबा कर हम इस अस्थि की नोक को स्पर्श कर सकते हैं। इस अस्थि में न कोई छिद्र होता है और न कोई नली। (चित्र ६४ में पुच्छास्थि; चित्र ४२, ४३)

वक्षःस्थल (Thorax) की अस्थियाँ (चित्र ९, ११, ४४, ६६)

वक्ष की दीवार में ३७ अस्थियाँ होती हैं। इनमें से एक अस्थि सामने मध्य रेखा में रहती है, इसको वक्षोऽस्थि कहते हैं। पीठ में १२ मोहरे रहते हैं; इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। दोनों पार्श्वों में १२, १२ अस्थियाँ रहती हैं, इनको पसलियाँ कहते हैं। इस प्रकार पीठ के मोहरों को छोड़कर २५ अस्थियों का वर्णन करना शेष है।

चित्र ६४ पीठ
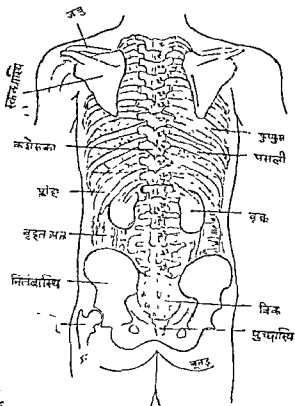
वक्षोऽस्थि या उरोऽस्थि (Sternum) (चित्र ६५, ६८)

यह एक चौड़ी और चपटी अस्थि है। इसके दो पृष्ट होते हैं एक अगला, दूसरा पिछला, दो किनारे होते हैं एक दाहिना, दूसरा बायाँ;

चित्र ६५ उरोस्थि (Sternum) (अगला पृष्ट)

अक्षक संधि स्थालक (Facet for clavicle)
१. उप-पर्शुका स्थालक (Facet for 1st costal cartilage)
२. उप-पर्शुका स्थालक
पहला टुकड़ा
३. उप-पर्शुका स्थालक
दूसरा टुकड़ा
४. उप-पर्शुका स्थालक
तीसरा टुकड़ा
५. उप-पर्शुका स्थालक
६. उप-पर्शुका स्थालक
७. उप-पर्शुका स्थालक
ऊर्ध्वखंड (Manubrium)
मध्यखंड (Body of sternum)
चौथा टुकड़ा
अधखंड (Xiphisternum)
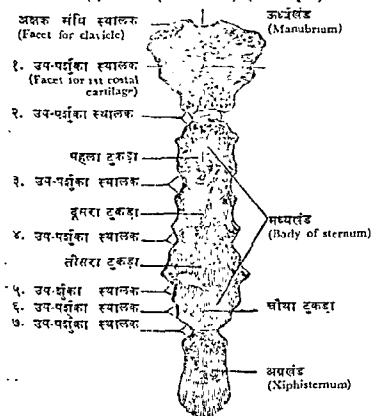
दो सिरे होते हैं एक ऊपर का दूसरा नीचे का। ग्रीवा के नीचे के भाग से आरम्भ होकर यह अस्थि उदर के कौड़ी देश तक रहती है। कौडी में दबाकर टटोलने से जो कडी चीज मालूम होती है, यह इसी अस्थि के नीचे का भाग है।

इस अस्थि का ऊपर का भाग अधिक चौड़ा है, यहाँ दोनो ओर अक्षकास्थियों के सिरों के लिए स्थालक होते हैं। इन स्थालकों के नीचे दोनों किनारों पर सात-सात स्थालक और होते हैं जिनसे ऊपर की सात पसलियों के अगले सिरों पर लगे हुए कारटिलेजों (उपपर्शुकाओं) के नोकीले सिरे मिलते हैं।

बहुधा इस अस्थि के तीन अंश या टुकड़े अलग-अलग पाये जाते हैं (चित्र ६८ में १)—एक ऊपर का चौडा और छोटा (ऊर्ध्वखड; Manubrium), दूसरा बीच का लम्बा (मध्यखड; Body); तीसरा नीचे का पतला (अग्रखंड; Xiphisternum) जो कौड़ी देश में दबाने से स्पर्श किया जा सकता है (चित्र ६८ के १ में १, २, ३)। जहाँ ऊर्ध्वखंड मध्यखड से जुडता है, वहाँ टटोलने से चौड़ाई के रुख एक उभरी हुई रेखा मालूम होती है। ऊर्ध्वखंड से अक्षक और पहली पसली का कारटिलेज; ऊर्ध्व और मध्यखंड के जोड़ पर दूसरी पसली का कारटिलेज; दूसरे खंड के शेष भाग से ३, ४, ५, ६ पसलियों के कारटिलेज मिलते हैं। मध्य और अग्रखड के जोड़ पर सातवी पसली का कारटिलेज लगता है (चित्र ९ और ६५)[1]

---

१ देखो चित्र ६८। बचपन में उरोस्थि के छः टुकड़े होते हैं, जो आपस में कारटिलेज द्वारा जुड़े रहते हैं (२); वृद्धावस्था में तीनों टुकड़ एक दूसरे से जुड़ जाते हैं और अग्रखंड जो जवानी में कारटिलेज का या अस्थिकृत हो जाता है (३)।

चित्र ६६ पर्शुका (Rib)
मुण्ड या शिर (Head)
पहली पर्शुका का कण्टक
ग्रीवा (Neck)
(अर्बुद जिससे बन्धन लगा रहता है)
(Tubercle–nonarticular–
ligamentous–part)
अर्बुद (संधि सम्बन्धी भाग) Tubercle–articular part)
कोण (Angle)
यहाँ उपपर्शुका लगी रहती है
(Sternal end)
ऊर्ध्वधारा (Superior border)
दो स्यालक (Two facets)
पर्शुकान्तर (Intercostal space)
एक स्यालक
अर्बुद
एक स्यालक
अधोधारा (Inferior border)
एक स्यालक (Single facet)
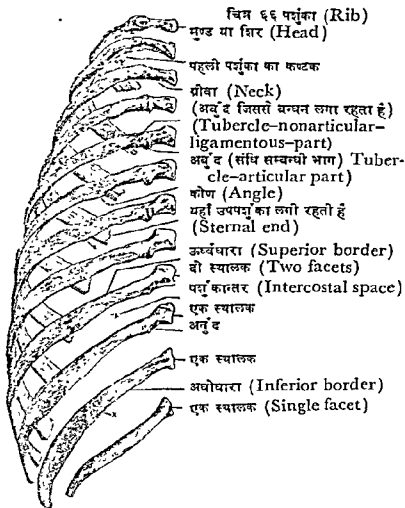
पसलियाँ (पर्शुका) (Ribs) (चित्र ९, ४४, ६४, ६६, ६७)

दोनों ओर बारह-बारह पसलियाँ होती हैं। ऊपर और नीचे की पसलियाँ बीचवाली पसलियों से कम लम्बी होती हैं। ऊपर की दस पसलियों के पिछले सिरे पीठ के मोहरों के गात्रों और पार्श्व प्रवर्द्धनों से मिले और बँधे रहते हैं, ११वीं और १२वीं पसलियों के पिछले सिरे केवल

चित्र ६७ पर्शुका (पसली) (Rib)
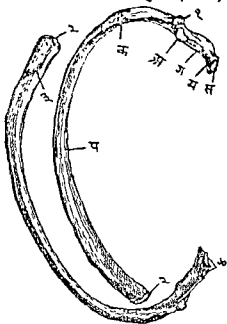
२ = वक्षोऽस्थि की ओर का सिरा जिस पर उपपर्शुका लगी रहती है; ३ = कोण; ४ = कशेरुका की ओर का सिरा जिस पर सामान्यतः दो गढ़े या स्यालक होते हैं।

११वें और १२वें मोहरों के गात्रों से बँधे रहते हैं, उनका प्रवर्द्धनों से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

पसलियों के अगले सिरे सामने मध्यरेखा तक नहीं पहुँचते, उनका वक्षोऽस्थि से कुछ दूरी पर अन्त हो जाता है। पसलियों के अगले सिरों और वक्षोऽस्थि के किनारे के बीच में कारटिलेज (Cartilage) की पट्टियां रहती है इनको उपपर्शुका (Costal Cartilage) कहते है। केवल ऊपर की सात उपपर्शुकाएं वक्षोऽस्थि से जुड़ी रहती हैं; आठवी, नवी और दसवी उपपर्शुकाएं वक्षोऽस्थि तक नहीं पहुँचती; आठवीं उपपर्शुका, ऊपर वाली सातवी उपपर्शुका से बँधी रहती है; इसी प्रकार नवी आठवी से और दसवी नवी से बँधी रहती हैं (चित्र ९)।

नीचे की ११वी और १२वीं पसलियां छोटी-छोटी होती हैं। इनके अगले सिरों के कारटिलेज न वक्षोऽस्थि तक पहुंचते हैं और न अपने ऊपर वाले कारटिलेजों से बँधे रहते हैं। ११वी पसली का अगला सिरा उदर की दीवार को दबाकर स्पर्श किया जा सकता है।

पसलियों के बीच में जो अन्तर रहता है उसमें माँस-पेशियां रहती हैं। ये पेशियां ऊपर की पसली के नीचे के किनारे से और नीचे की पसली के ऊपर के किनारे से लगी रहती हैं।

पसलियाँ तिरछी लगी रहती हैं। श्वास लेते समय वक्षोऽस्थि और पसलियाँ मांसपेशियों के सिकुड़ने के कारण ऊपर को उठती और फिर नीचे को गिरती दिखाई देती हैं। ऊपर को उठने से वक्षःस्थल (छाती) की समाई बढ़ आती है।

यदि हम अक्षक, स्कन्धास्थि और बाहु को वक्ष से जुदा कर दें, तो वक्ष का आकार कुछ-कुछ गावदुमी (शंक्वाकार) दिखाई देगा (चित्र ९) अर्थात् वह गरदन की ओर कम चौड़ा है और यहां से उदर की ओर

अधिक चौड़ा होता चला गया है। इस कोष्ठ की तली मे एक मांस का परदा लगा है, जो वक्षउदरमध्यस्थ पेशी (Diaphragm) कहलाता है।

कंकाल को देखने से (चित्र ४४ में छः) पीठ के पहले मोहरे, दोनो ओर की पहिली पसलियों और वक्षोऽस्थि के ऊपर के किनारे के बीच में एक गोल छिद्र दिखाई देता है (इस छिद्र की सीमा उपर्युक्त अस्थियो से बनती हैं)। इस छिद्र या द्वार में से होकर टेंटुवा, अन्न प्रणाली और रक्त की कई नलियाँ ग्रीवा से वक्ष के भीतर जाती हैं और रक्त की कई नालियाँ व महा लसीका वाहिनी वक्ष से निकलकर ग्रीवा में जाती हैं।

जब बाहु वक्ष से जुडी रहती है, तो वक्ष का ऊपर का भाग नीचे से अधिक चौड़ा और मोटा दिखाई देता है; कारण यह है कि बाहु वक्ष से सामने की तरफ मोटी-मोटी मांस-पेशियों द्वारा बंधी रहती हैं और इन पेशियों के ऊपर वसा रहती है; इन पेशियों, वसा और स्कन्ध के उभार के कारण वक्ष का ऊपर का भाग नीचे के भाग से अधिक चौडा और उभरा हुआ दिखाई देता है।

कर्पर (खोपड़ी) (Skull) की अस्थियाँ

खोपड़ी में २२ अस्थियाँ होती हैं। इनमें से ८ अस्थियो के परस्पर मेल से एक कोष्ठ (Chamber) बन जाता है, जिसके भीतर मस्तिष्क या दिमाग रहता है। शेष १४ अस्थियां इस कोष्ठ के अगले भाग में लगी रहती हैं और इनसे चेहरे का ढांचा बनता है। इस ढाचे मे आंखों के लिए गढे होते हैं; नासिका होती है और नासिका के नीचे जवड़े होते हैं, (चित्र ६९)।

खोपड़ी का वह भाग जो आठ अस्थियों के परस्पर मेल से बना है कपाल (Cranium) कहलाता है (चित्र ७०)।

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट १०

चित्र ६८ उरोस्थि (Sternum)

(१) (२) (३)
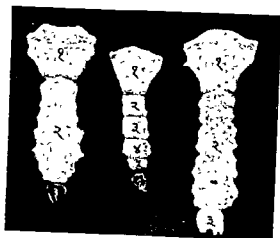
त्रि. ना. वर्मा

(१) = जवान मनुष्य की उरोस्थि
(२) = १०, १२ वर्ष के बालक की उरोस्थि
(३) = वृद्ध पुरुष की उरोस्थि

पृष्ठ ११२ के सम्मुख

चित्र ६९ खोपड़ी (Skull)

त्रि० ना० वर्मा

१=ललाटास्थि (Frontal) २=अधोहन्वस्थि (Mandible)
३=ऊर्ध्वहन्वस्थि (Maxilla) ४=नासास्थि (Nasal)
५=गंडास्थि (Zygomatic) ६=नासाफलक (Nasal Septum)
७=अधोशुक्तिका (Inferior concha)
८=शंखास्थि (Temporal) ९=मध्य शुक्तिका (Middle concha)

पृष्ठ ११३ के सम्मुख

(Toldt's Atlas of Anatomy)
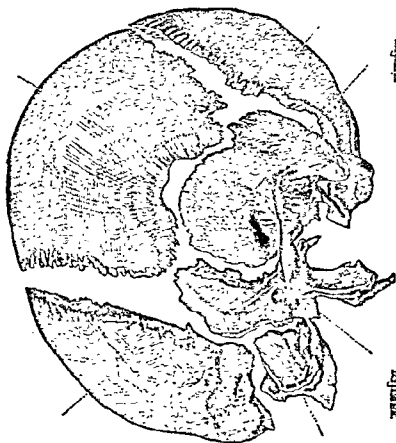
कपाल (Cranium) की अस्थियाँ

(१) ललाटास्थि (Frontal) (चित्र ६९ में १; चित्र ७०–७१)। इस कोष्ठ के अगले भाग में जो अस्थि है, उसको ललाटास्थि कहते हैं। माथा या मस्तक इसी अस्थि से बनता है। इस अस्थि के दो भाग हैं, एक भाग भौं के ऊपर दूसरा उसके नीचे। भौं के स्थान में अस्थि मुड़ गई है; ऊपर का भाग ऊपर को चोटी की ओर चला जाता है; नीचे का भाग पृथिवी के समानान्तर पीछे को चला गया है। पहला भाग ऊर्ध्व (खड़ा) दूसरा समस्थ (पड़ा) कहलाता है। भौं के स्थान पर दोनों भागों के मेल से एक समकोण बनता है। समस्थ भाग मध्य-रेखा में कटा रहता है; इस अन्तर या खाई में कपाल की बहुछिद्रास्थि (झर्झरास्थि; Ethmoid) का एक अंश फँसा रहता है (चित्र ७१ में १, चित्र ८१) समस्थ भाग के दो पृष्ठ होते हैं एक ऊपर का, दूसरा नीचे का; ऊपर के पृष्ठ से कपाल की तली का अगला भाग बनता है और उस पर मस्तिष्क का अगला भाग रक्खा रहता है (चित्र ८४ में २३) नीचे के पृष्ठ से आँखों के गढ़ों की छतें बनती हैं (चित्र ९२)। ऊर्ध्व भाग के अगले पृष्ठ से माथा, पिछले पृष्ठ से कपाल की अगली दीवार और कुछ भाग छत का बनता है। नवजात बालक में इस अस्थि के दाहिने और बाएँ दो भाग होते हैं और इनके बीच में झिल्ली रहती है (चित्र ७३)।

(२–३) पार्श्विकास्थि (Parietal) (चित्र ७०, ७२, ७३, ७४, ८८)। ललाटास्थि के पीछे कपाल की छत में दो चौड़ी और चपटी अस्थियाँ हैं। इन अस्थियों से छत का बीच का भाग और दोनों पार्श्वों के अधिक भाग बनते हैं। एक अस्थि दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर रहती है। हर एक अस्थि चौकोर है; उसके चार कोने; चार किनारे

चित्र ७१ ललाटास्थि (Frontal) का भीतरी पृष्ठ (अन्तस्तल)
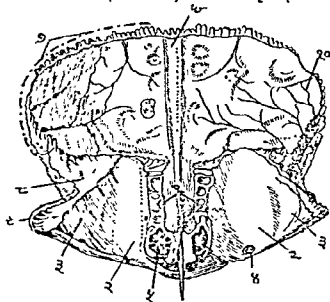
१—खाई या अंतर जिसमें झर्झरास्थि का एक भाग फँसा रहता है (Ethmoidal Notch)। २, ३, ४—समस्त भाग का नीचे का पृष्ठ जिससे आँख के गढ़े की छत बनती है। इस भाग को नेत्रच्छदफलक (Orbital plate) कहते हैं। ३—अश्रु ग्रन्थिखात (Fossa for lacrimal gland)। ४—धमनी या नाड़ीछिद्र (Supra orbital foramen)। ५-खोखला भाग जिसमें वायु रहती है (Frontal air sinus) (वायुकोटर)। ६—शिरा कुल्या परिखा (Sagittal sulcus)। ७—इस किनारे से पार्श्विकास्थि का अगला किनारा जुड़ता है। ८—यहाँ जतूकास्थि इस अस्थि से जुड़ी रहती है। ९—यहाँ गंडास्थि (Zygomatic) लगी रहती है। १०—धमनियों के दबाव से ये नालियाँ बन गई हैं।

और दो पृष्ठ होते हैं। अस्थि बीच में शिर की गोलाई के अनुसार मुडी रहती है; कान के ऊपर टटोलने से एक उभार मालूम होता है (यह वह स्थान है जहाँ यह अस्थि मुडी रहती है)। अस्थि का अगला किनारा ललाटास्थि के ऊर्ध्व भाग के पिछले किनारे से मिला रहता है; ऊपर का किनारा मध्यरेखा में दूसरी ओर की अस्थि के किनारे से मिला रहता

चित्र ७२ बालक की खोपड़ी का ऊपर का पृष्ठ

है; पिछला किनारा पश्चादस्थि के अगले किनारे से मिला रहता है; नीचे का टेढ़ा किनारा शङ्खास्थि के किनारे से मिला रहता है।

अस्थि में चार कोने होते हैं—दो अगले ऊपर और नीचे के (चित्र ७४ में

चित्र ७३ एक नवजात बालक के शिर का छेदन है। ललाटास्थि के बचपन में दो भाग होते हैं यह स्पष्ट रूप से मालूम होता है।

चित्र ७३ नवजात बालक की खोपड़ी

त्रि० ना० वर्मा

३, ४=ललाटास्थि के दो भाग जो अभी अलग अलग हैं
५=ब्रह्मरन्ध्र (Ant. fontenelle) ; ६=झिल्ली
१, २=पार्श्विकास्थियाँ (Parietal bones)

पृष्ठ ११६ के सम्मुख

और दो पृष्ठ होते हैं। अस्थि बीच में शिर की गोलाई के अनुसार मुडी रहती है; कान के ऊपर टटोलने से एक उभार मालूम होता है (यह वह स्थान है जहाँ यह अस्थि मुड़ी रहती है)। अस्थि का अगला किनारा ललाटास्थि के ऊर्ध्व भाग के पिछले किनारे से मिला रहता है; ऊपर का किनारा मध्यरेखा में दूसरी ओर की अस्थि के किनारे से मिला रहता

चित्र ७२ बालक की खोपड़ी का ऊपर का पृष्ठ
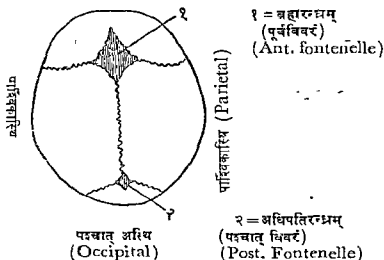
है; पिछला किनारा पश्चादस्थि के अगले किनारे से मिला रहता है; नीचे का टेढ़ा किनारा शंखास्थि के किनारे से मिला रहता है।

अस्थि में चार कोने होते हैं—दो अगले ऊपर और नीचे के (चित्र ७४ में

चित्र ७३ एक नवजात बालक के शिर का छेदन है। ललाटास्थि के बचपन में दो भाग होते हैं यह स्पष्ट रूप से मालूम होता है।

चित्र ७३ नवजात बालक की खोपड़ी

त्रि० ना० वर्मा
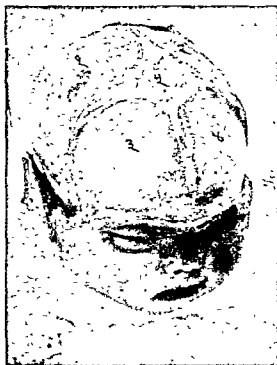
३, ४=ललाटास्थि के दो भाग जो अभी अलग अलग हैं
५=ब्रह्मरन्ध्रम् (Ant. fontenelle) ; ६=झिल्ली
१, २=पार्श्विकास्थियाँ (Parietal bones)

पृष्ठ ११६ के सम्मुख

१, २) दो पिछले ऊपर और नीचे के (चित्र ७४ में ३, ४) उसके दो पृष्ठ होते हैं एक बाहर का (बहिः) दूसरा भीतर का (आभ्यन्तर)। भीतरी पृष्ठ पर धमनियों के दबाव से कई परिखाएँ बनी होती हैं (चित्र ७४ में ६, ७)।

यदि आप किसी नवजात बालक के शिर को उस स्थान पर दबायें जहाँ इन अस्थियों के ऊपर के अगले कोने ललाटास्थि से मिलते हैं, तो आपको एक गढ़ा मिलेगा और कोई चीज़ फड़कती हुई मालूम होगी। बालकों में इस स्थान में अस्थि नहीं होती; केवल एक झिल्ली रहती है (चित्र ७३ में ५) मस्तिष्क में रक्त भ्रमण करने से जो गति होती है,

---

चित्र ७४:—यह बाई पार्श्विकास्थि का भीतरी पृष्ठ है।

१ = पुरोर्ध्व कोण (Ant. Superior angle); २=पुराध कोण (Ant. Inferior angle); ३ = पश्चिमोर्ध्व कोण (Post Superior Angle); ४ = पश्चिमाधः कोण (Post. Inferior Angle); ५=पार्श्वशिरा कुल्या परिखा (Sigmoid Sulcus); ६, ७ = धमनी परिखाएँ; ८=ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या परिखा (Superior Sagittal Sulcus)

चित्र ७५ :—पश्चात् अस्थि का भीतरी पृष्ठ है।

१ = दाहिनी शिराकुल्या परिखा (Rt. Transverse Sulcus) २ = बाई शिराकुल्या परिखा; ३ = ऊर्ध्व अन्वायाम शिराकुल्या परिखा ४ = तौर्णिका (Crest); ५ = शिरा कुल्या संगम (Confluence of Sinuses); ६ = शिखर (Apex); ७, ८ = पार्श्व कोण; ११, १२ = परिखा के किनारे; १३ = द्वादशी नाड़ीसुरंगा (Ant. Condylar canal) × = यह भाग जतूकास्थि से जुड़ा या मिला रहता है।

१, २) दो पिछले ऊपर और नीचे के (चित्र ७४ में ३, ४) उसके दो पृष्ठ होते हैं एक बाहर का (बहिः) दूसरा भीतर का (आभ्यन्तर)। भीतरी पृष्ठ पर धमनियों के दबाव से कई परिखाएँ बनी होती हैं (चित्र ७४ में ६, ७)।

यदि आप किसी नवजात बालक के शिर को उस स्थान पर दबायें जहाँ इन अस्थियों के ऊपर के अगले कोने ललाटास्थि से मिलते हैं, तो आपको एक गढ़ा मिलेगा और कोई चीज़ फड़कती हुई मालूम होगी। बालकों में इस स्थान में अस्थि नहीं होती; केवल एक झिल्ली रहती है (चित्र ७३ में ५) मस्तिष्क में रक्त भ्रमण करने से जो गति होती है,

---

चित्र ७४:—यह बाईं पार्श्विकास्थि का भीतरी पृष्ठ है।

१ = पुरोर्ध्व कोण (Ant. Superior angle); २ = पुराध कोण (Ant. Inferior angle); ३ = पश्चिमोर्ध्व कोण (Post Superior Angle); ४ = पश्चिमाधः कोण (Post. Inferior Angle); ५ = पार्श्वशिरा कुल्या परिखा (Sigmoid Sulcus); ६, ७ = धमनी परिखाएँ; ८ = ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या परिखा (*Superior Sagittal Sulcus*)

चित्र ७५ :—पश्चात् अस्थि का भीतरी पृष्ठ है।

१ = दाहिनी शिराकुल्या परिखा (Rt. Transverse Sulcus) २ = बाईं शिराकुल्या परिखा; ३ = ऊर्ध्व अन्वायाम शिराकुल्या परिखा ४ = तौणिका (Crest); ५ = शिरा कुल्या संगम (Confluence of Sinuses); ६ = शिखर (Apex); ७, ८ = पार्श्व कोण; ११, १२ = परिखा के किनारे; १३ = द्वादशी नाड़ीसुरंगा (Ant. Condylar canal) × = यह भाग जतूकास्थि से जुड़ा या मिला रहता है।

वह गति इस झिल्ली में से मालूम होती है। दूसरे वर्ष के भीतर इस झिल्ली की जगह अस्थि बन जाती है और फिर गढ़ा नहीं रहता और न फड़क मालूम होती है। दो वर्ष की आयु के पश्चात् फड़क का पाया जाना किसी रोग का साक्षी है। यह स्थान पूर्ण विवर या ब्रह्मरन्ध्रम् (Ant. fontenelle) कहलाता है।

(४) पश्चात् अस्थि (Occipital)—(चित्र ७६ में और २ चित्र ७५, ६९, ८८)। कपाल के पिछले भाग में जो अस्थि है उसका नाम पश्चादस्थि है। गुद्दी के ऊपर के भाग में जो उभार है वह इसी अस्थि का एक अंश है। यह अस्थि शिर को गोलाई के अनुसार मुड़ी हुई होती है। मुड़े रहने के कारण इस अस्थि से न केवल कपाल की छत और पिछला भाग ही बनता है, प्रत्युत तली या फ़र्श के बनने में भी सहायता मिलती है (चित्र ७९, ८४)। जहाँ यह अस्थि मुड़ी हुई है, यहाँ एक बड़ा छिद्र है (चित्र ७९, ७५ महाछिद्र)। छिद्र के सामने का भाग पृथ्वी के समानान्तर रहता है और समस्थ भाग कहलाता है; छिद्र के पीछे का भाग खड़ा है और ऊपर को जाता है, यह ऊर्ध्व भाग कहलाता है। छिद्र के इधर-उधर समस्थ भाग के नीचे के पृष्ठ पर दो उभार होते हैं (चित्र ७९ में २८ चित्र ८८ में १०); ये उभार ग्रीवा के प्रथम कशेरुका के संधि प्रवर्द्धनों के ऊपर टिकते हैं और आलम्ब कूट (Condylar parts) कहलाते हैं। जब कपाल इस कशेरुका पर आश्रित रहता है, तो अस्थि का बड़ा छिद्र कशेरुकी नली के ऊपर आ जाता है और इस प्रकार कशेरुकी नली का कपाल के कोष्ठ से सम्बन्ध हो जाता है। ऊर्ध्व भाग का अगला किनारा दोनों पार्श्विकास्थियों के पिछले किनारों से मिला रहता है। समस्थ भाग के किनारे शंखास्थियों के किनारों से मिले रहते हैं और सिरा कपाल की तली में रहनेवाली जतूकास्थि से जुड़ा रहता है।

चित्र ७६ खोपड़ी (वहिस्तल)

त्रि० ना० वर्मा

१=ललाटास्थि (Frontal) २=पार्श्विकास्थि (parienital)
३=पश्चात अस्थि (Occipital) ४=शंखास्थि (Temporal)
५=गंडास्थि Zygomatic) ६=जतूकास्थि का वृहत् पक्ष Greater wing of Sphenoid)
७=ऊर्ध्वहन्वस्थि (Maxlila) ८=अधोहन्वस्थि (Mandilla)
६=अश्रुवस्थि (Lacrimal) १०=नासास्थि (Nasal)
प=शिफा प्रवर्द्धन (Styloid process)

पृष्ठ ११८ के सम्मुख

चित्र ७७ शंखास्थि (TemParol) (बाह्रीपृष्ठ)
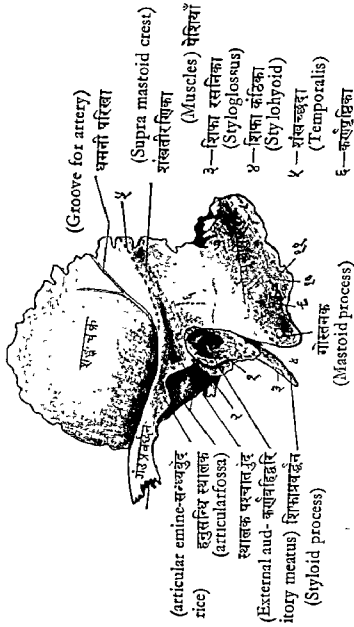
७—कपालच्छदा (Occipitalis) ८—उरःकर्णमूलिका (Sternomastoid) ९—शिरोग्रीवविवर्तनी (Splenius capitis) १०–द्विगुम्फिका (Digastric)

दो मास से कम आयु वाले बालक के सिर में जहाँ पार्श्विकास्थियों के ऊपर के पिछले कोने पश्चादस्थि से मिलते हैं वहाँ पर एक गड़ा रहता है (चित्र ७२ में २); यहाँ भी मस्तिष्क की फड़क मालूम हुआ करती है। दो मास के भीतर ही यह स्थान अस्थि के बन जाने से मजबूत हो जाता है और फड़क बन्द हो जाती है। यह वही स्थान है, जहाँ हिन्दुओं में चोटी (शिखा) रखने का रिवाज है; बहुत से हिन्दुओं में अगले गढ़े के स्थान में भी कुछ वर्षों तक शिखा रक्खी जाती है (चित्र ७२ में अधिपतिरन्ध्र)।

(५-६) शंखास्थि (Temporal)—(चित्र ७७, ८८)। पार्श्विकास्थि के नीचे के किनारे से एक बेडौल विरूप अस्थि लगी रहती है, इस अस्थि के ऊपर कान लगा रहता है और इसके भीतर श्रवणेन्द्रिय के शेष भाग रहते हैं; इस अस्थि के बाहरी पृष्ठ पर मध्य में एक छिद्र होता है; यह कान का बाहरी छिद्र है। (चित्र ७७ में कर्ण बहिर्द्वार) इस छिद्र के ठीक पीछे एक मोटा उभार होता है; यह कान के पीछे टटोल कर स्पर्श किया जा सकता है छिद्र के आगे और उसके नीचे अस्थि में एक गढा रहता है। (चित्र ७७ में हनुसन्धिस्यालक) (Articular fossa), अधो हन्वस्थि के ऊर्ध्व भाग का एक अंश (हनुमुण्ड) (Condylar part of mandible) इस गढ़े में रहता है; यदि हम छिद्र के आगे अँगुली रक्खें और मुंह खोलें और बन्द करें तो अधोहनु इस स्थान पर गति करता मालूम होगा। इस गढे के ऊपर और छिद्र के आगे एक लम्बा और पतला प्रवर्द्धन है; हम इसको छिद्र के आगे टटोल कर मालूम कर सकते हैं; दुबले मनुष्यों में वसा कम होने के कारण यह प्रवर्द्धन त्वचा में से उभरा हुआ दिखाई देता है (चित्र ७७ में गंड प्रवर्द्धन; Zygomatic process)। छिद्र और प्रवर्द्धन के ऊपर का भाग चौड़ा और चपटा होता है।

शंख चक्र (Squamous part of temporal) कहलाता है।

शखास्थि के भीतरी पृष्ठ से एक मोटा त्रिपार्श्विक भाग आगे को और कुछ-कुछ मध्यरेखा की ओर निकला रहता है। यह अश शेष अस्थि से उसी स्थान पर जुड़ा रहता है जहा उसके बाहरी पृष्ठ पर छिद्र है। इसके तीन पृष्ठ हैं, सामने का, पीछे का और नीचे का। कपाल की तली को बाहर से देखने से केवल नीचे का पृष्ठ दिखाई देगा (चित्र ७९) इसमें कई गढे और छिद्र होते हैं और एक कील जैसा नोकीला प्रवर्द्धन भी निकला रहता है (चित्र ७७ में शिफा प्रवर्द्धन; Styloid process); दो पृष्ठ कपाल के भीतर रहते हैं (चित्र ८४) और उन पर मस्तिष्क रक्खा रहता है; पिछले पृष्ठ पर एक छिद्र होता है जिसको कर्णान्तर्द्वार (Iuternal auditory meatus) कहते हैं। त्रिपार्श्विक अंश के उस भाग में जो दोनो छिद्रो (बाहरी और भीतरी) के बीच में है श्रवणेन्द्रिय के मुख्य भाग रहते हैं। यह त्रिपार्श्विक भाग पत्थर जैसा सख्त होता है और अश्म-कूट (Petrous part) कहलाता है। इस भाग में तीन छोटी अस्थियाँ रहती हैं।

शंखास्थि अपने आस पास की अस्थियों से मिली रहती है; चौड़े भाग का ऊपर का किनारा पार्श्विकास्थि से और पिछला किनारा पश्चादास्थि से मिला रहता है। त्रिपार्श्विक भाग पीछे पश्चादस्थि के समस्थ भाग से मिला रहता है। यह अस्थि और अस्थियो से भी मिली रहती है।

अब इन ६ अस्थियों से कपाल का अधिक भाग बन गया है; उसकी अगली और पिछली दीवारें, छत, दोनों पार्श्व पूर्ण हो गये है। फर्श (तली) का भी अधिक भाग बन गया है, परन्तु बीच में कुछ अपूर्णता है जो निम्नलिखित अस्थियो से पूर्ण होती है।

चित्र ७८ जतूकास्थि (Sphenoid)

(Lesser wing) लघुपक्ष
(Greater wing) वृहत्पक्ष
कटा हुआ गात्र
(Spine) कोण
जतूका चरण rygoiprocess { अंतःफलक Medial plate, बाह्य फलक Lateral plate }
ताल्वस्थि का स्थूल भाग (Tubercle of palatine)
ताल्वस्थि का तालु प्रवर्द्धन (Palatine process)
नासा पश्चिम द्वार (Post. nare)
दृष्टि नाड़ीरंध्र (Optic foram
वृत्तरन्ध्र (Foramen rotundı
छिद्र (Pterygoid canal)
नौकाखात (Scaphoid fossa

पृष्ठ १२० के सम्मुख

चित्र ७९ खोपड़ी का अधोभाग

पृष्ठ १२१ के सम्मुख
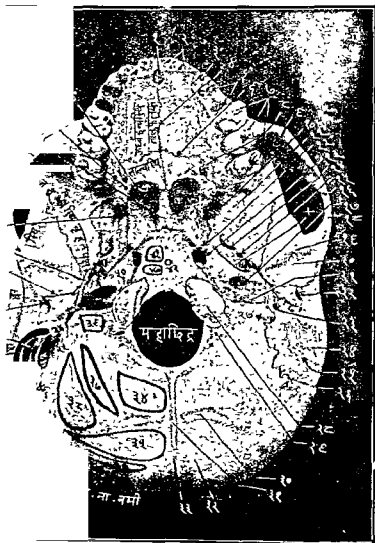
चित्र ७९ की व्याख्या

१ = अग्र तालुखात (Incisive fossa)
२ = कर्तनक दंत उलूखल (Alveoli for incisor teeth)
३ = भेदक दन्त उलूखल (Alveolus of canine tooth)
४ = संधि (Median palatine suture)
५ = अग्र चर्वणक दन्त उलूखल (Alveolus for premolar)
६ = संधि (Transverse palatine suture)
७ = पश्चिम चर्वणक दन्त (Molar teeth)
८ = पश्चिम तालुछिद्र (Greater palatine foramen)
९ = गंडास्थि, शंख प्रवर्द्धन (Temporal process of zygomatic bone)
१० = चर्णखात (Pterygoid fossa)
११ = जतूका चरण (बाह्यफलक) (Lateral pterygoid plate)
१२ = चर्णतालुसुरंगा (Pterygo palatine canal)
१३ = शिरोग्रीवा धमनी सुरंग का अन्त (Foramen lacerum)
१४ = अंडाकार छिद्र (Foramen ovale)
१५ = कोण छिद्र (Foramen spinosum)
१६ = संधि (Temporo-zygomatic suture)
१७ = शिरोग्रीवा धमनी सुरंग का आरंभ (Carotid canal)
१८ = शंखास्थि का गंडप्रवर्द्धन (Zygomatic process of temporal bone)
१९ = संध्यर्बुद (Articular eminence).
२० = हनुसंधि स्थालक (Articular fossa)
२१ = विवर (Jugular foramen)
२२ = कर्ण बहिर्द्वार (External auditory meatus)
२३ = शिफा छिद्र (Stylomastoid foramen)
२४ = गोस्तन प्रवर्द्धन (Mastiod process)
२५ = द्विगुम्फिका खात (Digastric fossa)
२६ = संधि (Occipito-temporal suture)
२७ = अनुकूट प्रवर्द्धन (Jugular process)

२८ = आलम्बकूट (Condylar part)
२९ = खात (Condylar fossa)
३० = अधर तीर्णिका (Inferior nuchal line)
३१ = मन्या तीर्णिका (Ext. occipital crest)
३२ = ऊर्ध्व तीर्णिका (Superior nuchal line)
३३ = मन्यार्बुद (Ext. occipital protuberance)
३४ = शिरः पृष्ठ दंडिका लघ्वी पे० (Rectus capitis post. minor)
३५ = शिरो ग्रीव पश्चिका उत्तरा पे० (Semispinalis capitis)
३६ = कशेरु अंस अक्षका पे० (Trapezius)
३७ = शिरः पृष्ठ दंडिका गुर्वी पे० (Rectus capitis post. major)
३८ = उत्तरतिरश्चीना पे० (Superior oblique)
३९ = शिरः पार्श्व दंडिका पे० (Rectus capitis lateralis)
४० = शिरः पू॰ दंडिका पे० (Rectus capitis anterior)
४१ = दीर्घा शिरस्का पे० (Longus capitis)
४२ = ग्रसनिका सीवनी (Pharyngeal raphe)
४३ = शिरश्छदा पश्चिमा पे० (Occipitalis)
४४ = उरःकर्ण मूलिका पे० (Sternomastoid)
४५ = शिरोग्रीवविवर्तनी पे० (Splenius capitis)
४६ = पृष्ठ दंडिका शिरोभुजा पे० (Longissimus capitis)
४७ = द्विगुल्फिका पे० (Digastric)
४८ = अन्तर (Squamo-tympanic fissure)
४९ = शिफा प्रवर्द्धन (Styloid process)
५० = शंखास्थि के अश्मकूट के अधो पृष्ठ का वह भाग जिससे कंठकर्णी नाली (Pharyngo tympanic tube) का कारटिलेजकृत भाग लगा रहता है
५१ = जतुका चरण (अंत॰ फलक) (Medial Pterygoid plate)
५२ = नासा फलकास्थि (Vomer)
५३ = तालुछिद्र (Lesser palatine foramen)
५४ = नासा पश्चिम द्वार (Post. nares)
५५ = शंख खात (Temporal fossa)

(७) तितलीस्वरूपास्थि या जतूकास्थि[1] (Sphenoid) (चित्र ७८) इसकी शक्ल पर फैलाये हुए तितली के सदृश होती है। यह कपाल की तली में पश्चादस्थि के समस्थ भाग के आगे और ललाटास्थि के समस्थ भाग के पीछे और दोनों शंखास्थियों के बीच में फँसी रहती है (चित्र ८४)। इस अस्थि के ऊपर के पृष्ठ को देखें तो बीच का भाग तितली के धड़ की भाँति मोटा दिखाई देगा; यह इस अस्थि का गात्र (Body) कहलाता है। गात्र से तितली के परों के समान दोनों ओर दो-दो पंख (पक्ष; wings) निकले रहते हैं; अगला पंख (लघु पक्ष; Lesser wing) पतला और छोटा होता है; पिछला मोटा और चौड़ा (वृहत् पक्ष; Greater wing)। अस्थि के इन अंशों में कई छिद्र होते हैं (देखो चित्र ८४)।

गात्र के नीचे के पृष्ठ से दो प्रवर्द्धन निकले रहते हैं; ये अंश तितली (और जतूक) की टांगों के सदृश हैं और कपाल की तली को वाहर से देखने से दिखाई देते हैं। इनको जतूकाचरण (Pterygoid processes) कहते ह (चित्र ७८)।

गात्र का पिछला पृष्ठ पश्चादस्थि से जुड़ा रहता है; अगला पृष्ठ बहुछिद्रास्थि से। पंख और नीचे के प्रवर्द्धन आस-पास की अस्थियों से मिले रहते हैं। गात्र भीतर से खोखला होता है और उसके भीतर वायु भरी रहती है।

(८) झर्झरास्थि या बहुछिद्रास्थि (Ethmoid) (चित्र८०, ८१) सातों अस्थियों के आपस में मिलने के पश्चात् भी कपाल की तली में कुछ कसर रह जाती है। ललाटास्थि के समस्थ भाग की धाई अभी तक

---

१. जतूक = चमगीदड़ या चामचिड़िया। इस अस्थि की शक्ल पंख फैलाये चामचिड़िया से मिलती है।

नहीं भरी; यह आठवीं अस्थि से पूर्ण होती है। इस अस्थि के उस अंश में जो इस घाई में फँसा रहता है बहुत से छोटे-छोटे छिद्र होते हैं; छिद्रों के कारण इस अस्थि का नाम बहुछिद्रास्थि पड़ा है। अस्थि का पिछला भाग जतूकास्थि से मिला रहता है।

इसका वह भाग जो ललाटास्थि की घाई में फँसा रहता है पतरे

चित्र ८० झर्झरास्थि (Ethmoid)
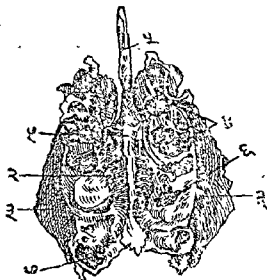
१—शिखरकंटक (Cristagalli),

२—छलनी जैसे भाग जिसमें बहुत से छिद्र हैं (चालनीपटल; Cribriform plate)

३—अस्थि के पार्श्व; ४, ६, ७—इन कोठरियों में वायु रहती है (Air sinuses)

चित्र ८१—ललाटास्थि (Frontal) जिससे झर्झरास्थि (बहुछिद्रास्थि; Ethmoid) जुड़ी हुई है। अस्थि का अन्तरीय पृष्ठ दिखलाया गया है।
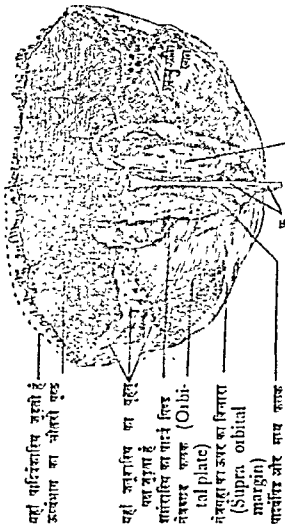
के समान पतला होता है और उसमें बहुत से छिद्र होते हैं; इसी कारण वह चालनीपटल (Cribriform plate) कहलाता है। कपाल के भीतर केवल इतना ही भाग रहता और दिखाई देता है। शेष भाग कपाल के बाहर उसकी तली में दिखाई देता है; यह नासिका की दीवारों के बनाने में सहायता देता है।

यह अस्थि बहुत खोखली और हल्की होती है; यदि जोर से दबाई जायें तो शीघ्र चूर-चूर होती है।

अब कपाल का कोष्ट सब ओर से पूर्ण हो गया। इस कोष्ठ की तली में बहुत से छिद्र होते हैं, सबसे बड़ा छिद्र तली के पिछले भाग में है; इस छिद्र में से होकर सुषुम्ना (जो वात संस्थान का एक अंग है) कपाल से निकल कर कशेरुकी नली में जाती है; और छिद्रों में से नाड़ियाँ बाहर निकलती है व रक्त की नालियाँ आती जाती हैं।

इनमें से कोई छिद्र ऐसा नहीं है जिसमें से होकर कफ या बलगम खोपड़ी के भीतर से बाहर निकलता हो; यह एक मिथ्या और अत्यन्त हानिकारक विचार है कि कफ या बलगम मस्तिष्क (दिमाग़) में बनता और नासिका और मुख से बाहर निकलता है।

चेहरे की अस्थियाँ

(१) अधोहन्वस्थि (Mandible) (चित्र ८२, ८३)—(नीचे के जबाड़े की अस्थिः) यह चेहरे की अस्थियों में से सबसे बड़ी और मजबूत अस्थि है और सबसे नीचे के भाग में रहती है; ठुड्डी (ठोड़ी) इससे बनती है। यह अस्थि देशी जूते की नाल की भाँति मुड़ी हुई होती है। नाल की तरह उनके तीन भाग हैं; एक आधे घेरे या महराब की भाँति मुड़ा हुआ भाग जिससे ठुड्डी बनती है; यह समस्थ भाग या हनुमण्डल (Body of mandible) कहलाता है। इस भाग के

पिछले दोनों सिरे मुड़ कर ऊपर को चले गये हैं, ऊपर को खड़े हुए ये भाग अस्थि के ऊर्ध्व भाग या हनुकूट (Ramus) कहलाते हैं। जहाँ ऊर्ध्व भाग समस्त भाग से मिलता है वहाँ एक कोण बनता है; जन्म के समय इस कोण का परिमाण १७५°[1] होता है अर्थात् ऊर्ध्व भाग ऊपर को सीधा खड़ा रहने के पलटे पीछे को बहुत झुका रहता है; ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता है इस कोण का परिमाण घटता जाता है, ४-५ वर्ष की आयु में १४०° हो जाता है; प्रौढ़ावस्था में इसका परिमाण ११०°-१२०° हो जाता है; वृद्धावस्था में यह फिर बढ़ता है और १४०° तक हो जाता है। इस कोण को कान के नीचे टटोल कर स्पर्श कर सकते हैं। किसी अधोहन्वस्थि को देख कर इस बात का कुछ अनुमान किया जा सकता है कि वह मनुष्य जिसकी वह अस्थि है किस अवस्था में मरा अर्थात् वह वृद्ध होकर मरा या प्रौढ़ावस्था में या बचपन में। समस्थ भाग के दो पृष्ठ होते हैं एक बाहर का दूसरा भीतर का। बाहर के पृष्ठ से निम्न ओष्ठ को गति देने वाली पेशियाँ लगी रहती हैं; भीतर के पृष्ठ से जिह्वा को गति देने वाली मांस पेशियाँ लगी रहती हैं। इस भाग के दो किनारे भी होते हैं एक नीचे का जो टटोला जा सकता है और जिससे मध्यरेखा में ठुड्डी बनती है; दूसरा ऊपर का जिसमें १६ दाँतों के लिए गढ़े[2] होते हैं।

ऊर्ध्व भाग नीचे से चौड़ा और चपटा होता है; इसके पिछले किनारे को कान की लौर[3] (Lobule of ear) के नीचे स्पर्श कर सकते हैं।

१. कोण ऊर्ध्व भाग की पिछली धारा और समस्थ भाग की अधोधारा के बीच में मापा जाता है।

२. दाँत के लिए जो गढ़ा होता उसको दंतोलूखल (Alveolus) कहते हैं।

३. लौर का दूसरा नाम कर्णपाली (Lobule of ear) है।

चित्र ८४ की व्याख्या

खोपड़ी कनपटी के ऊपर से काटी गई है और भीतर के पृष्ठ का यह फोटो है।

१,२ = गुप्त छिद्र (Foramen caecum) यहाँ से ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या का आरम्भ होता है।

३ = शिखर संटक (Cristagalli)

४ = चलनी पटल (Cribriform plate)

५ = जतूका कटंक (Jugum sphenoidale)

६ = दृष्टि नाड़ी परिखा (Optic groove)

७ = जतूका-ललाट संधि (Spheno-frontal suture)

८ = दृष्टि नाड़ी छिद्र (Optic foramen)

९ = लघु पक्ष (Lesser wing)

१० = लघु पक्ष कूट (Root of lesser wing)

११ = (काला चित्र के भीतर) लघु पक्ष कूट (Root of lesser wing)

१२ = वृत्त रन्ध्र (Foramen rotundum)

१३ = जतूक-शंखास्थि संधि (Temporo-sphenoid tuture)

१४ = मध्य मात्रिका नाड़ी परिखा (Middle meningeal artery—groove for)

१५ = शंख पार्श्व संधि। १४ और १५ के बीच में जो लकीर है वह अंडाकार छिद्र (Foramen ovale) में आती है

चित्र ८२ अधोहन्वस्थि (Mandible)

lental foramen) (Obliqueline) (Groove for facial artery)

चित्र ८३ अधो हन्वधि भीतरी पृष्ठ

अर्द्ध चंद्राकाराधारा

जिह्वाधोवर्ती लाला ग्रन्थिखात (Sublingal fossa)

हनुकंटक (Lingula)

हनुकुन्त (Coronoid process

हनुमुण्ड (Head of mandible)

ऊर्ध्व बुक टक Sup-enial ubercle)

नुसंधि Sym-hysis enti]

अधर हानिकी नाड़ी रन्ध्र (Mandibular foramen)

अधर चिबुक कण्टक — ह. श्र. खात कोण
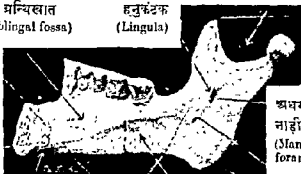
Inf-genial tubercle हनु कंठिका तीरगिका Fossa for Submandibular gland)

(Mylohyoid line)

पृष्ठ १२७ के सम्मुख

में जहाँ आँख का कोया होता है एक छोटी और पतली अस्थि रहती है। यह अस्थि कुछ-कुछ चौकोर होती है परन्तु बिल्कुल ठीक नहीं होती; यह इस प्रकार मुड़ी रहती है कि उसमें एक नाली सी बन जाती है और यह नाली नीचे जाकर नासिका से सम्बन्ध रखती है; (चित्र ८५ में ५) इस नाली में सौत्रिक तंतु से निर्मित एक थैली रहती है; आँख से अश्रु इसी थैली में होकर नासिका के भीतर पहुँचते हैं। अश्रुओं से सम्बन्ध रखने के कारण इस अस्थि का नाम अश्र्वस्थि रखा है। यह अस्थि कागज जैसी पतली और बहुत कोमल होती है।

चित्र ८५ अश्र्वस्थि (बाहरी पृष्ठ) (Lacrimal)

चित्र ८६ अधोशुक्तिका (बाहरी पृष्ठ) (Inferior concha)

नी छिद्र (Foramen Spinosum)
धि यहाँ एक शिरा कूल्या रहती है
(Internal auditory meatus)
अगले और पिछले पृष्ठों के बीच का किनारा
border of petrous bone)। यहाँ अश्म
Superior petrosal sinus) रहती है।
र) = छदि कूट (Posterior clenoid pro-

र) = उभार
र) द्वादशी नाड़ी
terior condylar canal)
ष्क का ललाट ध्रुव रहता है
Superior orbital fissure)

चित्र ८४ करोटि अधोभाग (भ

१६ = मात्रिका धमनी छिद्र (Foramen Spinosum)
१७ = शंख-जतूक संधि यहाँ एक शिरा कूल्या रहती है
१८ = कर्णान्तरद्वार (Internal auditory meatus)
१९ = अश्म कूट के अगले और पिछले पृष्ठों के बीच का किनारा (Superior border of petrous bone)। यहाँ अश्म शिरा कुल्या (Superior petrosal sinus) रहती है।
२० = (चित्र के भीतर) = छदि कूट (Posterior clenoid process.)
२१ = (चित्र के भीतर) = उभार
२२ = (चित्र के भीतर) द्वादशी नाड़ी सुरंगा (Anterior condylar canal)
२३ = यहाँ वृहत् मस्तिष्क का ललाट ध्रुव रहता है
२४ = पक्षांतराला (Superior orbital fissure)
२५ = छिद्र
२६ = श्रोघीया धमनी विवर (Foramen lacerum)
२७ = अश्म कूट और शंखचक्र संधि (Petro-Squamous suture)
२८ = यहाँ पंचमी नाड़ी गंड रहती है (Trigeminal impression)
२९ = गंभीर शिरोधीया शिरा विवर (Jugular foramen)
३० = पश्चात् अस्थि का अंतरीय अर्बुद (Internal occipital protuberance)
३१ = वृहत् मस्तिष्क खात (Fossa for Cerebrum)
३२ = लघु मस्तिष्क खात (Fossa for Cerebellum)
स = सरल शिराकुल्या परिखा (Straight sinus-sulcus)
अ = ऊर्ध्व अन्वायाम शिराकुल्या परिखा (Sup. sagittal sulcus)

चित्र ८४ करोटि अधोभाग (भीतरी पृष्ठ)

पृष्ठ १२८ के सम्मुख

१६=मात्रिका धमनी छिद्र (Foramen Spinosum)
१७=शंख-जतूक संधि यहां एक शिरा कुल्या रहती है
१८=कर्णान्तरद्वार (Internal auditory meatus)
१९=अश्म कूट के अगले और पिछले पृष्ठों के बीच का किनारा (Superior border of petrous bone)। यहां अश्म शिरा कुल्या (Superior petrosal sinus) रहती है।
२०=(चित्र के भीतर) = छदि कूट (Posterior clenoid process.)
२१=(चित्र के भीतर) = उभार
२२=(चित्र के भीतर) द्वादशी नाड़ी सुरंगा (Anterior condylar canal)
२३=यहां वृहत् मस्तिष्क का ललाट ध्रुव रहता है
२४=पक्षांतराला (Superior orbital fissure)
२५=छिद्र
२६=श्रोधीया धमनी विवर (Foramen lacerum)
२७=अश्म कूट और शंखचक्र संधि (Petro-Squamous suture)
२८=यहां पंचमी नाड़ी गंड रहती है (Trigeminal impression)
२९=गंभीर शिरोधीया शिरा विवर (Jugular foramen)
३०=पश्चात् अस्थि का अंतरीय अर्बुद (Internal occipital protuberance)
३१=वृहत् मस्तिष्क खात (Fossa for Cerebrum)
३२=लघु मस्तिष्क खात (Fossa for Cerebellum)
स=सरल शिराकुल्या परिखा (Straight sinus-sulcus)
म=ऊर्ध्व मन्वायाम शिराकुल्या परिखा (Sup. sagittal sulcus)

इसके बाहर के पृष्ठ पर चर्वणपेशी (Masseter) (वह पेशी जो भोजन चबाने के काम में आती है) लगी रहती है। ऊपर जाकर ऊर्ध्व भाग के दो अंश हो गये हैं और इन अंशो के बीच में कुछ अन्तर रहता है। अगला अंश तिकोनिया है इसको हनुकुन्त (Coronoid) कहते हैं; उससे कनपटी की एक बड़ी पेशी लगी रहती है। पिछले अंश का ऊपर का सिरा मोटा और गोल सा होता है यह भाग हनुमुण्ड (condyloid process) कहलाता है; यह शंखास्थि के बाहरी छिद्र के नीचे और सामने रहनेवाले गढ़े में रहता है। अधोहन्वस्थि इसी स्थान पर गति करती है।

(२-३) ऊर्ध्वहन्वस्थि (Maxilla)—(चित्र ७६ में ७ चित्र ७१)। ऊपर के जावड़े में दो विरूप अस्थियाँ हैं एक दाहिनी दूसरी बाईं; दोनो अस्थियाँ मध्यरेखा में एक दूसरे से मिली रहती हैं।

हर एक अस्थि के नीचे के किनारे में ८ दाँतों के लिए गढे होते हैं (चित्र ७२) दोनों अस्थियों में १६ दाँत जड़े रहते हैं। इन अस्थियों के मध्यरेखा में मिलने से मुंह की छत का अगला भाग और नासिका का फर्श बनता है। जिस अंश से नासिका का फर्श बनता है उससे बाहर की ओर (मध्यरेखा से परे) जो भाग है वह मोटा परन्तु भीतर से खोखला होता है; इस कोष्ठ में वायु भरी रहती है; इस खोखले भाग को इस अस्थि का गात्र कहते हैं। यह गात्र कुछ-कुछ चौपहलू होता है। इसके चार पृष्ठो में से एक पृष्ठ से तो नासिका की बाहरी दीवार बनती है और इसमें एक छिद्र होता है जिसके द्वारा इसका वायु से भरा हुआ कोष्ठ नासिका से सम्बन्ध रखता है। शेष तीन पृष्ठों में से एक पृष्ठ सामने गाल में रहता है। (नासिका के छिद्र के पास), एक से आँख के गढ़े का फर्श बनता है; चौथा पृष्ठ [illegible] रहता है।

जहाँ आँख का नासिका की ओर का कोया होता है वहाँ इस अस्थि का एक अंश ऊपर जाकर ललाटास्थि से जुड़ा रहता है। इस अंश के अगले किनारे से नासास्थि जुड़ी रहती है और पिछला किनारा एक पतली अस्थि से जिसको अश्रुवस्थि कहते हैं मिला रहता है। कनपटी की ओर के आँख के कोये के नीचे यह अस्थि गाल की अस्थि से मिली रहती है।

(४–५) नासास्थि (Nasal) (चित्र ६९ में ४; चित्र ७६ में १०)

नासिका के ऊपर के भाग में ललाटास्थि के नीचे मध्यरेखा के ठीक इधर-उधर दो छोटी छोटी अस्थियाँ होती हैं एक दाहिनी दूसरी बाईं; ऐनक इन्हीं अस्थियों के ऊपर टिकती है; ये नासास्थियाँ कहलाती हैं। इन अस्थियों के मध्यरेखा में मिलने से जो पुल बनता है उसको नासावंश (Bridge of nose) कहते हैं। प्रत्येक अस्थि कुछ चौकोर होती है, उसके चार किनारे और दो पृष्ठ होते हैं। ऊपर और नीचे के किनारे छोटे और अगले और पिछले किनारे लम्बे होते हैं। अगला किनारा मध्यरेखा में दूसरी ओर की अस्थि के किनारे से जुड़ा रहता है, पिछला किनारा ऊर्ध्व हन्वस्थि से और ऊपर का किनारा ललाटास्थि से मिला रहता है। नीचे के किनारे से नाक के अगले और नीचे के भाग में रहने वाला कारटिलेज लगा रहता है।

(६–७) अश्रुवस्थि (Lacrimal) (चित्र ८५, चित्र ७६ में ९) आँख के गढ़े[1] (Orbit) की भीतरी (मध्यरेखा के निकट की) दीवार कई अस्थियों के अंशों से बनती है। इस दीवार के अगले भाग

१. अक्षिगुहा

में जहाँ आँख का कोया होता है एक छोटी और पतली अस्थि लगी रहती है। यह अस्थि कुछ-कुछ चौकोर होती है परन्तु बिलकुल सपाट नहीं होती; यह इस प्रकार मुड़ी रहती है कि उसमें एक नाली सी बन जाती है और यह नाली नीचे जाकर नासिका से सम्बन्ध रखती है; (चित्र ८५ में ५) इस नाली में सौत्रिक तंतु से निर्मित एक थैली रहती है; आँख से अश्रु इसी थैली में होकर नासिका के भीतर पहुँचते हैं। अश्रुओं से सम्बन्ध रखने के कारण इस अस्थि का नाम अश्र्वस्थि पड़ा है। यह अस्थि कागज़ जैसी पतली और बहुत कोमल होती है।

चित्र ८५ अश्र्वस्थि (बाहरी पृष्ठ) (Lacrimal) चित्र ८६ अधोशुक्तिका (बाहरी पृष्ठ) (Inferior concha)

(८-९) अधोसीपाकृति या अधोशुक्तिका (Inferior Nasal Concha) (चित्र ८६, ८७) यदि आप किसी खोपड़ी के नासिका के छिद्रों को देखें तो नासिका की बाहरी दीवार पर तीन मुड़ी हुई अस्थियाँ दिखाई देंगी। इनमें से सब से ऊपर वाली दीवार के पिछले भाग में है और सब से छोटी है, शेष दो अगले भाग में हैं। इन तीनों में से ऊपर की दो पृथक्-पृथक् अस्थियाँ नहीं हैं; वे झर्झरास्थि के नीचे के अंश हैं। नीचे वाली तीनों में सबसे बड़ी है और पृथक् अस्थि है अर्थात् यह

चित्र ८७
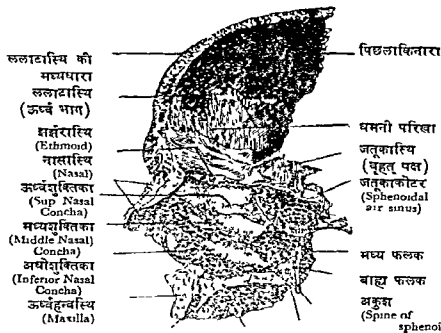
और अस्थियो से बिना किसी को तोडे जुदा की जा सक्ती है। इस अस्थि की शक्ल सीपी जैसी होनी; एक पृष्ठ उभरा हुआ है और दूसरा गहरा; उभरा हुआ पृष्ठ नासिका के परदे को ओर रहता है। जीवित शरीर में इस अस्थि के ऊपर गहरे गुलाबी रंग की एक झिल्ली चढी रहती है।

(१०) नासाफलकास्थि (Vomer)—(चित्र ८८ चित्र ६९ में

६) नासिका के बीच में एक परदा लगा है; इस परदे का पिछला भाग अस्थि से बना है अगला कारटिलेज से। जो भाग अस्थि का है उसमें एक तो पृथक् अस्थि है, (इससे अधिक भाग बनता है), और कई

चित्र ८८ नासाफलकास्थि (Vomer)
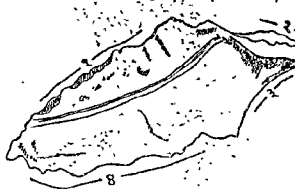
अस्थियों के अंश होते हैं। पृथक् अस्थि नासाफलकास्थि (Vomer) कहलाती है। यह अस्थि सपाट और चौकोर होती है। इसके दो बडे और दो छोटे किनारे और दो पृष्ठ होते हैं। एक किनारा (४) नासिका के फर्श से जुड़ा रहता है; एक (२) ऊपर कपाल की तली की जतूकास्थि नामक अस्थि के गात्र से; अगले किनारे का ऊपर का भाग झर्झरास्थि के एक अंश से और नीचे का भाग कारटिलेज से मिला रहता है। पिछला किनारा (३) किसी से नहीं मिला रहता।

(११-१२) ताल्वस्थि (Palatine) (चित्र ७८; चित्र ८७) कठिन (सख्त; Hard) तालु का अगला (दांतों के ठीक पीछे का) ¾ भाग तो ऊर्ध्व हन्वस्थियों के अंशों से बनता है, पिछला ¼ भाग उन अस्थियों के अंशों से बनता है जिनको ताल्वस्थियाँ कहते हैं। प्रत्येक

अस्थि के दो भाग होते हैं एक ऊर्ध्व, (खड़ा; perpendicular) दूसरा समस्थ (पड़ा; horizontal); जहां ये दोनों भाग मिलते हैं वहाँ समकोण (९०°) बनता है। अस्थि की शकल अंग्रेजी लिपि के एल (L) अक्षर से बहुत कुछ मिलती है; समस्थ भाग ऊर्ध्व से कम लम्बा होता है; उसका एक किनारा दूसरी ओर की अस्थि के किनारे से मध्यरेखा में जुड़ा रहता है; अगला किनारा ऊर्ध्व हन्वस्थि से। पिछले किनारे से कोमल तालु लगा रहता है; ऊपर के पृष्ठ से नासिका के फर्श का पिछला भाग, और नीचे के पृष्ठ से कठिन तालु का पिछला भाग बनता है।

ऊर्ध्व भाग ऊर्ध्वहन्वस्थि के गात्र से जुड़ा रहता है और नासिका की बाहरी दीवार के बनाने में सहायता देता है।

(१३–१४) कपोलास्थि या गण्डास्थि (Zygomatic) (चित्र ७६ में ५; चित्र ६९ में ५; चित्र ९१, ९४) आंख और कनपटी के नीचे टटोलने से एक उभार मालूम होता है; दुबले मनुष्यों में गाल पिचके रहते हैं और यह उभरा हुआ स्थान दूर से भी दिखाई देता है। जिस अस्थि से यह उभार बनता है वह (गाल में रहने के कारण) कपोलास्थि या गण्डास्थि कहलाती है। यह अस्थि सामने ऊर्ध्वहन्वस्थि से जुड़ी रहती है; पीछे इस अस्थि का एक अंश शंखास्थि के एक लम्बे प्रवर्द्धन से जुड़ा रहता है; इन दोनों अंशों से एक महराब बन जाती है जो कान के सामने टटोल कर स्पर्श की जा सकती है; इस महराब के नीचे से होकर कनपटी की मांसपेशी[1] निम्नहन्वस्थि के ऊर्ध्व भाग से जाकर लगती है (चित्र ७९)।

कपोलास्थि आंख के गढ़े (अक्षिगुहा) के फर्श और उसकी बाहरी दीवार के बनाने में सहायता देती है (चित्र ९४)।

१. शंखच्छदा पेशी (Temporalis)

चित्र ८९ एक्सरे चित्र ९० की सूची

मारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट १५ चित्र ९०

बालक के शिर का एक्स-रे चित्र
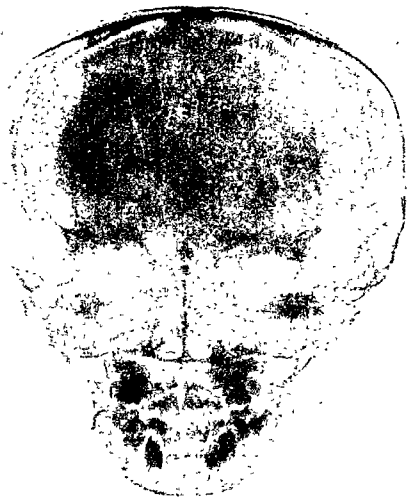
By courtesy of Professor Schuller of Vienna

चित्र ९५ श्रवणेन्द्रिय (Ear)
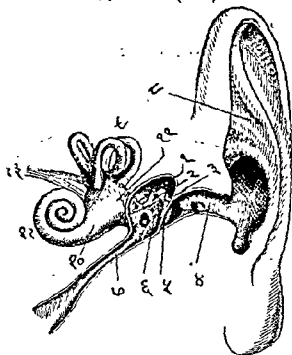
(From Haeckel's Evolution of man)

१ = रकाबास्थि (Stapes), २ = शूर्मिकास्थि (Incus), ३ = मुद्गरास्थि (Malleus), ४ = कर्णाजली (External auditory meatus), ५ = कर्णपटह (Tympanic membrane), ६ = मध्यकर्ण (Middle ear), ७ = कंठकर्णी नाली (Pharyngo-tympanic tube), ८ = कर्णशष्कुली (Pinna), ९ = अर्द्धचक्राकारा नालियाँ (Semicircular canals), १०, ११ = अन्तःकर्ण का कोष्ठ, (Vestibule) १२ = कोकला (Cochlea), १३ = नाड़ी (Nerve)।

चित्र ९३ खोपड़ी
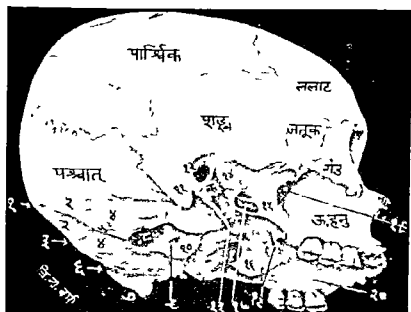
१—मन्यार्बुद
३—अधर तीर्णिका
५—मन्या तीर्णिका
६—द्विगुम्फिका खात
७—गोस्तनक
८—महा छिद्र
९—द्वादशी नाड़ी सुरंगा
१०—आलम्बकूट
११—गोस्तनक
१२—कर्ण बहिर्द्वार
१३—शिफा प्रवर्द्धन
१४—हनु सन्धि स्थालक
१५—जतूकाचरण (बाह्यफलक का बाह्यपृष्ठ
१६—जतूकाचरण(बाह्य फलक का अन्त.पृष्ठ
१८—अंकुश
१९—चरण हनु विवर
२०—कठिन तालु

पृष्ठ१३८ के सम्मुख

चित्र ९४ अक्षिगुहा
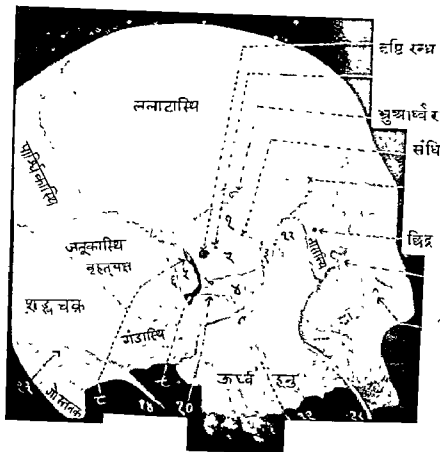
१—नेत्रच्छदि फलक
२—झर्झरास्थि पार्श्व
३—अश्रुवस्थि
४—ऊर्ध्व हन्वस्थि
५—जतूकास्थि बृहत् पक्ष
६—गंडास्थि
७—तालवस्थि
८—ऊर्ध्व अक्षि विवर
९—अधर अक्षि विवर
१ —अक्षि अधः परिखा
११—अक्षि अधः छिद्र में सीक है

पृष्ठ १३९ के सम्मुख

कंठिकास्थि (Hyoid)

यदि आप ग्रीवा में स्वरयन्त्र के ऊपर के किनारे और टोढ़ी के बीच में अँगुली से टटोलें तो एक कड़ी चीज मालूम होगी। यह कंठिकास्थि है। वह निम्नहन्वस्थि के समरूप भाग की तरह मुड़ी हुई होती है। सामने बीच में से मोटी होती है, यह मोटा भाग इस अस्थि का गात्र कहलाता है। शेष भाग पतला होता है। यह पतले भाग इस अस्थि के वृहत् शृंग कहलाते हैं, गात्र से दो प्रवर्द्धन निकले रहते हैं ये लघु शृंग हैं। इस अस्थि से कई मासपेशियाँ लगी रहती हैं।

चित्र ९६ कठिकास्थि (Hyoid)
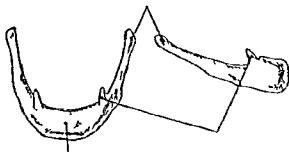
२०६ अस्थियों के अतिरिक्त जिनका वर्णन हो चुका है हथेली और पैर की कई कडराओं और बन्धनों में कई बहुत नन्हीं नन्हीं अस्थिया पाई जाती हैं। अधिकतर ये पैर और हाथ के अगूठों की कडराओं में होती हैं। हमेशा और हर-एक मनुष्य में न पाये जाने के कारण इनकी गिनती नहीं की जाती। प्राय ऐसी ऐसी कोई ८ अस्थियां होती हैं (देखो चित्र ३१)

अध्याय ५

कारटिलेज (उपास्थि; तरुणास्थि (Cartilage)

शरीर में कई स्थानों में श्वेत या पीले रंग की एक चिकनी, चमकदार और लचकदार चीज पाई जाती है जिसको कारटिलेज कहते हैं। यह वस्तु दृढ़ तो होती है परन्तु इतनी नहीं जितनी कि अस्थि; कई स्थानों में इससे वही काम निकलता है जो कि अस्थि से; इससे कई अंगो के ढांचे बने होते हैं जिनके ऊपर मांस और त्वचा लगी रहती है; कान का और नाक की फुंग का ढांचा इसी वस्तु का है; नासिका के परदे के अगले भाग में कारटिलेज होता है; स्वरयन्त्र और टेंटुवा अधिकतर कारटिलेज के बहुत से छोटे-छोटे टुकड़ों से बने हुए हैं। कारटिलेज कोष्ठों के बनाने में भी सहायता देता है जैसे पसलियों के अगले सिरों और वक्षोऽस्थि के बीच में रहनेवाली कारटिलेज की पट्टियों या उपपर्शुकाओं से वक्ष की अगली दीवार पूर्ण होती है। लम्बी अस्थियों के सिरों पर जहाँ एक अस्थि दूसरी अस्थि से मिलती है (सन्धियों में) कारटिलेज की पतली तह चढ़ी रहती है (चित्र ९३)।

यदि हम ५, ६ सप्ताह के गर्भ को काट छांट कर देखें तो उसके शरीर में कहीं अस्थि जैसी दृढ़ वस्तु न मिलेगी। अस्थि इस आयु के पश्चात् बननी आरम्भ होती है। इस समय बहुत सी अस्थियों के स्थान में श्वेत रंग की चिकनी और चमकदार चीज मिलती है, यह कारटिलेज है (चित्र ९७)। ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता है, इस कारटिलेज की रचना में परिवर्तन होता है और उससे अस्थि बन जाती है। जिस कारटिलेज से

शरीर के बढ़ने पर अस्थि बन जाती है उसको तरुणास्थि या उपास्थि भी कहते हैं; तरुणास्थि और उपास्थि शब्दों का प्रयोग उस कारटिलेज के लिए न करना चाहिए जिससे कभी अस्थि न बने। गर्भ में अस्थियों के स्थान में रहने वाले कारटिलेज को हम तरुणास्थि या उपास्थि कह सकते हैं परन्तु स्वरयंत्र, टेटुवे, कान, नासिका के कारटिलेजों को, 'तरुण' या 'उप' अस्थि कहना अशुद्ध होगा क्योंकि इनकी रचना कभी भी अस्थि जैसी नहीं होती।

अस्थि की स्थल रचना

जीवितावस्था में अस्थि का रंग रक्त के कारण हलका गुलाबी होता है। जब हम अस्थि को जल में उबाल कर और क्षारों और अम्लों के घोल्लों में भिगो कर साफ कर लेते हैं तो उसका रंग घूसर श्वेत हो जाता है।

यदि हम किसी लम्बी अस्थि को मोटाई के रुख काटें तो वह भीतर से खोखली मिलेगी। लम्बी अस्थियों के भीतर एक नाली रहती है (देखो एक्सरे चित्र २९, ३०) जिसमें एक चिकनाईदार गुलाबी मायल पीले रग की चीज भरी रहती है। इस चीज का नाम मज्जा (Marrow) है। इस नलो के चारों ओर रहनेवाली अस्थि बहुत-ठोस और मज़बूत नहीं होती; उसकी बनावट कुछ-कुछ स्पंज या जाफरी टट्टी की बनावट के सदृश होती है; पतले-पतले तारों से एक जाल सा बन जाता है जिसके सूक्ष्म-सूक्ष्म छिद्रों में मज्जा भरी रहती है (देखो चित्र ९८) अस्थि का सबसे बाहर का (पृष्ठ के नीचे का) भाग बहुत ठोस, कठिन और मज़बूत होता है इसको अस्थि वल्क (Cortex) कहते हैं। अस्थियों के ऊपर सौत्रिक तन्तु से निर्मित एक झिल्ली चढ़ी रहती है; इसको अस्थ्यावरक (Periosteum) कहते हैं।

अस्थि का रासायनिक संगठन (चित्र ९७)

अस्थि दो प्रकार के पदार्थों से बनी है :—

(१) सजीव पदार्थ जैसे सौत्रिक तन्तु, सेलें, वसा

(२) निर्जीव या खनिज पदार्थ जैसे चूने के संयोजित या मुरक्कब (लवण)

यदि हम किसी अस्थि को जलमिश्रित हाईड्रोक्लोरिक अम्ल [1] (Dil. HCl) (नमक का तेजाब) में या गन्धक या शोरे के तेजाब में कुछ देर भिगो दें तो इस अम्ल में अस्थि के खनिज पदार्थ घुल जायँगे, सजीव पदार्थ ज्यों के त्यों बचे रहेंगे। अस्थि के आकार में कोई भेद न आयेगा; जितनी लंबी और चौड़ी वह भिगोने से पहले थी उतनी ही अब भी रहेगी। परन्तु उसमें एक बड़ा परिवर्तन हो जाता है; पहले अस्थि दृढ़ थी अब वह मुलायम हो गई है; भिगोने से पहले यदि आप उसको मोड़ने की कोशिश करते तो वह न मुड़ती या अधिक जोर लगाने से टूट जाती अब यह कोमल हो गई है, आप उसको दबा सकते हैं और मोड़ सकते हैं, यदि अस्थि लम्बी है तो उसमें गाँठ लगा सकते हैं। यह खनिज पदार्थ रहित अस्थि सौत्रिक तन्तु और सेलों से निर्मित है; जलाने से वह जल जायगी (देखो चित्र ९७)

यदि हम अस्थि को अम्ल में भिगोने के बजाय भट्टी में जलायें तो जलते-जलते पहले तो वह काली सी पड़ जायगी; कुछ देर पश्चात् उसका रंग श्वेत हो जायगा। आकार ज्यों का त्यों रहेगा। परिवर्तन यह होता है कि अब वह भुरभुरी हो गई है; यदि आप उसको जोर से दबायें तो टूट जायगी और उनका चूरा हो जायगा। भीतर से वह जाफ़री टट्टी

---

१. अभिद्रवहरिक।

लम्बी अस्थियों के सिरे गात्रों की तरह खोखले नहीं होते। उनकी भीतरी बनावट स्पंज या जाफरी टट्टी जैसी होती है जिसके छिद्रों में मज्जा भरी रहती है (चित्र ९८)।

छोटी-छोटी अस्थियां (जैसे पहुँचे और टखने की) भी खोखली नही होती, उनकी बनावट लम्बी अस्थियों के सिरों जैसी होती है। इन अस्थियों में भी मज्जा रहती है।

खोपड़ी की चपटी अस्थियों की बनावट बादाम के छिलके की बनावट जैसी होती है। अस्थि के अन्तरीय और बाह्य दो पटल होते है। बीच में पतला सा अन्तर होता है जिसमें अस्थि की जाली सी होती है। (देखो एक्सरे चित्र ९०, ९३)

मज्जा (Marrow)

मज्जा दो प्रकार की होती है (१) लाल, (२) पीली। लम्बी अस्थियों के खोखले गात्रों में पीली मज्जा रहती है। लम्बी अस्थियों के सिरो, कलाई और टखने की छोटी छोटी अस्थियो, कशेरुका के गात्रों वक्षोऽस्थि और पसलियों में लाल मज्जा रहती है।

पीली मज्जा में प्रति १०० भागों पीछे ९६ भाग वसा (चर्बी) के होते है शेष ४ भाग और चीजों के होते है। लाल मज्जा में १०० में से ७५ भाग जल के होते है शेष २५ भाग और चीजों के (जैसे सेले, सौत्रिक तन्तु)। लाल मज्जा में वसा बहुत कम होती है; उसमें सौत्रिक तन्तु, रक्त की नलियाँ और कई प्रकार की सेलें पाई जाती है; कुछ सेलो का रंग गुलाबी सा होता है, रक्त के लाल कण इन्ही सेलो से बनते है; कुछ सेलें बहुत बड़ी-बड़ी होती है और इनमें एक से अधिक मींगिया होती है (चित्र ६ में १८); ये बहुमींगी सेलें पीली मज्जा में भी पाई जाती है। लाल मज्जा में और कई विशेष प्रकार की सेलें भी होती है।

अस्थि का रासायनिक संगठन (चित्र ९७)

अस्थि दो प्रकार के पदार्थों से बनी है :—

(१) सजीव पदार्थ जैसे सौत्रिक तन्तु, सेलें, वसा

(२) निर्जीव या खनिज पदार्थ जैसे चूने के संयोजित या मुरक्कब (लवण)

यदि हम किसी अस्थि को जलमिश्रित हाईड्रोक्लोरिक अम्ल [1] (Dil. HCl) (नमक का तेजाब) में या गन्धक या शोरे के तेजाब में कुछ देर भिगो दें तो इस अम्ल में अस्थि के खनिज पदार्थ घुल जायेंगे, सजीव पदार्थ ज्यों के त्यों बचे रहेंगे। अस्थि के आकार में कोई भेद न आयेगा; जितनी लंबी और चौड़ी वह भिगोने से पहले थी उतनी ही अब भी रहेगी। परन्तु उसमें एक बड़ा परिवर्तन हो जाता है; पहले अस्थि दृढ थी अब वह मुलायम हो गई है; भिगोने से पहले यदि आप उसको मोड़ने की कोशिश करते तो वह न मुड़ती या अधिक जोर लगाने से टूट जाती अब यह कोमल हो गई है, आप उसको दबा सकते हैं और मोड़ सकते हैं, यदि अस्थि लम्बी है तो उसमें गाँठ लगा सकते हैं। यह खनिज पदार्थ रहित अस्थि सौत्रिक तन्तु और सेलों से निर्मित है; जलाने से वह जल जायगी (देखो चित्र ९७)

यदि हम अस्थि को अम्ल में भिगोने के बजाय भट्टी में जलायें तो जलते-जलते पहले तो वह काली सी पड़ जायगी; कुछ देर पश्चात् उसका रंग श्वेत हो जायगा। आकार ज्यों का त्यों रहेगा। परिवर्तन यह होता है कि अब वह भुरभुरी हो गई है; यदि आप उसको जोर से दबायें तो टूट जायगी और उनका चूरा हो जायगा। भीतर से वह जाफरी टट्टी

१. अभिद्रवहरिक।

और पकी हुई सूखी तोरई के भीतर की जाली के सदृश दिखाई देंगी। इस जाली के तार खनिज पदार्थ से बने हैं; जलने से पहले इन तारों के बीच में सजीव पदार्थ (सेलें, मौत्रिक तन्तु वसा इत्यादि) थे, जलाने से ये पदार्थ जल गये और गैसों के रूप में उड़कर वायु में मिल गये। (चित्र ९८)

सजीव और खनिज पदार्थ कितने कितने होते हैं

(१) सजीव पदार्थ (Organic Substances) = ३३·३०%

(२) खनिज पदार्थ (Minerals)

चूने के लवण	कैलशियम फोसफेट	५१·०४%	= ६६·७०%
	,, ,, कार्बोनेट	११·३०%	
	,, ,, फ्लोराइड	२·००%	
	मैग्नेशियम फोसफेट	१·१६%	
साधारण लवण या सोडियम क्लोराइड		१·२०%	
		६६·७०%	

अस्थि = १०० भाग

सजीव और खनिज पदार्थ आपस में इस तरह से मिले रहते हैं कि अस्थि को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन चीज कहाँ है। खनिज पदार्थों से अस्थि में दृढ़ता आती है, सजीव पदार्थों के कारण उसमें लचक होती है।

अस्थि की सूक्ष्म रचना (चित्र ९९)

यदि अस्थि अम्ल में भिगो कर मुलायम कर ली जाय और फिर उसके यंत्रों द्वारा लम्बाई या चौड़ाई के एक सूक्ष्म सूक्ष्म पन्ने (Sections)

चित्र ६७

चित्र ६८ ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे की भीतरी बनावट

पृष्ठ १४४ के सम्मुख

चित्र

क

ख
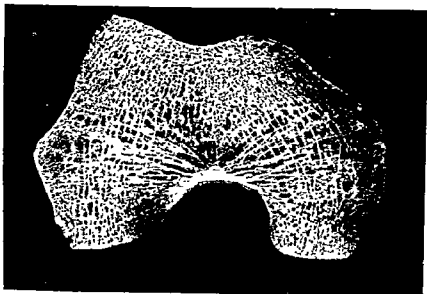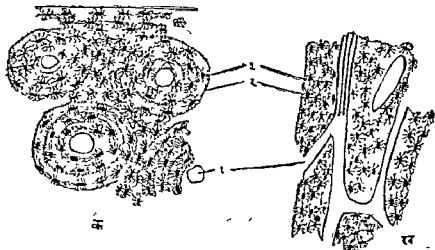
१ = नाली जिस में रक्त और लसीका की नलियाँ रहती हैं
२ = घेरे ३ = (अस्थि की) मकड़ीवत् सेलों के घर

चित्र १०० सूत्रविहीन कारटिलेज Hyaline cattilage

चित्र १०१ सूत्रमय कारटिलेज Fibro-cartilage
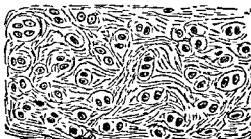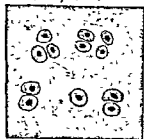
काटे जायँ तो इन पन्नों को अणुवीक्षण द्वारा यथाविधि देखने से अस्थि के एक छोटे भाग को रचना ऐसी दिखाई देगी जैसी कि चित्र १०० में दर्शाई गई है; 'क' पन्ना मोटाई के रुख (Transverse section) और 'ख' लम्बाई के रुख (Longitudinal section) काटा गया है। दोनों पन्ने अस्थि के बाहरी कठिन और ठोस भाग (Compact substance) (वल्क) से काटे गये हैं, मज्जा की नाली चित्र में नहीं दिखाई गई। 'क' में चार गोल छिद्र (१) हैं जिनके चारों ओर कई कई घेरे हैं (२)। घेरे सौत्रिक तन्तु से निर्मित हैं; बीच के गोल छिद्र वास्तव में लम्बी-लम्बी नालियों के कटे हुए मुख हैं जो अस्थि में लम्बाई के रुख रहती हैं, इन नालियों में रक्त और लसीकावाहिनियाँ रहती हैं। सौत्रिक तन्तु से निर्मित घेरों के बीच में (कोई दो घेरे लीजिये) बहुत से काले-काले स्थान (३) दिखाई देते हैं, इन स्थानों में अस्थि की विशेष सेलें रहती हैं, प्रत्येक सेल में बहुत से सूक्ष्म-सूक्ष्म तार होते हैं जिनके कारण उसकी शकल छोटी मकड़ी जैसी हो जाती है। सेलों के इन घरों से बहुत सी सूक्ष्म-सूक्ष्म नालियाँ निकली रहती हैं, जो आस पास की नालियों से मिली रहती हैं। बीच की नाली में रक्त का कुछ तरल भाग रक्तवाहिनी नालियों की दीवारों में से चू जाता है, यह तरल सूक्ष्म नालियों में बहकर सेलों और सौत्रिक तन्तु तक पहुँचता है और उनका पोषण करता है। अम्ल में भिगोने के पूर्व सूत्रों और सेलों के बीच में खनिज पदार्थ थे।

यदि अस्थि की रचना समझ में न आई हो तो यों समझिये :--

एक बेलनाकार खोखली शलाका पर आप बहुत से कागज एक दूसरे के ऊपर चिपका दीजिये। मान लीजिए आपके पास ऐसी-ऐसी बहुत सी शलाकाएँ हैं, इन शलाकाओं को पास-पास एक दूसरे से मिलाकर खड़ी कर दीजिये और इन सबके ऊपर फिर कागज चिपका दीजिए। खोखली

शलाका उस नाली के सदृश है जिसमें रक्त की नालियाँ रहती हैं, कागज के घेरे सौत्रिक तन्तु के घेरों के सदृश हैं, कागज के दो घेरों के बीच में जो स्थान है जिसमें गोंद लगा है वह सौत्रिक तन्तु के घेरों के बीच के अन्तर के सदृश है जिसमें सेलों के रहने के लिए छोटे-छोटे घर बने हैं।

चित्र ९९ 'ख' में अस्थि लम्बाई के रुख काटी गई है। नालियाँ लम्बाई के रुख कटी हुई दिखाई देती हैं, एक नाली में दो रक्त-वाहिनियाँ हैं।

कारटिलेज[1] की सूक्ष्म रचना (चित्र १००, १०१)

कारटिलेज की रचना उसके पतले-पतले पत्रों को अणुवीक्षण से देखने से मालूम होती है। कारटिलेज दो प्रकार का होता है :—

(१) वह जिसमें अणुवीक्षण से देखने से सेलों के अतिरिक्त बारीक-बारीक सूत्र दिखाई देते हैं—**सूत्रमय कारटिलेज** (Fibro-cartilage) (चित्र १०१)

(२) वह जिसमें सूत्र नहीं होते—**सूत्रविहीन कारटिलेज** (Hyaline cartilage) (चित्र १००) सूत्रमय कारटिलेज दो प्रकार का होता है। एक में पीले सूत्र होते हैं, दूसरे में श्वेत। पीले सूत्रों वाले कारटिलेज का रंग पीला सा होता है। पीला कारटिलेज श्वेत की अपेक्षा अधिक लचकदार (elastic) होता है।

कारटिलेज में विशेष प्रकार की सेलें पाई जाती हैं। उबालने से उससे एक लेसदार (Viscid) वस्तु बन जाती है जिसको जिलेटीन (Gelatin) कहते हैं; जिलेटीन एक भाँति की प्रोटीन होती है।

---

१. अंग्रेजी भाषा का शब्द, उर्दू भाषा में इसको कुरी या कुरकुरी हड्डी कहते हैं।

किस प्रकार का कारटिलेज कहाँ पाया जाता है

(१) सूत्रविहीन कारटिलेज—(Hyaline cartilage)

१. लम्बी अस्थियों के सिरों पर, अस्थियों के उन गढ़ों में जहाँ दूसरी अस्थियाँ आ कर मिलती हैं और संधियाँ बनाती हैं जैसे वंक्षणोलूखल में जहाँ ऊर्वस्थि का शिर मिलता है।

२. पसलियों के अगले सिरों और वक्षोऽस्थि के बीच में (=उपपर्शुका (Costal cartilage)

३. नासिका, स्वरयंत्र, टेंटुवा, कर्णाञ्जली में

४. गर्भ में अस्थियों का प्रतिनिधि सूत्रविहीन कारटिलेज होता है

(२) श्वेत सूत्रमय कारटिलेज (White fibro cartilage)—
कशेरुकाओं के गात्रों के बीच में जो चक्रियां रहती हैं वे इसी प्रकार के कारटिलेज से बनती हैं।

(३) पीला सूत्रमय कारटिलेज (Yellow elastic (fibrous) cartilage).

१. कान में (कर्णशष्कुली; Pinna of the ear) में

२. स्वरयन्त्र के ढकने (स्वरयंत्रच्छद; Epiglottis) में

३. मध्य कर्ण और कंठ के बीच में रहनेवाली (कंठकर्णी नाली; Pharyngotympanic tube) नाली में।

कारटिलेज से अस्थि का बनना

पाँच छः सप्ताह के गर्भ के शरीर में कहीं भी अस्थि नहीं रहती। बहुत सी अस्थियों की जगह पहले कारटिलेज बनता है फिर धीरे-धीरे इस कारटिलेज की रचना बदलती है और उसमें अस्थि बन जाती है। छठे, सातवें, आठवें, सप्ताहों में बहुत स्थानों में अस्थि बनना आरम्भ हो जाता है (चित्र १०२)। कारटिलेज से अस्थि बनने में एक बड़ा

परिवर्त्तन यह होता है कि चूने के संयोजित (Calcium salts) (मुरवकव) जैसे कैलशियम फॉसफेट, कार्बोनेट तथा क्लोराइड उसमें आ कर इकट्ठे होने लगते हैं; इनके आने से उसमें दृढ़ता आ जाती है। सौत्रिक तन्तु भी बनता है और कारटिलेज की सेलो की जगह अस्थि की सेलें बन जाती है।

वह स्थान जहाँ कारटिलेज के भीतर सबसे पहले अस्थि बनती है अस्थिविकास केन्द्र (Centre of ossification) कहलाता है। इस केन्द्र से आरम्भ होकर सब दिशाओं में अस्थि बनने लगती है। लम्बी अस्थियों में सबसे पहले गात्रों में अस्थि बनना आरम्भ होता है। किसी अस्थि में एक ही अस्थिविकास केन्द्र होता है; किसी में एक से अधिक। *लम्बी अस्थियों मे एक केन्द्र तो गात्र के लिये होता है और एक-एक दोनों* सिरो के लिये। जब सिरों पर उभार या प्रवर्द्धन होते है तो बहुधा एक एक केन्द्र हर एक उभार के लिए भी होता है।

जब बालक जन्म लेता है तो शरीर की सब अस्थियाँ पूरे तौर से नही बन पाती, (चित्र १०३) कई स्थानो में तो अस्थियो के प्रतिनिधि कारटिलेज ही रहते हैं, जैसे कलाई में आठों अस्थियों की जगह आठ कारटिलेज रहते है। यही नहीं प्रत्युत लम्बी-लम्बी अस्थियों के सिरों में (ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे को छोड कर) अभी अस्थि बनना आरम्भ भी नही हुआ है, ये सिरे अभी कारटिलेज के हैं। इन सिरो में अस्थि विकास केन्द्र जन्म के पश्चात् उदय (appear) होते हैं; धीरे-धीरे इन सिरो में कारटिलेज की जगह अस्थि बन जाती है परन्तु बहुत काल *तक सिरों और गात्रों की अस्थि के बीच में कारटिलेज के पतरे* (Epiphyseal cartilage) रहते है; जब तक इन पतरों में अस्थि न बन जाय उस समय तक सिरो और गात्र का संयोग (Union) पक्का नहीं होता; चोट लगने से सिरा गात्र से जुदा हो सकता है (चित्र १०४, १०८)।

चित्र १०२। २ मास का भ्रूण ; लम्बाई ५४ मिलीमीटर
(२ इंच) वास्तविक परिमाण से २½ गुणा बड़ा

om Mall, Amer. Journ. of Anat. Vol. V 1906 P. 441

पृष्ठ १४८ के सम्मुख
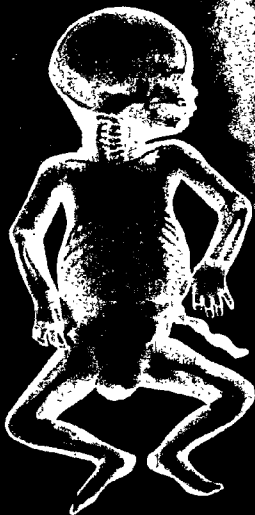
(From Bertwistle's Descriptive Atlas of Radiographs and Joints)

पृष्ठ १४९ के सम्मुख

अस्थिविकास केन्द्र नियत समय पर उदय हुआ करते हैं; अस्थियों के सिरों का गात्रों से संयोग भी एक नियत समय पर हुआ करता है। जो कुछ हमने अस्थिविकास के विषय में लिखा है उसको स्पष्ट करने के लिये हम एक उदाहरण देते हैं :—

ऊर्वस्थि (Femur) (चित्र १०४)। सात सप्ताह के गर्भ की

चित्र १०४ ऊर्वस्थि (Femur)
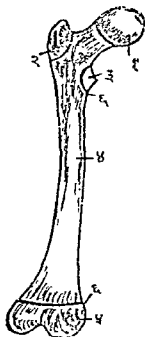
जांघ में ऊर्वस्थि की जगह कारटिलेज की एक सलाका (Rod) रहती है जिसका आकार ऊर्वस्थि के आकार से बहुत कुछ मिलता है; इसी सप्ताह

में कारटिलेज के गात्र में एक अस्थिविकास केन्द्र उदय होता है, इस केन्द्र से लम्बाई और मोटाई के रुख अस्थि बनने लगती है। गर्भ के नौवें मास तक कुल गात्र (Body, Shaft) में अस्थि बन जाती है। ऊपर और नीचे के सिरे अभी तक बिलकुल कारटिलेज ही के हैं।

नौवें मास के अन्त में नीचे के सिरे में दूसरा केन्द्र उदय होता है। जन्म से पहले इस सिरे में इस केन्द्र के आस-पास थोड़ी सी अस्थि बन जाती है।

यदि हम नवजात बालक की ऊर्वस्थि को देखें तो उसकी ऐसी दशा दिखाई देगी :—गात्र अस्थि का है; नीचे का सिरा बाहर से कारटिलेज का है परन्तु उसका भीतरी भाग अस्थि का है; ऊपर का सिरा जिसमें दो उभार, शिर और ग्रीवा है, अभी बिलकुल कारटिलेज का है। यदि यह अस्थि उबाली जाय तो ऊपर के सिरे से जेलाटीन बन जायगा। और नीचे का सिरा अलग हो जायगा और उसके भीतरी भाग को छोड़कर बाहर के भाग से भी जेलाटीन बन जायगा।

जन्म के पश्चात् पहले वर्ष के अन्त में अस्थि के शिर में तीसरा केन्द्र उदय होता है, धीरे-धीरे इस केन्द्र से शिर और ग्रीवा में अस्थि बन जाती है।

चौथे वर्ष में ग्रीवा के नीचे वाले बड़े उभार में चौथा केन्द्र उदय होता है।

तेरहवें या चौदहवें वर्ष के लगभग छोटे उभार में पांचवाँ केन्द्र उदय होता है।

१६ से १८ वर्ष तक की आयु में अस्थि की यह दशा होती है, अस्थि के इस समय पांच टुकड़े हैं :—१ गात्र, २. महा शिखरक, ३. लघु शिखरक, ४. शिर, ५. नीचे का सिरा। चारों छोटे भागों और गात्र के बीच में कारटिलेज के पतरे रहते हैं। यदि इस समय यह अस्थि उबाली

जायें तो पांचों टुकड़े अलग-अलग हो जायेंगे, (चित्र ११५ में गात्र और नीचे के सिरे के बीच का कारटिलेज साफ़ दिखाई देता है; ऊ और वं के बीच में)।

१८वें साल के लगभग सिर और ऊपर के दोनों उभारों और गात्रों के बीच में जो पतरे हैं उनसे अस्थि बन जाती है। अब ऊपर का कुल सिरा गात्र से पक्के तौर से जुड़ जाता है।

२०वें वर्ष लगभग नीचे के सिरे और गात्र के बीच का कारटिलेज भी अस्थि बन जाता है; नीचे का सिरा गात्र से पक्की तरह जुड़ जाता है। अब पांचों पृथक् पृथक् अंशों के संयोग से एक अस्थि बन जाती है।

यह देखकर कि अस्थियों के सिरे गात्रों से जुड़ गये या नहीं और अस्थियों में किसी विशेष विकाशकेन्द्र का उदय हुआ या नहीं मनुष्यों की आयु निश्चय करने में बहुत सहायता मिलती है। जीवित अवस्था में शरीर को बिना चीरे फाड़े या किसी और प्रकार का दुःख दिये ऐक्स-रे (X-ray) यंत्र की सहायता से अस्थि-विकाश केन्द्रों का होना या न होना और सिरों का जुड़ जाना या अलग रहना बहुत आसानी से जाना जा सकता है (देखो एक्स-रे चित्र ४८; १०७)। उदाहरणः—मान लो कि किसी मनुष्य की जांघ को "एक्स-रे" यंत्र से देखने से ज्ञात हुआ कि ऊर्वस्थि का सिर और ऊपर के दोनों उभार गात्र से जुड़ गये हैं परन्तु नीचे का सिरा अभी अलग है तो यह परिणाम निकालना अनुचित न होगा कि उस मनुष्य की आयु १८ और २० वर्ष के बीच में है; २० से अधिक नहीं क्योंकि इस वर्ष के पश्चात् नीचे का सिरा गात्र से जुड़ जाता है, १८ वर्ष से कम नहीं क्योंकि इस वर्ष से पूर्व ऊपर का सिरा गात्र से नहीं जुड़ता।

अस्थियों के सिरों और गात्रों का संयोग अधिकतर १८वें और २०वें वर्षों के बीच में होता है। किसी किसी अस्थि का सिरा २५ वर्ष से पहले गात्र से नहीं जुड़ता (जैसे अक्षक)। अस्थियों को २५ वर्ष की आयु से पहले

चित्र १०५ अधर शाखा की तीन अस्थियों के
अस्थि विकास केन्द्रों के उदय काल
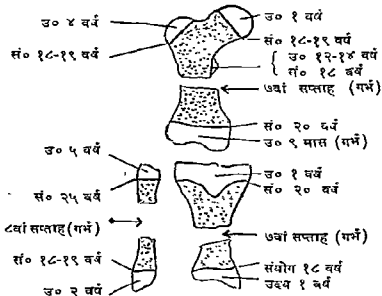
संयोग (Union) = सिरे का गात्र से जुड़ना : संकेत = सं०
अस्थि दंड = लम्बी अस्थि का बीच का भाग जो गात्र कहलाता है (Diaphysis)

अस्थि अंत (कुछ लोग इसको 'अस्थि शिर' भी कहते हैं) = अस्थि का सिरा जिसमें अलग केन्द्र उदय होता है

समीप अस्थि अंत = अस्थि का ऊपर का सिरा (Proximal Epiphysis)

दूर अस्थि अंत = अस्थि का नीचे का सिरा (Distal Epiphysis)

चित्र १०६ ऊर्ध्व शाखा की तीन अस्थियों के
अस्थि विकाश केन्द्रों के उदय काल

प्रगंडास्थि (Humerus)

उ० १ वर्ष
उ० २ वर्ष
उ० ५ वर्ष
उ० ८वां सप्ताह (गर्भ)
संयोग २० वर्ष
उ० १२ वर्ष
सं० २० वर्ष
सं० १६-१७ वर्ष
उ० २ वर्ष
उ० ५ वर्ष
उ० ११-१२ वर्ष
उ० ४ वर्ष
सं० १८ वर्ष
उ० ११ वर्ष
सं० १६ वर्ष
उ० ८वां सप्ताह (गर्भ)
उ० ८वां सप्ताह (गर्भ)
संयोग २० वर्ष
उ० १ वर्ष
सं० २० वर्ष
उ० ७-८ वर्ष
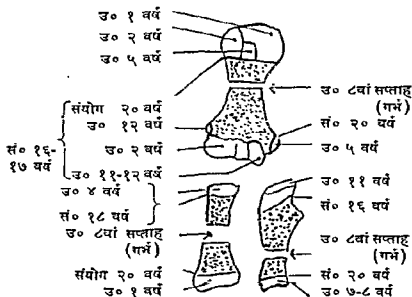
बहिः प्रकोष्ठास्थि (Radius)   अंतः प्रकोष्ठास्थि (Ulna)

अस्थिविकाश सम्बन्धी परिभाषा

अस्थि विकास (Ossification) = अस्थि बनना आरम्भ होना
अस्थि विकाश केन्द्र (Centre of ossification) = वह स्थान जहां अस्थि बनना आरम्भ होता है।
उदय (Appearance) = केन्द्र का बनने लगना; सकेत = उ

परिपक्व न समझना चाहिए। स्त्रियों की अस्थियां प्रायः पुरुषों की अस्थियों से कुछ वर्षों पहले परिपक्व होती हैं।[1]

सब अस्थियां कारटिलेज से नहीं बनतीं। कुछ अस्थियों के स्थान में पहले एक झिल्ली बनती है; धीरे-धीरे इस झिल्ली की रचना में परिवर्तन होता है, अस्थि विकास केन्द्र उदय होते हैं और अस्थि बन जाती है। करोट की कई अस्थियां झिल्ली से बनती हैं।

चित्र १०७—यह फोटो एक ११, १२ वर्ष की आयु की लड़की के हाथ का है जो एक्स-रे यंत्र द्वारा खींचा गया है। कलाई में आठों अस्थियां मौजूद हैं; मटराकार (Pisiform) अस्थि अभी छोटी है; यह अभी बननी आरम्भ हुई है। प्रकोष्ठास्थियों (Forearm bones) के नीचे के सिरे अभी गात्रों से नहीं जुड़े; इन सिरों और गात्रों के बीच में जो श्वेत भाग है वह कारटिलेज है (एक्स-रे से कारटिलेज की जगह श्वेत स्थान ही मालूम होता है) प्रत्येक करभास्थि (Metacarpal) का गात्र सिर से जुदा है। प्रत्येक अगुल्यस्थि (Phalynx) के भी दो भाग हैं। इस आयु में कलाई और हाथ में ४६ अस्थियों के टुकड़े हैं। यदि इस आयु के मृत शरीर के हाथ की हड्डियां उबाली जावें तो कारटिलेज के पिघल जाने के कारण ये सब टुकड़े अलग-अलग हो जावेंगे। यह लड़की बीच की अंगुली में अंगूठी पहने हुए थी।

---

१. एक्स-रे द्वारा जांच पड़ताल से यह मालूम हुआ है कि अस्थियों के सिरे गात्रों से स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा लगभग ५ वर्ष पहले जुड़ जाते हैं। पुरुषों और स्त्रियों में बढ़ौत की माप की जावे तो भिन्न-भिन्न कालों में अलग अलग मिलती है। जितनी तेजी से बढ़ौत पुरुषों में १७-१८ वर्षों में होती है उतनी ही तेजी से स्त्रियों में १५-१६ वर्षों में होती है। स्त्रियों में अधिक बढ़ौत १८ वर्ष तक होती है; पुरुषों में २५ वर्ष तक जारी रहती है (Woolard's Recent Advances in Anatomy 1927)

चित्र १०७—१२ वर्ष की लड़की के हाथ का एक्स-रे चित्र

वृहत्बहुकोण(Trapezium)२–क्षुद्रबहुकोण(Trapezoird)स्थि(ulna)
३—शिरोधारी (Capitate) ४—त्रिकोण सूत्रमय कारटिलेज
४—(Triangulat Cartilage)

पृष्ठ १५४ के सम्मुख
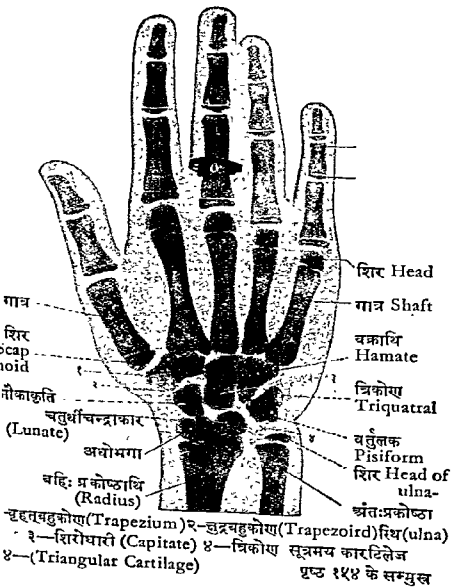
चित्र १०८—नौ दस वर्ष के बालक का हाथ
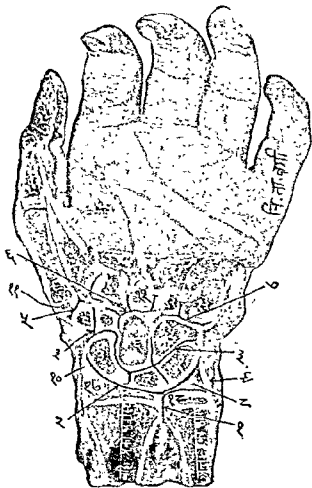
पृष्ठ १५५ के सम्मुख

चित्र १०८ की व्याख्या

नौ दस वर्ष के बालक का हाथ लम्बाई के रुख कुछ दूर तक दो भागों में काटा गया है; केवल अंगूठा कटा है; अंगुलियां रह गई हैं। ध्यान से देखिये:—

१. अन्तः वा बहिः प्रकोष्ठास्थियों (Ulna and Radius) के नीचे के सिरे गात्र से अभी नहीं जुड़े हैं (१७, १८)।

२. पहली करभास्थि का ऊपर (Metacarpal) का सिरा अभी शेष अस्थि से नहीं जुड़ा है (चित्र में श्वेत ९, ११)

३. अंगुष्ठ की अंगुल्यास्थियों (Phalanges) के सिरे भी अभी अलग हैं; यही दशा शेष अंगुलियों की अंगुल्यस्थियों की है।

४. पहुँचे की अस्थियां किस प्रकार एक दूसरे से बंधनों (Ligaments) द्वारा बँधी रहती हैं यह इस चित्र में स्पष्ट है। बंधन मोटी-मोटी श्वेत रेखाओं द्वारा दर्शाए गये हैं जैसे चित्र के भीतर ५, ६ के बीच में ६, ७ के बीच में; ११, १२ के बीच में; १२, १३ के बीच में इत्यादि। देखो चित्र के बाहर:—

१ = अंतः वा बहिः प्रकोष्ठास्थियों की नीचे की संधि। २ = दोनों प्रकोष्ठास्थियों और पहुँचे की अस्थियों की पहली पंक्ति की अस्थियों के बीच की संधि। ३ = नौकाकृति, चन्द्राकार, त्रिकोण; और बृहत् बहु-कोण, क्षुद्र बहुकोण, शिरोधारी, वक्रास्थि के बीच की संधि (अर्थात् मटरा-कार को छोड़कर पहली और दूसरी पंक्तियों की अस्थियों की संधि)। ५=बृहत् बहुकोण और पहली करभास्थि की संधि। ६=क्षुद्र बहुकोण और शिरोधारी; और दूसरी और तीसरी करभास्थियों की संधि। ७ = वक्रास्थि और चौथी वा पांचवीं करभास्थियों की संधि।

८ = त्रिकोण कारटिलेज । ९ = अंतः मणिकबंध । १० = बाह्य मणिकबंध ।
देखिये चित्र के भीतरः—

३ = नौकाकृति (Scaphoid); २ = चन्द्राकार (Lunate);
१ = त्रिकोण (Triquetral) ८ = वृहत् बहुकोण (Trapezium);
७ = क्षुद्र बहुकोण (Trapezoid); ६ = शिरोधारी (Capitate);
५ = वक्रास्थि (Hamate); ९ = पहली करभास्थि का गात्र (Body of 1st. metacarpal)

१० = ११, १२, १३, = दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं करभास्थियां;
१४, १५ अगुष्ठ की अंगुल्यस्थियां; १६ = अंगुष्ठसंकोचनी दीर्घपेशी की कंडरा (Tendon of Flexor Pollicis longus).

अस्थियों की संख्या के विषय में प्राचीन (आयुर्वेद) और अर्वाचीन व्यवच्छेदकों में मतभेद है।

हमने प्रौढ मनुष्य के शरीर में छोटी बडी कुल २०६[1] अस्थियां गिनाई हैं। अब देखिये प्राचीन ग्रन्थों में क्या लिखा है।

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते। शल्यतन्त्रेतु त्रीण्येव शतानि तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु सप्तदशोत्तर शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यन्ते॥

सुश्रुत शारीरस्थान अ० ५—॥१७॥

चरक और वाग्भट में ३६०, सुश्रुत और भाव प्रकाश में ३०० अस्थियां लिखी हैं। २०६ और ३६० या ३०० में बडा भेद है।

मतभेद के कारण

(१) ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन विद्वानों ने जितनी कठिन चीजें शरीर में होती हैं उन सबको अस्थि मान लिया है, उन्होंने कारटिलेज और

१. हाथ और पैर की कंडराओं में पाई जाने वाली छोटी अस्थियों को छोड़कर।

अस्थि में कोई भेद नही माना; दातो[1] को अस्थियो में गिना है, नख को भी अस्थि कहा है।

कार्टिलेज, दांत और नख की स्थूल और सूक्ष्म रचना अस्थि की रचना से इतनी भिन्न है कि इन सब चीजों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग उचित नहीं मालूम होता।

(२) प्राचीन विद्वानो ने किसी-किसी अंग में इतनी अस्थियां गिनाई है जितनी वास्तव में नही होती—"पार्श्वयोः षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशत्"[1] (भावप्रकाश), दोनों पसलियों में छत्तीस-छत्तीस अस्थियां हैं, दोनों ओर ७२। आजकल हर एक ओर १२ पसलियां होती है, किसी मनुष्य में १३ भी होती हैं; दोनों ओर २४ या २६ से अधिक नही होतीं। २४ या २६ और ७२ में बड़ा भेद है।

डाक्टर हार्नले साहब[2] लिखते हैं कि चरक ने ७२ का हिसाब यों बतलाया है—२४ पर्शुका हैं, २४ स्थालक और २४ अर्बुद। एक पर्शुका+एक स्थालक+एक अर्बुद=एक पसली।

पर्शुका = पसली का लम्बा भाग या गात्र।

अर्बुद (Tubercle) = पसली के पिछले सिरे पर का उभार जो

---

१. ६०, ७० वर्ष पूर्व के पाश्चात्य विद्वान् भी दांतों को अस्थियों में गिना करते थे।

पार्श्वयोश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशति पञ्चरारयीनि च पार्श्वकानि। तावन्ति चैषां स्थालिकान्यर्बुदाकाराणि तानि द्वसप्तति॥

(चरक शारीरस्थान)

पार्श्वे षट्त्रिंशदेवमेकास्मन् द्वितीयेप्येवम्।

(सुश्रुत शारीरस्थान)

२. Medicine of ancient India, Part I Osteology Dr. A. F. Rudolf Hoernle C I. E.

कशेरुका के पार्श्विक प्रवर्द्धन से लगा और बँधा रहता है ।

स्थालक = पीठ के कशेरुका के पार्श्व प्रवर्द्धन (Transverse process) पर जो गढा होता है उसको स्थालक (facet) कहते हैं । स्थालक के कारण कुल प्रवर्द्धन को स्थालक कहा है।

चरक ने पीठ के १२ कशेरुकाओं के प्रवर्द्धनो को पसलियो में गिना है.—

पर्शुका	१२	×	२	=	२४
अर्बुद	१२	×	२	=	२४
स्थालक	१२	×	२	=	२४
पसली देश की अस्थियां				=	७२

चरक के इस हिसाब पर निम्नलिखित प्रश्न उठते है —

१. पसली के उभार (अर्बुद) को शेष पसली (गात्र) से अलग गिनने की क्या आवश्यकता थी ?

२. स्थालक (पार्श्व प्रवर्द्धन) कशेरुका का भाग है न कि पसली का । इन प्रवर्द्धनो को पसलियो में गिनना उचित नही मालूम होता ।

३. केवल ऊपर के दस कशेरुकाओ के पार्श्व प्रवर्द्धनो को स्थालक कह सकते हैं, नीचे के दो कशेरुका (११वें, १२वें) के पार्श्व प्रवर्द्धनों को स्थालक न कहना चाहिये क्योकि उनमें स्थालक (गढे) नही होते है । इस प्रकार दोनो ओर १० + २ = २० स्थालक होगे न कि २४ ।

४. अर्बुद (उभार) भी केवल ऊपर की दस पसलियो पर होते है नीचे की दो पर नही होते । इस प्रकार अर्बुद भी २० हुए न कि २४ । चरक के पर्शुका, अर्बुद और स्थालको को गिनकर भी हमारे हिसाब से इन अस्थियों की संख्या ६४ होती है न कि ७२:—

पर्शुका	=	२४
अर्बुद	=	२०
स्थालक	=	२०
		६४

पसलियों की संख्या ७२ हमारी राय में किसी तरह भी सिद्ध नहीं होती। २४ पसलियां ही मानना ठीक है।

"एकैकस्यां तु पादांगुल्यांत्रीणित्रीणि तानि पंचदश"

(सुश्रुत), एक-एक अँगुली में तीन-तीन इस प्रकार पांचो अँगुलियों में पन्द्रह।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश—सबने अँगुलियों में पन्द्रह ही अस्थियां मानी हैं। सत्य तो यह है कि अँगूठे में केवल दो अस्थियां होती हैं, तीन नहीं; पांचो अँगुलियों में १४ होती हैं न कि पन्द्रह। हाथों पैरों की अँगुलियों में ५६ होती हैं न कि ६०।

(३) पुराने पण्डितों ने किसी किसी स्थान में उतनी अस्थियां नहीं मानी जितनी वास्तव में होती हैं। कलाई और टखने और एडी के देशों में सुश्रुत ने १० और चरक ने १४ अस्थिया मानी हैं:—

सुश्रुत—कूर्च ४, मणिबन्ध २, पार्ष्णि २, गुल्फ २,

चरक—अधिष्ठान ४, मणिक ४, पार्ष्णि २, गुल्फ ४ वास्तव में कूर्च (अधिष्ठान) और मणिबन्ध (मणिक) में अर्थात् कलाई में आठ अस्थियां होती हैं। पार्ष्णि और गुल्फ देशों (टांग और प्रपाद के बीच के भाग) में सात अस्थियां होती हैं।

(४) पुराने व्यवच्छेदकों ने कई अस्थियों के उभारों को पृथक्-पृथक् अस्थि माना है। कोहनी में अन्तःप्रकोष्ठास्थि का जो ऊपर का सिरा होता है उसको "कूर्पर" या "कपालिका" अस्थि कहा गया है। पृष्ठवंश के मोहरों

के पार्श्वस्थ प्रवर्द्धनों को अलग-अलग अस्थिया गिना है ।

पीठ और कमर में सुश्रुत ने ३० और चरक ने ४५ अस्थिया गिनाई हैं ।

सुश्रुत ने कशेरुका के तीन भाग माने हैं:—एक गात्र और दो पार्श्वस्थ प्रवर्द्धन । पार्श्वस्थ प्रवर्द्धनों को पसलियों में गिन लिया । त्रिक के पहले मोहरे को कमर के मोहरों में गिनकर उनके हिसाब से तीस अस्थियां यों हुई :—

पीठ के मोहरे=	१२
कमर के मोहरे ६; हर एक के तीन भाग इसलिए ६+३=	१८
	३०

चरक ने हर एक मोहरे के चार भाग माने हैं:—

गात्र, पाश्चात्य प्रवर्द्धन और दो पार्श्व प्रवर्द्धन । कमर में उन्होंने पाच ही मोहरें माने हैं । उनके हिसाब से ४५ अस्थियां होती हैं:—

पीठ के मोहरे १२; १२×४=४८ इनमें से २४ पार्श्व प्रवर्द्धन पसलियों में गिन लिये, शेष बचे २४	=	२४
कमर के पाच मोहरे ५×४=	=	२०
त्रिक और गुदास्थि (दोनों को एक माना है)		१
		४५

सुश्रुत ने त्रिक और गुदास्थि को अलग रक्खा है ।

(५) कपाल में आठ अस्थियों की जगह उन्होंने ६ अस्थिया गिनी हैं; कपाल की तली की बहुछिद्रास्थि और जतूकास्थि को उन्होंने नहीं गिना । ऐसे ही चेहरे की कई छोटी-छोटी अस्थियों को उन्होंने छोड दिया है (जैसे सीपाकृति, नासा फलक, अश्रुवस्थि आदि) ।

(६) मतभेद का एक कारण यह भी हो सकता है कि २५ वर्ष की आयु से पहले सब अवस्थाओं में अस्थियों की संख्या एक नहीं होती। बचपन में बहुत सी अस्थियों के कई टुकड़े होते है (चित्र १०७); ये टुकड़े उबालने से या छुरी की सहायता से अलग हो जाते हैं। नवजात बालक के शरीर में हर एक कशेरुका के तीन तीन टुकड़े होते हैं; ललाटास्थि के दो भाग होते हैं (चित्र ७३); शाखाओं की अस्थियों के भी कई-कई भाग होते हैं। यदि एक या दो वर्ष के बालक की अस्थियों के सब टुकड़े गिने जायें तो उनकी संख्या तीन सौ या उससे भी अधिक हो जावेगी। ११, १२ वर्ष के बालक के हाथ में ३८ अस्थियां होती हैं। (देखो चित्र १०७); इस चित्र का चित्र ३१ से मुकाबला करो।

प्राचीन और अर्वाचीन व्यवच्छेदकों के मतानुसार अस्थियों की संख्या (डाक्टर हार्नले[1] की पुस्तक के आधार पर):—

नवीन व्यवच्छेदक	चरक			सुश्रुत		
	(क) शाखाएँ					
१. हस्त और पाद की अँगुलियों में	पाणि	पाद	अँगुली	पाणि	पाद	अँगुली
५६			६०			६०
२. करभास्थियाँ वा प्रपादास्थियाँ २०	शलाका		२०	तल		२०
३. कलाई, टखना, एड़ी की अस्थियां ३०	अधिष्ठान		४	कूर्च		४
	पार्ष्णि		२	पार्ष्णि		२
४ प्रकोष्ठ की अस्थियां ४	अरत्नि		४	अरत्नि		४
प्रकोष्ठास्थियों के अतर्मणिक व बहिर्मणिक नामक उभार	[1]मणिक		४	मणिबन्ध		२
कूर्परकूट	[1]कपालिका		२	कूर्पर		२

१. Dr. A. F. Rudolf Hoernle's Studies in the Medicine of Ancient India—Osteology.

नवीन व्यवच्छेदक		चरक		सुश्रुत	
५. जंघा की अस्थियां	४	जंघा	४	जंघा	४
जंघा की अस्थियों के नीचे के सिरे जिनसे गट्टे बनते हैं।		† गुल्फ	४	गुल्फ	२
६. जान्वस्थि	२	जानु	२	जानु	२
७. प्रगंडास्थि	२	बाहु नलक	२	बाहु	२
८. ऊर्वस्थि	२	ऊरु नलक	२	उरु	२
	१२०		११०		१०६
		(ख) धड़			
९. अक्षक	२	अक्षक	२	अक्षक	२
१०. स्कन्धास्थि	२	अंसफलक	२	अंसज	२
११. पसलियां	२४	पर्शुका	७२	पर्शुका	७२
१२. वक्षोस्थि	१	उरस्	१४	उरस्	१७
१३. पीठ और कमर के कशेरुका	१७	पृष्ठ	४५	पृष्ठ	३०
१४. त्रिक	१			त्रिक	१
५१. चंचु	१			गुदा	१

नवीन व्यवच्छेदक		चरक		सुश्रुत	
१६ नितंबास्थि	२	श्रोणि फलक	२	नितंब	२
		भगास्थि	२	भग	१
	५०		१३८		१२८
		(ग) शिर, ग्रीवा			
१७. ग्रीवा के कशेरुका	७	ग्रीवा	१५	ग्रीवा	९
टेंटुवा, स्वर यंत्र* वायु प्रणालियां		जत्रु	१	कंडनाडि	४
१८. कपाल की अस्थियां					
ललाटास्थि	१				
पश्चादस्थि	१	शिरा कपाल	४	शिरकपाल	६
पार्श्विकास्थियां	२				
जतूकास्थि	१				
बहुछिद्रास्थि	१				
शखास्थियां	२	शंखक	२	शंखक	२
१९. चेहरे की अस्थियां					
ऊर्ध्वहन्वस्थि	२	हनु, हनुमूल	३	हनु	२
अधोहन्वस्थि	१				

नवीन व्यवच्छेदक		चरक		सुश्रुत	
		ललाट		गंड	२
कपोलास्थि	२	गंडकूट	१	नासा	३
नासास्थि	२	नासिका			
तालवस्थि	२	तालुषक	२	तालु	२
अश्रुवस्थि	२	×			
सीपाकृति	२	×			
नासाफलक	१	×			
कंठिकास्थि	१	×			
दंत	*	दंत	३२	दंत	३२
दंत उलूखल	†	उलूखल	३२		
नख	*	नख	२०		
अक्षिगोलक	*			अक्षिकोष	२
कर्ण	*			कर्ण	२
शखास्थि के भीतर की छोटी अस्थियां	६				
	३६		११२		६६
कुल जोड़ २०६			३६०		३००

† ये अलग अलग अस्थियां नहीं मानी जातीं।

*इनकी रचना अस्थिकी रचना से भिन्न होने के कारण इनकी गिनती अस्थियों में नहीं है।

अध्याय ६

संधियाँ (Joints)

जब दो या दो से अधिक अस्थियों या कारटिलेजों के सिरे या किनारे आपस में मिलते हैं तो इस मेल को जोड़ या सन्धि (Joint) कहते हैं। उदाहरण.—प्रगंडास्थि (Humerus) के शिर और स्कन्धास्थि (Scapula) के मेल से एक सन्धि बन जाती है जिसको स्कन्धसन्धि (Shoulder joint) या कन्धे का जोड़ कहते हैं; प्रकोष्ठ (Forearm) की दोनों अस्थियों के ऊपर के सिरों और प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे के मेल से कोहनी का जोड़ या कफोणि सन्धि (Elbow joint) बनती है; ललाटास्थि (Frontal bone) के ऊर्ध्व भाग के किनारे और पार्श्विकास्थियों (Parietal bone) के अगले किनारों के आपस के मेल से भी सन्धि बनती है; स्वरयन्त्र (Larynx) के जो कारटिलेज एक दूसरे से मिले और बँधे रहते हैं; इनके बीच में सन्धियां होती हैं।

दो अस्थियों या कारटिलेजों के बीच में जो गति (Movement) होती है वह केवल सन्धि के स्थान में होती है। सब सन्धियों में गतियां नहीं होती। इस विचार से कि गति होती है या नहीं सन्धियां दो प्रकार की कही जाती हैं:—

१. चल या चेष्टावन्त (Movable) सन्धियां जहां गति हो सकती है जैसे स्कन्ध सन्धि; कफोणि सन्धि; जानु (Knee joint), कूल्हा (Hip joint) आदि।

२. अचल या स्थिर (Immovable) सन्धियां जिनमें गति असम्भव है जैसे दोनों पार्श्विकास्थियों के बीच की सन्धि। अधोहन्वस्थि (Mandible) और शंखास्थि (Temporal) की सन्धि को छोड़कर कूर्पर (Skull) की शेष सन्धियां स्थिर ही हैं।

अचल, स्थिर या अचेष्ट संधियाँ (Immovable or Fixed Joints)

इस प्रकार की सन्धियां खोपडी में मिलती हैं। अस्थियां एक दूसरे से बिल्कुल जुड़ी रहती है। या तो एक अस्थि का किनारा दूसरी अस्थि के किनारे के ऊपर चढ़ा रहता है या पास पास की दोनों अस्थियों के किनारो में दांते (Serrations) रहते है और ये दांते एक दूसरे में फँस जाते है। खोपडी में जहा दोनो पार्श्विकास्थिया एक दूसरे से मिलती हैं और ललाट और पश्चात् अस्थियां पार्श्विकास्थियों से जुड़ती हैं वहां टेढ़ी रेखाएँ दिखाई देती हैं ये रेखाएँ अस्थियों के दांतों के एक दूसरे में फँसने से बनती हैं। (देखो चित्र ७६)।

जो लोग इस बात को नही समझते वे इन रेखाओं को कर्म का लेख मानते हैं; यह उनकी अज्ञानता है।

चल या चेष्टावन्त संधियाँ (Movable Joints)

कन्धे, कोहनी, कलाई (Wrist) और अँगुलियों की सन्धिया (Interphalangeal joints), कूल्हे, जानु, गुल्फ (Ankle) और पैर की अँगुलियों की सन्धियां; रीढ के मोहरों की सन्धियां (Intervertebral joints); निम्न हनु और शंखास्थि की सन्धि (Temporomandibular joint) चल सन्धिया हैं। इनके अतिरिक्त चल सन्धियां और भी हैं।

अध्याय ६

संधियाँ (Joints)

जब दो या दो से अधिक अस्थियों या कारटिलेजों के सिरे या किनारे आपस में मिलते हैं तो इस मेल को जोड़ या सन्धि (Joint) कहते हैं। उदाहरण.—प्रगंडास्थि (Humerus) के शिर और स्कन्धास्थि (Scapula) के मेल से एक सन्धि बन जाती है जिसको स्कन्धसन्धि (Shoulder joint) या कन्धे का जोड़ कहते हैं; प्रकोष्ठ (Fore-arm) की दोनों अस्थियों के ऊपर के सिरों और प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे के मेल से कोहनी का जोड या कफोणि सन्धि (Elbow joint) बनती है; ललाटास्थि (Frontal bone) के ऊर्ध्व भाग के किनारे और पार्श्विकास्थियों (Parietal bone) के अगले किनारों के आपस के मेल से भी सन्धि बनती है, स्वरयंत्र (Larynx) के जो कार-टिलेज एक दूसरे से मिले और बँधे रहते हैं; इनके बीच में सन्धियां होती हैं।

दो अस्थियों या कारटिलेजों के बीच में जो गति (Movement) होती है वह केवल सन्धि के स्थान में होती है। सब सन्धियों में गतियां नहीं होती। इस विचार से कि गति होती है या नहीं सन्धियां दो प्रकार की कही जाती हैं:—

१. चल या चेष्टावन्त (Movable) सन्धियां जहां गति हो सकती है जैसे स्कन्ध सन्धि; कफोणि सन्धि; जानु (Knee joint), कूल्हा (Hip joint) आदि।

२. अचल या स्थिर (Immovable) सन्धियां जिनमें गति असम्भव हैं जैसे दोनों पार्श्विकास्थियों के बीच की सन्धि। अधोहन्वस्थि (Mandible) और शंखास्थि (Temporal) की सन्धि को छोड़कर कूर्पर (Skull) की शेष सन्धियां स्थिर ही हैं।

अचल, स्थिर या अचेष्ट संधियाँ
(Immovable or Fixed Joints)

इस प्रकार की सन्धियां खोपडी में मिलती हैं। अस्थियां एक दूसरे से बिल्कुल जुड़ी रहती हैं। या तो एक अस्थि का किनारा दूसरी अस्थि के किनारे के ऊपर चढ़ा रहता है या पास पास की दोनों अस्थियों के किनारों में दांते (Serrations) रहते हैं और ये दांते एक दूसरे में फँस जाते हैं। खोपड़ी में जहां दोनों पार्श्विकास्थियां एक दूसरे से मिलती हैं और ललाट और पश्चात् अस्थियां पार्श्विकास्थियों से जुड़ती हैं वहा टेढी रेखाएँ दिखाई देती हैं ये रेखाएँ अस्थियों के दांतो के एक दूसरे में फँसने से बनती हैं। (देखो चित्र ७६)।

जो लोग इस बात को नही समझते वे इन रेखाओं को कर्म का लेख मानते हैं; यह उनकी अज्ञानता है।

चल या चेष्टावन्त संधियाँ (Movable Joints)

कन्धे, कोहनी, कलाई (Wrist) और अँगुलियों की सन्धियां (Interphalangeal joints), कूल्हे, जानु, गुल्फ (Ankle) और पैर की अँगुलियों की सन्धियां; रीढ के मोहरों की सन्धियां (Intervertebral joints); निम्न हनु और शंखास्थि की सन्धि (Temporomandibular joint) चल सन्धियां हैं। इनके अतिरिक्त चल सन्धियां और भी हैं।

बहुत सी चल सन्धियों में गति भली प्रकार होती है[1]। कुछ चल सन्धियों में थोड़ी ही गति सम्भव है[2]। कशेरुकाओं के गात्रों की सन्धियों (Intervertebral joints) में, विटप सन्धि (Pubic Symphysis) में (जो दोनों भगास्थियों के बीच में है); अक्षक (Clavicle)

चित्र १०९ अंससंधि (Shoulder joint)
(Cunningham's Practical Anatomy)
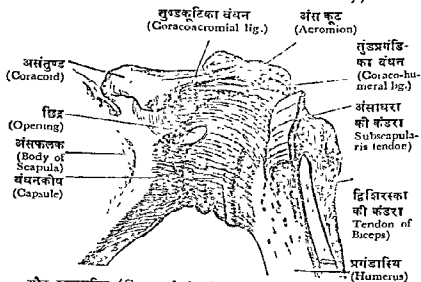
और स्कन्धास्थि (Scapula) की सन्धि में, अक्षक और वक्षोऽस्थि (Sternum) की सन्धि में केवल थोड़ी सी गति हो सकती है।

१. ये बहुचेष्टावन्त संधियां हैं (Freely movable)।
२. ये अल्प चेष्टावन्ति संधियां हैं (Partially movable)।

चित्र ११० कफोणि संधि (Elbow joint) (सामने से)
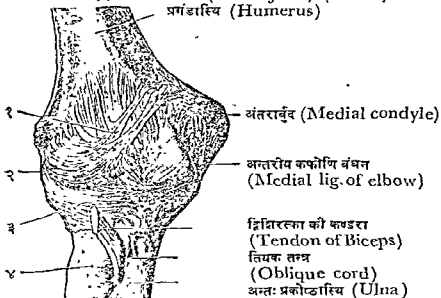
From Cunningham's Practical Anatomy by permission

१ = संधिकोष का अगला भाग (Anterior lig.)
२ = बाह्य कफोणि बंधन (Lateral lig. of elbow)
३ = चक्रवत् बंधन (Annular lig.) ४ = बहिः प्रकोष्ठास्थि (Radius)

चित्र १११ अन्तः बहिः प्रकोष्ठास्थि संधि (Radio-ulnar joint)

चित्र नं० ११२ वंक्षण सन्धि (Hip joint)

क=वक्षंण संधि के बंधन कोष का कमजोर भाग
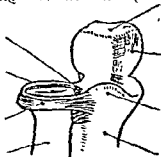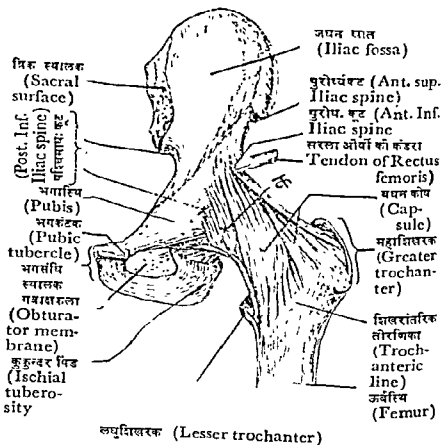
चित्र ११३ जानु संधि (Knee joint), (सामने से)
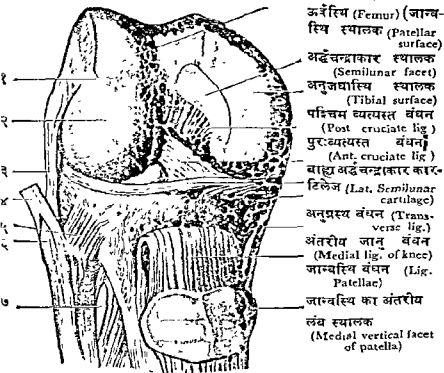
From Cunningham's Practical Anatomy by permission)

१ = बाह्य अर्द्धचन्द्राकार कारटिलेज का निशान (Impression of lat. semilunar cartilage)), २ = ऊर्वस्थि का जंघास्थि स्थालक (Tibial surface), ३ = बाह्यजानु बंधन (Lateral lig of knee), ४ = द्विशिरस्का और्वी की कंडरा (Tendon of Biceps femoris) ५=पुरः जंघा अनुजंघास्थि बन्धन; (Ant. Tibio-fibular lig); ६ = बाह्य जानु बन्धन (Lateral lig. of knee), ७ = अस्थ्यंतरिका कला में जंघापुरोगा रक्त वाहिनियों के जाने के लिए छिद्र (Opening in interosseous membrane for Ant. tibial vessels) ।

चित्र ११४ जानु संधि, जानु कोष पीछे से हटा दिया गया है जानु की अंदर की बनावट दिखाई देती है।
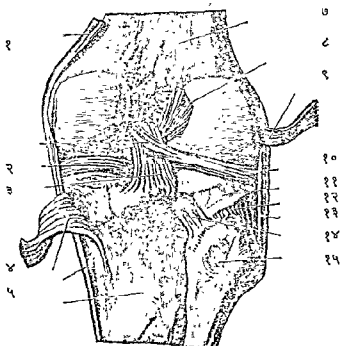
From Cunningham's Practical Anatomy by permission

१ = ऊरु अंतर नायनी गरिष्ठा की कण्डरा (Tendon of Adductor magnus), २ = अंतः अर्द्ध चन्द्राकार कारटिलेज (Medial semilunar cart.) ३ = पश्चिम व्यत्यस्त बन्धन (Post. cruciate lig.), ४ = कला कल्पा की कण्डरा. (Tendon of Semimembranosus), ५ = अंतरीय

जानु बन्धन, (Medial lig. of knee), ६ = जंघास्थि का जानु पृष्ठभाग (Popliteal surface of tibia), ७ = ऊर्वस्थि का जानु पृष्ठ भाग (Popliteal surface), ८ = पुरः व्यत्यस्त बंधन (Ant. cruciate lig.) ९ = जानु पृष्ठिका की कंडरा (Tendon of Popliteus), १० = बाह्य अर्द्धचन्द्राकार कारटिलेज (Lateral Semilunar Cartilage), ११ = जानुपृष्ठिका परिखा (Groove for popliteus), १२ = समीपस्थ जंघा अनुजंघा संधि कोष (Capsule of Sup. tibiofibular joint), १३ = बाह्य जानुबन्धन (Lat. lig. of knee), १४ = पश्चिम जंघा अनुजंघा बन्धन (Post. tibio fibular lig.), १५ = अनुजंघास्थि का शिर (Head of fibula)।

जिन चल सन्धियों में गतिया अच्छी तरह से हो सकती है उनमें अस्थियों के सिरे एक दूसरे से खोपडी की अस्थियों की भाति बिलकुल मिले हुए नहीं रहते। इन सिरों के बीच में कुछ अन्तर रहता है (देखो एक्स-रे चित्र ४८, १०७, ३१) और उनके एक दूसरे से मिलने वाले पृष्ठों पर सूत्रविहीन (Hyaline) कारटिलेज की पतली तह चढी रहती है (चित्र १०८) यदि एक अस्थि का सिरा उभरा हुआ है तो दूसरी अस्थि के सिरे पर गहराव और गढ़ा होता है जैसे ऊर्वस्थि के शिर के लिए नितंबास्थि में एक गहरा गढ़ा होता है। प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे पर प्रकोष्ठ की अस्थियों के ऊपर के सिरों के लिए खांचे और उभार होते हैं।

बंधन (संधि बंध या बंधनी; Ligaments)

चित्र १०९, ११०, ११२

चल सन्धियों में अस्थियों के सिरे एक दूसरे से सौत्रिक तंतु द्वारा बँधे रहते हैं। इस बांधने वाली वस्तु को बन्धन या सन्धिबन्ध (Ligaments)

कहते हैं। बहुत से स्थानों में बन्धन एक थैली (Sac) की शकल का होता है जिसके भीतर दोनों अस्थियों के सिरे रहते हैं; यह थैली ऊपर, ऊपर की अस्थि से और नीचे, नीचे की अस्थि से जुड़ी रहती है। इस थैली को सन्धि-कोष या बन्धनकोष (Capsular lig-) कहते हैं (चित्र १०९)। सन्धिकोष कहीं से मोटा होता है और कहीं से पतला। कहीं कहीं अस्थियों के सिरे चारों ओर से बन्धन से ढके हुए नहीं होते; बन्धन डोरी या पट्टी जैसे होते हैं; ये पट्टियां या डोरियां ऊपर, ऊपर की अस्थि से और नीचे, नीचे की अस्थि से जुड़ी रहती हैं। बन्धन अस्थियों के सिरों को अपने अपने स्थानों से सरकने नहीं देते। सन्धिकोष के भीतरी पृष्ठ पर एक पतली चमकदार झिल्ली स्नैहिक कला (Synovial membrane) लगी रहती है; झिल्ली की सेलें एक चिकनाईदार तरल स्नैह (Synovia) बनाती हैं। इस तरल से झिल्ली और अस्थियों के सिरों पर लगे हुए कार-टिलेज के पृष्ठ सदा तर रहते हैं। यह तरल वही काम देता है जो मशीन में तेल। मशीन में तेल लगाने से रगड़ नहीं होती और बिना किसी प्रकार का शोर किये अच्छी तरह चलती है; तेल की वजह से मशीन के पुरजे नहीं घिसते। वैसे ही इस चिकने तरल के कारण सन्धियों में रगड़ नहीं होती और गतियां बहुत अच्छी तरह बिना किसी प्रकार की आहट के होती हैं। कभी कभी इस कला का प्रदाह (Inflammation) (वरम्, सूजन) हो जाता है और कोष के भीतर तरल या पीप भर जाती है; सन्धियां सूजी हुई दिखाई देती हैं; उनमें पीड़ा होती है और गतियों में रुकावट हो जाती है।

जब तक बन्धन ठीक है उस समय तक अस्थियां अपने अपने स्थानों से नहीं हट सकतीं। बहुत जोर पड़ने पर या चोट लगने से कभी कभी बन्धन टूट जाते हैं और कोषों में छिद्र हो जाते हैं। बन्धनों के टूटने से अस्थियां अपना अपना स्थान छोड़कर एक दूसरे से अलग हो जाती हैं या उनके सिरे कोष

के छिद्र में से बाहर निकल आते हैं। इसको **विसंधान या संधिभंग या संधिच्युति** (Dislocation) कहते हैं।

कभी कभी बन्धन जोर से खिच जाते हैं और उनके कुछ सूत्र भी टूट जाते हैं; अस्थियां अपनी अपनी जगह पर रहती हैं। परन्तु अधिक खिचने से सन्धि में थोड़ा या बहुत दर्द होता है और गतियों में कुछ फर्क आ जाता है। इसको मोच आना या **बन्धन वितान** (Sprain of ligaments) कहते हैं। मोच आने में सन्धि के आस पास की मांस पेशियां या उनकी कंडराएँ भी खिच जाती हैं और कभी कभी मांस पेशी की कुछ सेलें या कंडरा के कुछ सूत्र टूट भी जाते हैं, सन्धि के आस पास कुछ सूजन आ जाती है। कंडरा के खिच जाने को **कण्डरा वितान** (Sprain of tendons) कहते हैं।

संधियों की संख्या

चल सन्धि की संख्या (स्वर यंत्र के कारटिलेजों की सन्धियों को छोड़कर) तीन सौ के लगभग है:—

१. कशेरुका के गात्रों और सन्धि प्रवर्द्धनों की सन्धियां	११७
२. निम्नहन्वस्थि और शंखास्थि की सन्धियां	२
३. (क) पसलियों और कशेरुका की सन्धियां	२४
(ख) पसलियों और कशेरुका के पार्श्व प्रवर्द्धनों की सन्धियां	२०
(ग) पसलियों के कारटिलेजों और वक्षोऽस्थि की सन्धियां	२४
४. वक्षोऽस्थि के ऊपर के दो भागों की सन्धि	१
५. (क) नितम्बास्थि और त्रिक की सन्धियां	२
(ख) भगास्थियों की सन्धि (विटप सन्धि)	१
६. ऊर्ध्वशाखाओं की सन्धियां ..	६२
७. निम्न शाखाओं की सन्धियां ..	४६
	२९९

संख्यातस्तु दशोत्तरे द्वेशते तेषां शाखास्वष्टषष्टिरे कोनषष्टिः कोष्ठे ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध त्र्यशीतिः।

सुश्रुत शारीरस्थान अ० ५ ॥२५॥

सुश्रुत और भावप्रकाश में २१० सन्धियां लिखी हैं। हमारे हिसाब से २९९ तो केवल चेष्टावन्त सन्धियां हैं; स्थिर सन्धियां जोड़कर संख्या और भी अधिक हो जायगी।

चित्र ११५ की व्याख्या (जानु संधि; Knee joint)

नौ दस वर्ष के बालक का जानु बीच में से लम्बाई के रुख दो समान भागों में काटा गया है। ऊर्वस्थि का नीचे का सिरा (दूरांत) और जंघास्थि का ऊपर का सिरा (समीपांत) अभी गात्र से नहीं जुड़ा। गात्र और सिरे बीच में अभी कारटिलेज का पत्र (Epiphyseal cartilage) मौजूद है।

१ = जानुपश्चात् धमनी (Popliteal artery) (और्वी धमनी (Femoral artery) ही नीचे जाकर जानुपश्चात् धमनी बन जाती है)।

२ = जानुपश्चात् शिरा (Popliteal vein) (यह शिरा ऊपर जाकर और्वीशिरा (Femoral vein) कहलाती है)

३ = ऊर्वस्थि का पिछला भाग यहां पर वसा रहती है। ४ = जानु संधि का पाश्चात्य बंधन (Post. lig.); ५ = पिंचिडिका पेशी (Gastrocnemius); ६ = बंधन; ७ = जानु पृष्ठिका (Popliteus) पेशी; ८, ९, १२ = श्लेष्म कोष (Bursae); १० = जान्वस्थि बंधन (Lig. patellae); ११ = वसा पिंड; १३ = वसापिण्ड; १४ = वसा; १५ = श्लेष्म कोष (Bursae); १६ = वसा; १७ = पेशी; १८, १९ = अंतर जिसमें स्नेह रहता है (Joint cavity); २० = अर्द्ध-चन्द्राकार कारटिलेज (Semilunar cartilage)।

चित्र ११५ जानु
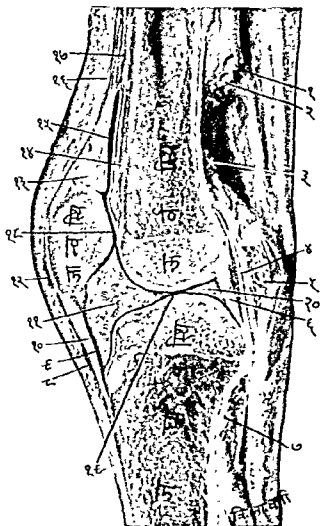
पृष्ठ १७६ के
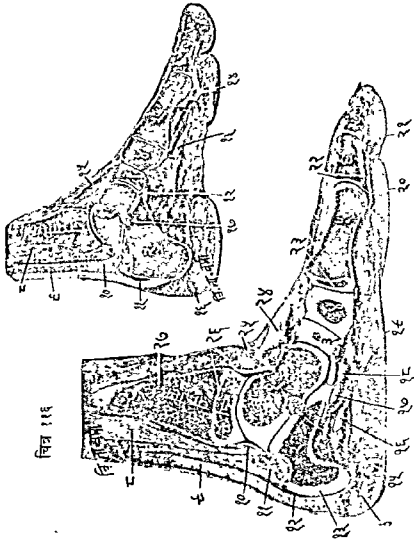
चित्र ११६

चित्र ११६ की व्याख्या; पैर की संधियाँ

नौ दस वर्ष के बालक का पैर इस प्रकार काटा गया है कि छुरी और आरी अंगुष्ठ, पहली प्रपादास्थि, पहली त्रिपार्श्विक, नौकाकृति, गुल्फास्थि, पार्ष्णि और जंघास्थि में से होकर गुजरी।

१=गुल्फास्थि (Talus); २=पार्ष्णि (Calcaneum); ३=नौकाकृति (Navicular); ४=पहली त्रिपार्श्विक (Medial cuneiform); ५=पहली प्रपादास्थि का गात्र (First metatarsal); ६=पहली अंगुल्यस्थि का गात्र (Proximal phalynx); ७=दूसरी अंगुल्यस्थि का गात्र (Distal phalynx); ८=पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा (Flexor hallucis longus) ९=पिंचिंडका पेशी की कंडरा (Tendo calcaneus); १०=गुल्फ संधि का पाश्चात्य बंधन (Post. lig. of ankle); ११=वसा (Fat); १२=श्लेष्म-कोष (Brusa); १३=पार्ष्णि का कारटिलेज कृत भाग (Cartilaginous part of calcaneum); १४=वसा (Fat); १५=गुल्फ पार्ष्णिबंधन (Talo calcanean lig.); १६=पादांगुली संकोचनी दीर्घा (Flexor digitorum longus); १७=पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा की कंडरा (Flexor hallucis longus tendon); १९=गुल्फ नौकाबन्धन (Talo-navicular lig.); २०=बंधन; २१=बंधन; २२=अंगुल्यस्थि का सिरा जो अभी गात्र से नहीं जुड़ा है; २३=प्रपादास्थि का शिर जो अभी अलग है; २४=जंघा पुरोगा पेशी (Tibialis anterior); २५=गुल्फ संधि का अगला बंधन (Ant. lig. of ankle); २६=कारटिलेज (Epiphyseal cartilage); २७=अस्थि।

चित्र ११७ की व्याख्या; पैर की संधियाँ

प्रौढ़ स्त्री का पैर; चित्र ११६ से मुकाबला करो।

१, २, ३, ४, ५, ६, ७=वही व्याख्या जो चित्र ११६ में; ८=जंघास्थि, (Tibia), इसका नीचे का सिरा गात्र से जुड़ गया है; ९=पिंचिंडका पेशी की कंडरा; १०=वसा; ११=श्लेष्म कोष; १२=बंधन; १३=कंडराएँ; १४=कंडरा चणकास्थि (Sesamoid bone); १५=कंडरा; १६=वसा; ... [illegible]ावास्थियां और अंगुल्यस्थियां पक्की हो गई हैं, उनके सिरे अलग नहीं हैं।

चित्र ११८ की व्याख्या (पैर की संधियाँ)

दस ग्यारह वर्ष के बालक का पैर इस प्रकार काटा गया है कि आरी दूसरी अंगुली, दूसरी प्रपादास्थि, दूसरी त्रिपार्श्विकास्थि, नौकाकृति, गुल्फास्थि और जंघास्थि में से होकर गुजरी। इस चित्र का चित्र ११७ से मुकाबला करो और देखो:—

१. पार्ष्णि का पिछला भाग नौ दस वर्ष की आयु तक कारटिलेज का ही रहता है (चित्र ९४ में १३), दस वर्ष की आयु में इसमें अस्थि विकासकेन्द्र उदय होता है और अस्थि बननी आरम्भ होती है। १५-१६ वर्ष की आयु में ये दोनों भाग जुड़ जाते हैं और एक अस्थि हो जाती है (चित्र ११७)।

२. १७-१८ वर्ष से पहले प्रत्येक प्रपादास्थि के दो भाग होते हैं। अंगुष्ठ की प्रपादास्थि का पिछला भाग गात्र से अलग रहता है (चित्र ११६ में २३)। शेष अंगुलियों के शिर गात्र से अलग रहते हैं। (चित्र ११८ में २८); १८ वर्ष के लगभग दोनों भाग जुड़ जाते हैं (चित्र ११८ में ५)।

१ = गुल्फास्थि (Talus); २ = पार्ष्णि (Calcaneum); ३ = नौकाकृति (Navicular); ४ = दूसरी त्रिपार्श्विक (Intermediate cuneiform); ५, २८, २५ दूसरी प्रपादास्थि (2nd. metatarsal); ६, ७, ८ = अंगुल्यस्थियां (Phalanges); ९ = जंघास्थि का गात्र (Shaft of tibia); १० = जंघास्थि का नीचे का सिरा जो अभी गात्र से जुड़ा नहीं है और जिसके और गात्र के बीच में (जं और घा के बीच में श्वेत भाग) अभी कारटिलेज का पत्र है (Lower epiphysis of tibia); ११ = गुल्फ संधि का पिछला बंधन (Post. lig of ankle); १२ = वसा (Fat); १३ = पिंडिका पेशी की कंडरा (Tendocalcaneus); १४ = त्वचा (Skin); १५ = वसा; १६ = पार्ष्णि का पिछला भाग जो अभी गात्र से अलग है (Post. part of calcaneum--still ununited); १७ = कला (Plantar aponeurosis); १८ = अस्थ्यांतरिक बंधन (Interosseous lig.); १९ = पेशी; २० = नौकापार्ष्णि बंधन (Calcaneo-navicular lig.); २१ = पादांगुलीसंकोचनी लघ्वी (Flexor digitorium brevis); २२ = पादांगुली संकोचनी दीर्घा (Flexor digitorum longus); २३ = गुल्फ संधि का अगला बंधन (Ant. lig. of ankle); २४ = जंघा पुरोगा पेशी (Tibialis anterior); २५ = दूसरी प्रपादास्थि का पिछला भाग (Base of 2nd. metatarsal); २६ = कंडरा; २७ = अस्थ्यांतरिकापेशी. (Interosseous muscle); २८ = प्रपादास्थि का शिर (Head of metatarsal); ।
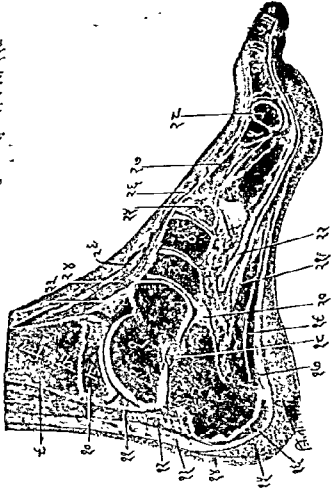
हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट २१ चित्र ११८

पृष्ठ १७८ के सम्मुख
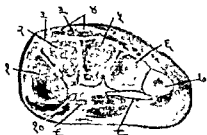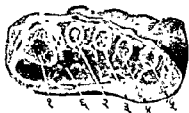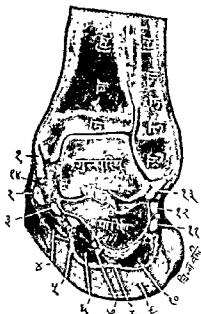
चित्र ११९
चित्र १२१
चित्र १२०
त्रि.ना.वर्मा
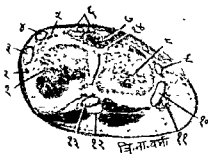
चित्र ११९ से १२२ तक की व्याख्या (पैर की संधियाँ)

बाएँ पैर के चार काट काटे गये हैं। पहले काट (चित्र ११९) में आरी जंघा की दोनों अस्थियों और गुल्फास्थि और पार्ष्णि में से होकर गजरी; दूसरे काट (चित्र १२०) में आरी ने नौकाकृति और घनास्थि को काटा, तीसरे काट (चित्र १२१) में तीनों त्रिपार्श्विक, घन और पांचवीं प्रपादास्थि का पिछला भाग कटा; चौथे काट (चित्र १२२) में प्रपादास्थियाँ कटी हैं। इन चित्रों में काटों के पिछले पृष्ठ दिखाए गए हैं यदि १२२ के पीछे १२१ और १२१ के पीछे १२० और १२० के पीछे ११९ रख दिये जावें तो पूरा पैर बन जावेगा। जो काट ११९ के पीछे था वह नहीं दिखाया गया।

चित्र ११९:—

१. १३ = गुल्फसंधि के पार्श्विक बंधन (Medial and lateral ligs. of ankle joint.); २ = जंघा पश्चिमगा पेशी (Tibialis posterior); ३ = पादागुली संकोचनी दीर्घा (Flexor digitorum longus); ४ = अंगुष्ठ बहिर्नायनी पेशी (Abductor hallucis); ५ = पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा (Flexor hallucis longus); ६ = पादांगुली संकोचनी लघ्वी (Flexor digitorum brevis); ७ = धमनी और नाड़ी (Nerve and artery); ८ = कला (Deep fascia); ९ = वसा (Fat); १० = कनिष्ठा बहिर्नायनी पेशी (Abductor digiti minimi); ११ = पादाविवर्तनी दीर्घा (Peroneus longus) १२ = पादाविवर्तनी लघ्वी (Peroneus brevis)।

चित्र १२०:—

१ = नौकाकृति (Navicular); २ = धमनी (Artery); ३ =

जंघापुरोगा पेशी (Tibialis anterior); ४=पादांगुष्ठप्रसारिणी दीर्घा (Extensor hallucis longus); ५=धमनी (Vein) ६=पादांगुली प्रसारिणी दीर्घा (Extensor digitorum longus); ७=पादांगुली प्रसारिणी लघ्वी (Extensor digitorum brevis); ८=घनास्थि (Cuboid); ९=पादविवर्तनी लघ्वी (Peroneus brevis); १०=पादविवर्तनी दीर्घा (Peroneus longus); १२= पादांगुली संकोचनी दीर्घा (Flexor digitorum longus); १३= पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा (Flexor hallucis longus)।

चित्र १२१:—

१=पहली त्रिपार्श्विक (Medial cuneiform); २=दूसरी त्रिपार्श्विक (Intermediate cuneiform); ३=पादांगुली-प्रसारिणी लघ्वी (Extensor digitorum brevis); ४=पादां-गुलीप्रसारिणी दीर्घा (Extensor digitorum longus), ५=तीसरी त्रिपार्श्विक (Lateral cuneiform), ६=घनास्थि (Cuboid), ७=पांचवीं प्रपादास्थि (Fifth metatarsal), ८=बंधन (Ligament), ९=पादांगुष्ठसंकोचनी दीर्घा (Flexor hallucis longus), १०=जंघा पश्चिमगा (Tibialis posterior)।

चित्र १२२:—

१, २, ३, ४, ५—पांचों प्रपादास्थियां (Five metatarsals)।

अध्याय ७

मांस संस्थान (Myology)

हम पीछे बतला चुके हैं कि जब बाहु यथाविधि चीरी जाती है तो त्वचा और वसा के कटने पर मास मिलता है; बाहु के काट (चित्र १३) से विदित है कि प्रगंडास्थि चारो ओर मांस से ढकी हुई है। बाहु की भाति मास और स्थानों में भी रहता है; जैसे वक्ष में, पसलियों के बीच में और उनके ऊपर, पीठ और कमर में पसलियों से और रीढ़ के मोहरों से लगा हुआ, चेहरे और ग्रीवा में, उदर की अगली दीवार में, टांगो में। मास केवल ककाल से ही नही लगा रहता प्रत्युत वह शरीर के कोमल अगो में भी रहता है—थैलियों (आशयो) मार्गो और नालियों की दीवारें अधिकांशतः मांस से ही निर्मित हैं।

मास शरीर में हर जगह रहता है कही थोड़ा कही बहुत। शरीर के भार के प्रति १०० भागो में ४२-४३ भाग मास के होते हैं।

जितनी गतिया शरीर में होती हैं वे सब मांस द्वारा ही होती हैं। चलना, फिरना, हाथ उठाना, मुंह खोलना, बोलना, पलक झपकाना, मैथुन करना ये सब काम मास से ही होते हैं। ऐसे ही हृदय का धड़कना आंखों की पुतली का बड़ा और छोटा होना, श्वास लेना, अन्न मार्ग में भोजन का धीरे-धीरे नीचे को सरकना, भयभीत होकर या अधिक शीत के प्रभाव से बालों का खड़ा हो जाना ये सब क्रियाएँ मांस से ही होती हैं।

कंकाल से लगा हुआ मांस बहुत से छोटे-छोटे गट्ठों से बना हुआ है। बाहु में मास के कई टुकड़े रहते हैं। इन पृथक्-पृथक् गट्ठों या टुकडों को पेशियां (Muscles) कहते हैं। पेशियां आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा

जुड़ी रहती है। यदि यह ततु अँगुली से हटा दिया जाय तो पेशियां एक दूसरे से अलग की जा सकती हैं। पेशियों के बीच में और उनके भीतर जाते हुए रक्त की नलिया और वातसूत्र दिखाई देते हैं। ककाल से लगा हुआ मांस तो पेशियो में विभक्त है, परन्तु जो मांस आशयो, नलियों, मार्गों और हृदय आदि अगो में है वह पृथक्-पृथक् पेशियों में विभक्त नही है। इन अंगो में मांस की मोटी और पतली तहें (Layers) रहती है, जैसे अन्न मार्ग की दीवारें मास से निर्मित हैं परन्तु यह नही कहा जा सकता कि यहां एक पेशी का अन्त हुआ और दूसरी का आरम्भ, या यह कि उसमें इतनी पेशिया हैं।

हम पहले कंकाल के मास का वर्णन करेंगे:—

मांश पेशी (चित्र १२४)

पेशियों का आकार और परिमाण जुदा-जुदा होता है। कोई लम्बी होती है और कोई चौडी; कोई मोटी होती है और कोई पतली। कुछ पेशिया बीच से मोटी होती हैं और सिरो पर पतली। ऐसे ही चौकोर, तिकोनी पेशिया भी होती हैं।

यदि आप पेशी को अच्छी तरह से देखें तो ज्ञात होगा कि वह सब जगह से एक ही रग की नही है। कहीं-कहीं उसका कुछ भाग श्वेत रग का है। बहुत सी पेशियों के सिरे श्वेत रग के होते हैं (चित्र १२४ में ३, ४, ६) यदि आप लाल और श्वेत भागों को चिमटी से नोच कर देखें तो मालूम होगा कि श्वेत भाग लाल से अधिक मजबूत है, नोंचने से उसमें पतले-पतले तार निकल आते हैं। श्वेत भाग सौत्रिक तन्तु से निर्मित है और लाल भाग मास तन्तु से। पेशी के इस सौत्रिक तन्तु से निर्मित भाग को **कण्डरा** (Tendon) कहते हैं (चित्र १२४ में ६)।

सब पेशियों की कण्डराय एक जसी नही होती। चौड़ी पेशियों की कंडरायें श्वेत रग की [illegible] तु मजबूत चादर के समान (Aponeurotic)

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट २२ चित्र १२३
गठा हुआ शरीर

पृष्ठ १८२ के सम्मुख

चित्र १२४ की व्याख्या

१. उरः कर्णमूलिका पेशी (Sternomastoid)।
२. द्विशिरस्का (Biceps brachii)।
३. द्विशिरस्का के दो शिर (Two heads of biceps)
४. द्विशिरस्का की कण्डरा (Tendon of biceps)।
५. त्रिशिरस्का (Triceps)।
६. कण्डराएँ (Tendons)।
७. अंगुष्ठ की पेशियां (Thenar muscles)।
८. उरश्छादनी वृहती (Pectoralis major)।
९. उरश्छादनी (उरस्थ) लघ्वी (Pectoralis minor)।
१०. उदरच्छदा (उरस्था) बहिःस्था (External oblique)।
११. नं० १० पेशी की कण्डरा (Aponeurosis of Ext. oblique)।
१२. उदरच्छदा मध्यस्था (Internal oblique)।
१३. सरल उदरच्छदा (Rectus abdominis)।
१४. छिद्र; शुक्र प्रणाली इसी में से होकर उदर के भीतर जाती है; इसी छिद्र में से होकर कभी कभी अंत्र का कुछ भाग निकल कर अण्डकोष में चला जाता है। (External Inguinal ring)।
१५. कण्डरा।
१६. दीर्घायामा (Sartorius)।
१७. सरलाऔर्वी (Rectus femoris)।
१८. उरु प्रसारिणी बहिःस्था (Vastus lateralis)।
१९. उरु प्रसारिणी अन्तःस्था (Vastus medialis)
२०. ऊर्वन्तः पार्श्विका। (Gracilis)।

२१. उरु अन्तरनायनी दीर्घा (Adductor longus)।
२२. पिंचिडिका महती (Gastrocnemius)।
२३. जंघा पुरोगा (Tibialis anterior)।
२४. कण्डरा (Tendon)।
२५. अंसाच्छादनी (Deltoid)।
२६. कूर्पर संकोचनी (Brachialis)।
२७. शिरच्छदा पेशी (Occipito-frontalis)।

होती हैं (चित्र १२४ में ११) बहुत-सी कंडराएँ डोरियो के समान होती हैं (१३१ में २८) कुछ कंडराएँ मोटी, छोटी और चपटी होती हैं। हाथो और पैरो की अँगुलियो की पेशियों की कडराएँ बहुत लम्बी होती हैं। कलाई और पैर में स्पर्श करने से पतली-पतली लकडियो के समान जो चीजें मालूम होती हैं वे सब कडराएँ हैं (चित्र १२४ में ६, १५, २४) कंडराएँ अस्थियो या कारटिलेजों से लगी रहती हैं। कहीं कहीं वे मोटी झिल्लियों या त्वचा से भी लगी रहती हैं।

मांस पेशिया एक स्थान से आरम्भ होकर एक या एक से अधिक संधियों के ऊपर होती हुई दूसरी अस्थि या कारटिलेज से जा लगती हैं। कोहनी विशेषकर दो पेशियो की सहायता से मुडती है, इनमें से एक पेशी (चित्र १२४ में ३) स्कन्धास्थि (Scapula) से आरम्भ होती है और नीचे जाकर बहि. प्रकोष्ठास्थि (Radius) से जुड जाती है आरम्भ होने और अन्त होने के स्थानो के बीच में दो सन्धिया पडती हैं (स्कन्ध सन्धि और कफोणि सन्धि) दूसरी पेशी प्रगंडास्थि (Humerus) के गात्र से आरम्भ होती है (चित्र १२४ में २६, यह पहली पेशी के नीचे रहती है) और अन्त. प्रकोष्ठास्थि (Ulna) से लगी रहती है; यह पेशी केवल एक ही सन्धि (कोहनी) के ऊपर होकर जाती है। सन्धियों के ऊपर होकर जाने ही से गतिया सभव हैं।

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट २३

चित्र १२४
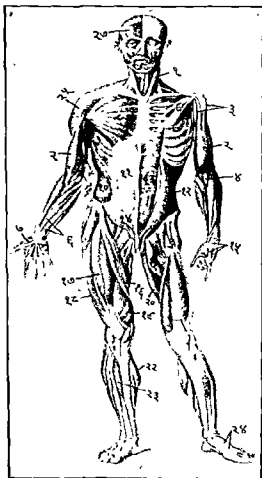
(From Quain's Atlas)

पृष्ठ १८३ के सम्मुख
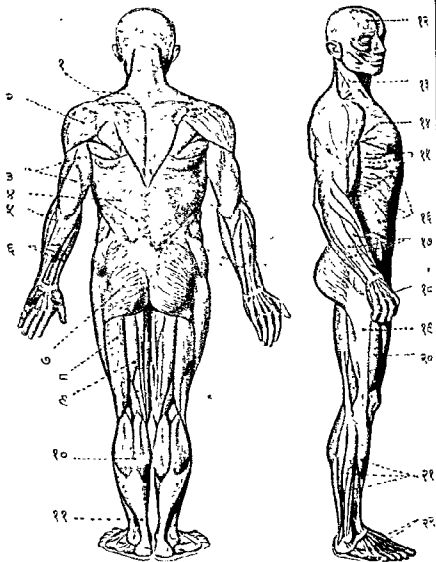
From Tandler's Systematischen Anatomie

पृष्ठ १८५ के सम्मुख

मांस का विशेष गुण

जब आप कोहनी मोड़ते हैं तो बाहु का सामने का भाग पहले की अपेक्षा अधिक मोटा और सख्त हो जाता है। सिर को इधर-उधर फिराने से उरःकर्ण-मूलिका पेशियां (चित्र १२४ में १) गरदन में साफ दिखाई देने लगती हैं (चित्र १२३) कारण यह है कि वे पहले से अधिक मोटी और कड़ी हो जाती हैं। अँगुलियों को मोड़ने से प्रकोष्ठ की पेशिया हिलती हुई दिखाई देती हैं। व्यायाम करते समय शरीर के विविध भागों की पेशियां पहले की अपेक्षा मोटी होती हुई और फिर पूर्व दशा को प्राप्त होती हुई देख पड़ती हैं।

मांस का यह एक विशेष गुण है कि वह सिकुड़ कर मोटा और छोटा हो सकता है और फिर अपनी पूर्व दशा को प्राप्त कर लेता है। उसमें स्थिति-स्थापकता (Elasticity) भी होती है।

पेशियो के सिरे अस्थियों, कारटिलेजों, त्वचा या झिल्लियों से जुड़े रहते हैं। इस कारण जब कोई पेशी सिकुड़ कर छोटी होती है तो वह उस चीज को जिससे वह लगी हुई है अपने साथ उठाती है। अस्थियों के बीच में सन्धियां रहने के कारण पेशियों के सिकुड़ने से उनके सिरे एक दूसरे के समीप आ जाते हैं। माथे और चेहरे में पेशियों के सिकुड़ने से त्वचा में झोल (Wrinkles) पड़ जाते हैं।

मांस के सिकुड़ने को संकोच (Contraction) और फिर फैलकर पूर्व दशा को प्राप्त करने को प्रसार (Relaxation) कहते हैं।

मांस पेशियों की संख्या

शरीर में लगभग ५१९ पेशियां हैं इनमें से ४५१ के लगभग अस्थियों की गतियों के काम में आती हैं; ये अस्थियों तथा उनके बन्धनों से लगी रहती हैं। शेष ६८ पेशियां आंख, स्वरयंत्र, जिह्वा, कण्ठ, तालु, कर्ण में लगी रहती हैं। अधिकतर पेशिया युग्म होती हैं—दाहिनी ओर बाईं—

प्रत्येक ऊर्ध्व शाखा के सम्बन्ध में	५९
प्रत्येक निम्न ,, ,, ,, ,,	५९
धड़ ,, ,, ,, ,,	६७
शिर, ग्रीवा ,, ,, ,, ,,	४०
	२२५
दोनों ओर	२२५ × २ = ४५
वक्षउदरमध्यस्थ (Diaphragm) पेशी	१
	४५।
तालु	५
जिह्वा (की विशेष पेशियां)	४
गले ,, ,,	५
स्वरयन्त्र ,, ,,	५
वाह्य कर्ण ,, ,,	६
मध्य कर्ण ,, ,,	२
अक्षि गोलक (Eyeball) और उर्ध्व पलक (Upper lid)	७
	३४
दोनों ओर	३४ × २ = ६८
जोड़	५१९

पंच पेशीशतानि भवन्ति तासां चत्वारि शतानि शाखासु कोष्ठे षट्षष्टिः ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं चतुस्त्रिंशत्
सुश्रुत शारीरस्थान अ० ॥४०॥

सुश्रुत में ५०० पेशियां लिखी हैं। पेशियों की संख्या के विषय में अधिक मतभेद नहीं है।

पेशियों की नामकरण विधि

अस्थियों की तरह पेशियों के भी जुदा-जुदा नाम होते है—

(१) कुछ पेशियाँ विशिष्ट आकार (Shape) की होती हैं; आकार के अनुसार उनके नाम रक्खे जाते हैं उदाहरणः—

त्रिकोण (Triangular) पेशी, चतुर्भुज या चतुरस्रा (Quadratus or quadriceps) पेशी, कृमिवत् (Lumbrical) पेशी, (केंचुवे या कीड़े की भांति गोल और लम्बी); जब कई पेशियां एक ही आकार की होती है (जैसे शरीर में छः चतुरस्रा पेशियां है) तो पेशी का स्थान भी बतलाया जाता है; यदि उस पेशी में कोई और विशेषता हो तो वह भी बतला दी जाती है। जैसे पाद चतुरस्रा (Quadratus plantae) पेशी, कटिचतुरस्रा (Quadratus lumborum) पेशी; उरु चतुरस्रा (Quadriceps femoris)।

(२) कभी कभी पेशी के एक से अधिक भाग होते हैं जो कुछ दूर जाकर आपस में मिल जाते हैं उदाहरणः— द्विशिरस्का (Biceps) पेशी; त्रिशिरस्का (Triceps) पेशी। शरीर में दो द्विशिरस्का पेशियां हैं एक बाहु में दूसरी ऊरु (जांघ) में इस कारण उनका वर्णन करते समय बाहु या ऊरु शब्द का भी प्रयोग होता है।

(३) देशानुसार भी नाम रक्खे जाते है जैसे अंसाच्छादनी (Deltoid) पेशी (अंस या कन्धे को ढांकने वाली पेशी); उरश्छादनी पेशी (Pectoralis ; छाती को ढांकने वाली पेशी)। उरश्छादनी पेशियां हर ओर दो दो होती है एक बड़ी (बृहती; Major) दूसरी छोटी (लघ्वी; Minor)।

उदर की अगली दीवार में मध्यरेखा के दोनों ओर पांच-पांच पेशियां रहती है; इनमें से दो तो लम्बाई के रुख लगी है और तीन चौड़ाई के रुख।

चौड़ाई के रुख वाली पेशियों में से दो कुछ तिर्छी (Oblique) हैं और एक व्यत्यस्त (Transverse)। एक तिर्छी पेशी सबसे बाहर है, दूसरी उसके पीछे। व्यत्यस्त पेशी तिर्छी पेशियों के पीछे है। इन तीनों पेशियों के नाम ये हैं —

उदरच्छदा बहिःस्था (Obliquus externus abdominis); **उदरच्छदा मध्यस्था** (Obliquus internus abdominis; **और उदरच्छदा अंतस्था** (Transversus abdominis)। लम्बाई के रुख वाली पेशियों में से एक सीधी है; वह ऊपर वक्षोऽस्थि और पसलियों के कारटिलेजों से आरम्भ होती है, और नीचे भगास्थियों से लगी रहती है; इसको **सरल उदरच्छदा** (Rectus abdominis) या केवल **सरला** कहते हैं। दूसरी पेशी छोटी है और **सूच्याकार उदरच्छदा** (Pyramidalis) कहलाती है।

(४) जब एक ही आकार की कई पेशियां एक जगह हों तो उनके नाम दिशानुसार रक्खे जाते हैं।

आँखों के गोले को इधर-उधर घुमाने के लिये छः पेशियां होती हैं। इनमें से चार पेशियां सीधी लगी हैं और दो तिर्छी। सीधी पेशियों को सरल (Rectus) और तिर्छी को वक्र (Obliquus) कहते हैं। सरल पेशियों में से एक गोले के ऊपर के भाग में और एक नीचे के भाग में लगी रहती है। शेष दो पेशियों में से एक अन्दर के कोये की ओर और दूसरी बाहर के कोये की ओर है इन सब पेशियों के नाम ये हैं:— **सरलोर्ध्वनेत्रचालनी** (Rectus superior); **सरलाधोनेत्रचालनी** (Rectus inferior); **सरलान्तर्नेत्रचालनी** (Medial rectus) **सरल बहिर्नेत्रचालनी** (Lateral rectus); **वक्रोर्ध्वनेत्रचालनी**

(Superior oblique); वक्राधोनेत्रचालनी (Inferior oblique):

(५) बहुत सी पेशियों के नाम उनके कार्य के अनुसार रक्खे जाते हैं। अंग को मोड़ने या झुकाने वाली पेशी नमनी (संकोचिनी; Flexor) पेशी कहलाती है; उसको सीधा करने और फैलाने वाली को प्रसारणी (Extensor) पेशी कहते हैं। किसी अंग को मध्य रेखा की ओर ले जाने वाली पेशी को (जैसे बाहु को वक्ष की ओर और एक जांघ को दूसरे जांघ की ओर ले जाने वाली को) अंतरनायनी या अंतरवाहिनी (Adductor); मध्यरेखा से दूर ले जाने वाली को बहिर्नायनी या बहिर्वाहिनी (Abductor) कहते हैं। छिद्र को छोटा करने वाली या किसी अंग को सिकोड़ने वाली पेशी को संकोचनी (Sphinctre) पेशी कहते हैं।

जैसेः—ऊरु प्रसारणी; ऊरु अन्तर्नायनी; ऊरु बहिर्नायनी; मलद्वार सङ्कोचनी; भ्रू सङ्कोचनी; योनि संकोचनी; अंगुली संकोचनी (मध्य पर्विका या अग्र पर्विका); कूर्पर नमनी। इसी प्रकार हथेली को ऊपर करने वाली पेशी करोत्तानिनी कहलाती है।

(६) और कारणों से भी नाम पड़ जाते हैं जैसे उरःकर्ण मूलिका, (Sterno-mastoid) शिफारसनिका (Stylo-glossus), शिफा कण्ठिका (Stylo-hyoid)। पेशी के नाम से यह ज्ञात हो जाता है कि वह किन-किन अस्थियों और अंगों के बीच में रहती है अर्थात् वह कहाँ से आरम्भ होती है और कहाँ जाकर अन्त होती है।

पेशी का वर्णन

जब किसी पेशी का वर्णन किया जाता है तो ये बातें बतलाई जाती हैं:—

१ = वह पेशी कहाँ से आरम्भ होती है—उदय (Origin)
२ = पेशी का अन्त कहां होता है—(Insertion)
३ = पेशी का क्या कार्य है (Actions)
४ = नाड़ी सम्बन्ध (Nerve supply)। नाड़ी द्वारा ही मस्तिष्क पेशी को गति करने की आज्ञा देता है।
५ = पेशी का आस-पास की पेशियों तथा अन्य अंगों से क्या सम्बन्ध है अर्थात् कौन चीज पेशी के ऊपर है, कौन उसके नीचे है इत्यादि (Relations)

उदाहरण :—द्विशिरस्का पेशी (प्रगंड की)

आरम्भ-उदय (Origin) :—लम्बा शिर अंसपीठ के ऊपर के अर्बुद से, छोटा शिर अंस तुण्ड से

अन्त (Insertion) :—बहिःप्रकोष्ठिकास्थि के अर्बुद पर

कार्य (Actions) :—कोहिनी मोड़ना तथा हाथ को उत्तान (Supine) करना

नाड़ी सम्बन्ध (Nerve supply) :—ग्रैव पाँचवीं वा छठी (C 5 & 6) नाड़ियों के तार

परिस्थिति (Relations) :—यह एक तर्क्वाकार (Spindle shaped) पेशी है; बीच का भाग मोटा और चपटा होता है। ऊपर का भाग पतला होता है यहाँ दो शिर होते हैं; नीचे एक शिर होता है; पेशी प्रगंड के अगले भाग में रहती है। ऊपर का भाग उरश्छादनी बृहती (Pectoralis major) तथा अंसच्छादनी (Deltoid) पेशियों से ढका रहता है, नीचे का भाग वसा व त्वचा से ढका रहता है। पेशी का ऊपर का भाग स्कन्ध सन्धि और प्रगंडास्थि के ऊपर के भाग को ढकता है, नीचे पेशी के पीछे कूर्पर नमनी (Bra-

रंगीन चित्र १२५ की व्याख्या

१- कशेरु अंस अनुका पे०	Trapezius
२- अंसाच्छादनी पे०	Deltoid
३- त्रिशिरका पे०	Triceps
४- कटि प्रगण्डिका पे०	Latissimusdorsi
५- प्रसारणी पेशियाँ	Extensors
६- नमनी पेशियाँ	Flexors
७- नैतम्बिका महती पेशी	Gluteus maximus
८- द्विशिरस्का और्वी पे०	Biceps femoris
९- कण्डरा कल्पा पे०	Semitendinosus
१०- पिचिण्डका महती पे०	Gastrocnemius
११- १०की कण्डरा	Tendo-Calcaneus
१२- शिरच्छदा पे०	Occipitofrontalis
१३- उर: कर्णमूलिका पे०	Sternomastoid
१४- उरश्छादनी बृहती पे०	Pectoralis major
१५- अंस पर्शुका पे०	Serratus anterior
१६- उदरच्छदा बहि:स्था पे०	Obliquus externus abdominis
१७- प्रसारिणी पेशियाँ	Extensors
१८- कण्डराएँ	Tendons
१९- जघन जंघा कला	Ilio-tibial tract
२०- ऊरु प्रसारणी बहि:स्था पे०	Vastus lateralis
२१- टाँग की पेशियाँ	Muscles of leg
२२- कण्डराएँ	Tendons

पृष्ठ १६० के सम्मुख

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट २५

चित्र १२६
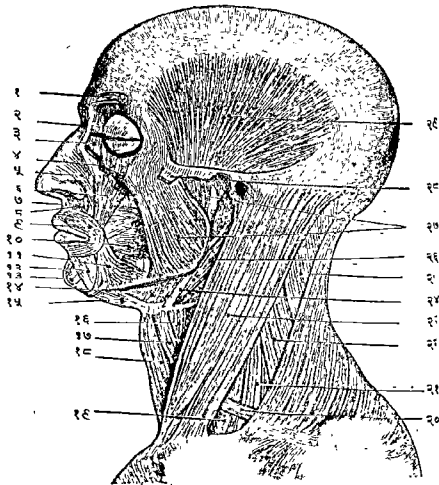
From Morris's T y by

चित्र १२६; शिर और ग्रीवा की पेशियाँ।

१ = भ्रूसंकोचनी पेशी (Orbicularis oculi)
२ = भ्रू-सन्नमनी (Procerus)
३ = नासोष्ठकर्षणी (Levator labii superioris alaque nasi)
४ = ऊर्ध्वोष्ठकर्षणी (Levator labii superioris)
५ = नासा संकोचनी (Compressor naris)
६ = भेदका पेशी (Levator angulioris)
७ = नासावनमनी (Depressor septi)
८ = नासाविस्फारिणी (Dilator naris)
९ = मुखसंकोचनी पेशी (Orbicularis oris)
१० = कपोलिका पेशी (Buccinator)
११ = सृक्कणी नमनी (Depressor anguli oris)
१२ = निम्नोष्टगत चतुरस्रा (Depressor labii inferioris)
१३ = चिबुका पेशी (Mentalis)
१४ = हनु कंठिका पेशी (Mylo-hyoid)
१५, २६ = द्विगुम्फिका के दो भाग (Digastric)
१६ = चुल्लिकंठिका पेशी (Thyro-hyoid)
१७ = अंसकंठिका पेशी (Omo-hyoid)
१८ = उरःकंठिका पेशी (Sterno-hyoid)
१९ = पर्शुका कर्षणी उत्तर (Scalenus anterior)
२० = अंसकंठिका पेशी (Omo-hyoid)
२१ = पर्शुका कर्षणी मध्यमा (Scalenus medius)
२२ = अंसोत्कर्षनी पेशी (Levator scapulae)

(lumina) छोटे बड़े हो सकते है। त्वचा में बालो की जड़ो में अनैच्छिक मास रहता है, इसके सकोच से बाल सीधे खड़े हो जाते है। अंत्र की दीवार मे अनैच्छिक मास की दो तहें होती है; एक तह में सेलें इस प्रकार रक्खी रहती है कि उनकी लम्बाई अंत्र की लम्बाई के रुख रहती है, दूसरी तह में सेलो की लम्बाई अंत्र की चौड़ाई के रुख रहती है। पहली तह की सेलों के संकोच से अंत्र की लम्बाई कम हो जाती है, दूसरी तह की सेलों के सकोच से चौड़ाई कम हो जाती है। दोनों तहो की सेलें साथ-साथ संकोच करती रहती है जिससे यह होता है कि कभी लम्बाई कम होती है और कभी चौड़ाई। अत्र की गति केचुवे जैसे कीड़ो की गति के सदृश होने के कारण क्रमिवत् आकुंचन (Peristaltic movements) कहलाती है। इस गति से भोजन धीरे-धीरे नीचे को सरकता रहता है और उस पर अंत्र की दीवारो का दबाव पड़ने से पाचक रस भी उसमे भली प्रकार मिल जाते है।

अनैच्छिक मांस कहाँ-कहाँ पाया जाता है

१. अन्नमार्ग की दीवार में अन्नप्रणाली के नीचे के भाग से लेकर मलद्वार तक (आमाशय और अंत्र मे)।

२. टेंटुवे और उसकी शाखाओ की दीवारों में।

३. मूत्रप्रणाली, मूत्राशय और मूत्रमार्गों की दीवारों मे।

४. शुक्रप्रणाली, शुक्राशय और प्रोस्टेट ग्रन्थि में।

५. स्त्रियों के विशेष अंगो में (योनि, गर्भाशय, डिम्ब प्रणाली)।

६. रक्त और लसीकावाहिनी नलियो मे, हृदय में।

७. पाचक रसो की नलियो में।

८. प्लीहा मे।

९. आँख के उपतारा नामक भाग में।

१०. बालों की जड़ों में; पसीने की ग्रन्थियों में, अंडकोष में; और कई ग्रन्थियों में।

ऐच्छिक मांस सेलें (चित्र ६ में १५)

ये सेलें अनैच्छिक सेलों की अपेक्षा अधिक लम्बी हैं। वे बेलनाकार होती हैं परन्तु उनके सिरे बीच के भाग से कुछ पतले होते

चित्र १२७ की व्याख्या

१ = उरः कर्णमूलिका पेशी (Sternomastoid);
२ = कशेरु अंसअक्षका पेशी (Trapezius)
३ = अंसाच्छादनी (Deltoid)
४ = त्रिशिरस्का (Triceps)
५ = बेलनाकारा लघ्वी (Teres minor)
६ = प्राचीरकाधोगा (Infraspinatus)
७ = बेलनाकारा बृहती (Teres major)
८ = अंसकशेरुका बृहती (Rhomboideus major)
९ = उरश्छादनी बृहती (Pectoralis major)
१० = अंसपर्शुका पेशी (Serratus anterior)
११ = कटिप्रगंडिका (कटिपार्श्वप्रच्छदा) (Latissimus dorsi)
१२ = उदरच्छदा बहिःस्था (Obliquus externus abdominis)
१३ = नैतंबिका मध्यस्था (Gluteus medius)
१४ = नैतंबिका महती (Gluteus maximus)

चित्र १२८ की व्याख्या

१ = जान्वस्थिबंधन (Lig. patellae)

२ = पिंचिडिका महती (Gastrocnemius)

३ = जंघास्थि (Tibia)

४ = पिंचिडिका लघ्वी (Soleus)

५ = पादांगुष्ठप्रसारणी दीर्घा (Extensor hallucis longus)

६ = बंधन (Sup. ext. retinaculum)

७ = अस्थ्यांतरिका पेशियां (Dorsal interossei)

८ = पादांगुलीप्रसारणीलघ्वी (Extensor digitorum brevis)

९ = बंधन (Inf. Ext. retinaculum)

१०, १२ = पादविवर्तनी लघ्वी (Peroneus tertius)

११ = पादांगुलीप्रसारणी दीर्घा (Extensor digitorum longus)

१३ = जंघापुरोगा पेशी (Tibialis anterior)

१४ = पादविवर्तनी दीर्घा (Peroncus longus)

१५ = जान्वस्थि (Patella)

चित्र १२९
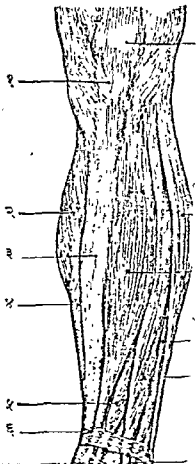
है। सेलों की चौड़ाई और मोटाई १/२५०० से १/२८० इंच तक (सामान्यतः १/८०० इंच) होती है। लम्बाई एक से डेढ इच तक होती है। अणुवीक्षण से देखने पर इन सेलो में मोटाई के रुख धारियां दिखाई देती हैं। ये धारियां दो प्रकार की होती है—श्वेत और काली। श्वेत के पास काली और काली के पास श्वेत धारियां रहती हैं। जहां श्वेत धारिया होती है सेल का वह भाग स्वच्छ होता है। जहां काली धारियां हैं वह भाग अस्वच्छ होता है। ऐच्छिक मांस सेलें धारीदार (Striated) सेलें कहलाती हैं; अनैच्छिक सेलें धाराविहीन (Non-striated)। प्रत्येक ऐच्छिक मांस सेल में एक से अधिक मींगियाँ होती हैं।

हृदय का मांस (चित्र ६ में १४)

हृदय का मांस अनैच्छिक है परन्तु उसकी सेलें और सब अंगों की अनैच्छिक सेलों से कुछ भिन्न प्रकार की होती हैं। ये सेलें ऐच्छिक मांस सेलों से इस बात में मिलती हैं कि इनमें धारियाँ होती हैं परन्तु ये धारिया बहुत हलकी हलकी होती हैं। ये सेलें लम्बी कम होती हैं और इनमें कहीं-कहीं शाखाएँ भी होती हैं जो पास की सेलों की शाखाओं से जुड़ी रहती हैं। (Syncytium).

चित्र १३१, हाथ की पेशियाँ

२, ३, ४ (चित्र में उलटे छपे हैं; देखो अंगुलियों के बीच में) = दूसरी, तीसरी और चौथी कृमिवत् पेशियाँ (2nd, 3rd & 4th Lumbricals)

५ = अंगुलीसंकोचनी अग्र पर्विका की कण्डरा (कटी हुई) (Flexor digitorum profundus cut tendon)

६ = अंगुलीसंकोचनी मध्य पर्विका की कण्डरा (कटी हुई) (Flexor digitorum sublimis cut tendon)

n Sparke's Artistic Anatomy Messrs Bailliere Tindall & Cox London

पृष्ट १९८ के सम्मुख

From Morris's Anatomy By permission
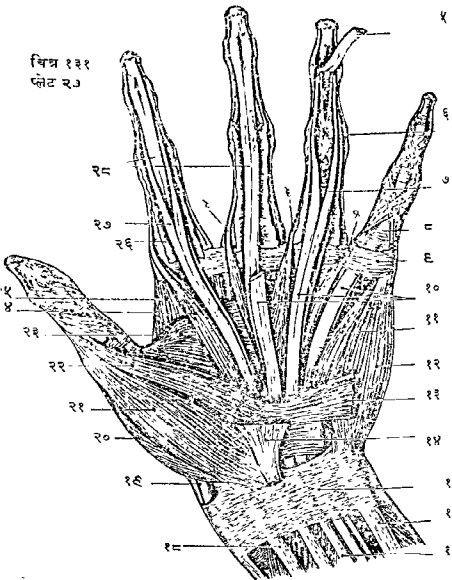
७ = अंगुलीसंकोचनी अग्र पर्विका की कण्डरा (कटी हुई) (Flexor digitorum profundus cut tendon)
८ = कंडरापिधान जिसमें से कण्डरा चमक रही है (Synovial sheath)
९ = कंडरा पिधान (मोटा भाग) (Tendon sheath)
१० = अंगुलीसंकोचनी मध्य पर्विका (कंडराएँ) (Flexor digitorum sublimis)
११ = कनिष्ठासंकोचनी (लघ्वी) पेशी (Flexor digiti minimi brevis)
१२ = कनिष्ठा बहिर्नायनी पेशी (Abductoı digiti minimi brevis)
१३ = कारतलिका पेशी (Palmaris brevis)
१४ = करतलसंकोचनी पेशी (Palmaris longus)
१५ = बंधन (Flexor retinaculum)
१६ = करसंकोचनी अन्तःस्थापेशी (Flexor carpi ulnaris)
१७ = अंगुलीसंकोचनी मध्यपर्विका की एक कण्डरा (Flexor digitorum sublimis)
१८ = करसंकोचनी बहिःस्था पेशी (Flexor carpi radialis)
१९ = अंगुष्ठ बहिर्नायनी दीर्घा की कंडरा (Abductor pollicis longus)
२० = सम्मुखकारिणी अंगुष्ठगा (Opponens pollicis)
२१ = अंगुष्ठ बहिर्नायनी लघ्वी (Abductor pollicis brevis)
२२ = अंगुष्ठसंकोचनी लघ्वी (Flexor pollicis brevis)
२३ = अंगुष्ठ अतर्नायनी (Abductor pollicis)
२४ = प्रथमा कृमिवत् पेशी (1st Lumbrical)
२५ = करपृष्ठ करभांतरिका (पहली) पेशी (First dorsal interosseous)
२६ = कंडरा पिधान (कटा हुआ) (Flexor sheath, cut)
२७ = अंगुलीसंकोचनी मध्य पर्विका (कंडरा) (Flexor digitorum sublimis)
२८ = अंगुलीसंकोचनी अग्र पर्विका (Flexor digitorum profundus)

ऊर्ध्व शाखा की पेशियाँ (Muscles of Upper Extremity)

(चित्र १२४, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१)

नाम (Name)	आरम्भ (Origin)	अन्त (Insertion)	कार्य (Actions)	
अंस [illegible] ...ezius	१. पश्चादस्थि (Occipital) २ ग्रीवा का वृहत् (कृकाटिका) बन्धन (Lig. nuchae) ३. सप्तम ग्रीवा कशे-[illegible] पश्चात् प्रवर्धन [illegible] of 7th [illegible] al vert.)	१. अक्षक के बाहरी तिहाई भाग का पिछला किनारा २. अंस प्राचीरक का ऊपर का किनारा (Upper lip of the spine of the scapula)	सिर को पीछे खींचना सिर को कन्धे की ओर लाना, यदि सिर स्थिर रहे तो पेशी का ऊपर का भाग कन्धे को ऊपर उठाता है;	[illegible] (N.) [illegible] ग्रैवेयी ([illegible]cal) नाड़ियों की शाखाएँ
२	४. वक्ष के सब कशेरुकाओं के पश्चात् प्रवर्धन और उनके पास के बन्धन	३. अंसकूट (Acromion) की मध्य धारा	बीच के और नीचे के भाग से स्कन्धास्थि घूमती है	
[illegible]	(१) नीचे के ६ वक्ष [illegible] या सब [illegible] रेखा या [illegible] त्रिक कशे-	प्रगण्डास्थि का पिण्ड-कातरिका परिखा (Bicipital groove of the humerus)	प्रगंड को नीचे लाना, पीछे खींचना और मध्य रेखा की ओर घुमाना	ग्रैवेयी ६, ७, ८ नाड़ी की शाखाएँ

	रुका के पश्चात् प्रवर्धनों या उपप्रवर्धन बन्धनों (Supra spinous lig.) से; (२) जघन चूड़ा (Iliac crest) (३) नीचे के चार पर्शुकाओं और (४) कभी कभी स्कन्धास्थि नीचे के कोने से			
(३) अंसकशेरुका बृहती Rhomboideus major चित्र १२७ में ८	२, ३, ४, ५ वें वक्ष कशेरुका के पश्चात् प्रवर्धन और बन्धन	स्कन्धास्थि की वंशानुगा धारा (Vertebral border of scapula)	स्कन्धास्थि को पीछे खींचना और घुमाना	५वी ग्रैवेयी नाड़ी की १ शाखा
(४) अंसकशेरुका लघ्वी Rhomboideus minor	ग्रीवा का बृहत् बन्धन, ७वें ग्रैवेयी कशेरुका और प्रथम	स्कन्धास्थि की वंशानुगा धारा	"	"

			तो पर्शुकाओं को ऊपर उठा सकती है	
(८) अक्षकाधरा Subclavius	पहली पर्शुका और उसके कार्टिलेज का जोड़	अक्षकास्थि के अधोतल की परिखा (Sub-clavian groove of the clavicle)	अक्षक को नीचे और सामने की ओर लाना	५, ६ ग्रैवेयी नाड़ियों की शाखा
(९) अंस पर्शुका Serratus anterior चित्र १२७ में १०	ऊपर की ८ पर्शुकाओं से ८ रेखाओं द्वारा	स्कन्धास्थि का ऊर्ध्व कोण, वंशानुगा धारा और अधो कोण का उदरतल	स्कन्धास्थि को आगे को लाना (धक्का देने में या घूँसा मारने में) इत्यादि	दीर्घ उरस्या नाड़ी (५, ६ ७ ग्रैवेयी)
	स्कन्ध सम्बन्धी पेशियाँ (Muscles of shoulder region)			
(१०) अंसाच्छादनी Deltoid चित्र १२७ में ३	(१) अक्षककी अगली धारा का बाहरी एक तिहाई भाग	प्रगंडास्थिका अंसार्बुद Deltoid tubercle of humerus	प्रगंड को वक्ष से बाहर की ओर खींचना, अगला भाग प्रगंड को	कक्षीया (circumflex) नाड़ी (५, ६ ग्रैवेयी)

	वक्ष (Thoracic) कशेरुका के पश्चात् प्रवर्धन			
(५) अंसोत्कर्षणी Levator scapulae चित्र १२६ में २२	ग्रीवा के ऊपर के ४ कशेरुका के पार्श्व प्रवर्धन (Transverse processes)	स्कन्धास्थि की वंशानुगा धारा	स्कन्धास्थि के ऊपर के कोने को ऊपर खींचती है	३,४,५ ग्रैवेयी नाड़ियाँ
(६) उरश्छादनी बृहती Pectoralis major चित्र १२४ में ८	(१) अक्षकास्थि (Clavicle) के मध्य भाग का अगला पृष्ठ (२) उरोस्थि (Sternum) (३) ऊपर की ६ पर्शुकाओं के कार्टिलेज (४) उदरच्छदाबहिःस्या की कंडरा (External oblique aponeurosis)	प्रगंडास्थि की द्विशिरस्का परिखा (Bicipital groove) का वाह्य ओष्ठ (Lateral lip)	प्रगंड को नीचे लाना, वक्ष की ओर नीचे लाना और वक्ष की ओर घुमाना। यदि प्रगंड स्थिर रहे तो वह पर्शुकाओं को ऊपर उठाकर वक्ष की समाई को बढ़ा सकती है।	५, ६, ७, ८ ग्रैवेयी और १ वाक्षसी (Thoracic) नाड़ी की शाखाएँ
(७) उरश्छादनीलघ्वी Pectoralis minor चित्र १२४ में ९	३, ४, ५ पर्शुकाओं	अंस तुण्ड (Coracoid process) की मध्य धारा और ऊपर का पृष्ठ	कन्धे को नीचे और आगे को लाना। यदि कन्धा स्थि र रहे	७, ८ ग्रैवेयी और १ वाक्षसी (Thoracic)

			ता पशु काआ का ऊपर उठा सकती है	
(८) अक्षकाधरा Subclavius	पहली पर्शुका और उसके कार्टिलेज का जोड़	अक्षकास्थि के अधो-तल की परिखा (Sub-clavian groove of the clavicle)	अक्षक को नीचे और सामने की ओर लाना	५, ६ ग्रैवेयी नाड़ियों की शाखा
(९) अंस पर्शुका Serratus anterior चित्र १२७ में १०	ऊपर की ८ पर्शुकाओं से ८ रेखाओं द्वारा	स्कन्धास्थि का ऊर्ध्व कोण, वंशानुगा धारा और अधो कोण का उदरतल	स्कन्धास्थि को आगे को लाना (धक्का देने में या घूँसा मारने में) इत्यादि	दीर्घा उरस्या नाड़ी (५, ६ ७ ग्रैवेयी)
	स्कन्ध सम्बन्धी पेशियाँ (Muscles of shoulder region)			
(१०) अंसाच्छादनी Deltoid चित्र १२७ में ३	(१) अक्षककी अगली धारा का बाहरी एक तिहाई भाग	प्रगंडास्थिका असार्वुद Deltoid tubercle of humerus	प्रगंड को वक्ष से बाहर की ओर खींचना, अगला भाग प्रगंड को	कक्षीया (circumflex) नाड़ी (५, ६ ग्रैवेयी)

	(२) असंकूट (Acromion) (३) अस प्राचीरक का नीचे का ओष्ठ (Lower lip of spine of scapula)		मोड़ता है और अन्दर की ओर घुमाता है; पिछला भाग पीछे की ओर खींचता है और बाहर की ओर घुमाता है	
(११) अंसाधरा Subscapularis	अंसखात् (Subscapular fossa)	प्रगंडास्थि का लघुपिंडक (Lesser tubercle of humerus)	प्रगंड को मध्य रेखा की ओर लाता है और अन्दर को घुमाता है	ऊपर की और नीचे की असाधरा नाड़ियां (Upper & lower subscapular N)
(१२) प्राचीरकोर्ध्वंगा Supraspinatus.	प्राचीरकोर्ध्वखात (Supraspinous fossa)	महा पिंडक (Greater tuberosity) का ऊपर का भाग और स्कन्ध कोष	प्रगंड को बाहर ले जाना	अंसोर्ध्वंगा नाड़ी (Suprascapular nerve (ग्रैवेयी ५,६)
(१३) प्राचीरकाधोगा Infraspinatus चित्र १२७ म ६	प्राचीरकाधोगाखात (Intraspinous fossa)	महापिंडक का बीच का भाग और स्कन्ध कोष	बाहु को सीधा करना और बाहर की ओर घुमाना	अंसोर्ध्वंगा नाड़ी (ग्रैवेयी ५,६)
(१४) येलनाकारालघ्वी Teres minor चित्र १२७ में ५	स्कंधास्थि (Scapula) की कक्षानुगा धारा का पृष्ठतल	महापिंडक का नीचे का भाग और स्कन्ध कोष	बाहु को बाहर की ओर घुमाना, वक्ष की ओर ले जाना और फैलाना	कक्षीया नाड़ी (Circumflex nerve) (ग्रैवेयी ५, ६)

(१५) वेलनाकारा वृहती Teres major चित्र १२७ में ७	स्कंधास्थि के पृष्ठतल पर निम्न कोण के पास से	पिंडकांतरिका, परिखा का अंतरीय ओष्ठ	बाहु को फैलाना और वक्ष की ओर ले जाना और अंदर को घुमाना	अंसाधरा नाड़ी (Subscapular N.)

बाहु को पेशियाँ
(**Muscles of upper arm**)

(१६) तुण्डप्रगंडिका Coracobrachialis	अंस तुण्ड की नोक (Tip of coracoid process)	प्रगंडास्थि की मध्य धारा का मध्य	बाहु को मोड़ना और उसको वक्ष की ओर ले जाना	७ ग्रै०
(१७) द्विशिरस्का बाहु Biceps brachii चित्र १२४ में २, ३	छोटा शिर:—अंस तुण्ड से जहां से तुण्ड प्रगंडिका का आरम्भ होता है लम्बा शिर:—अंस पीठ के ऊपर एक उभार से (Supraglenoid tubercle)	बहि प्रकोष्ठास्थि के अर्बुद का पिछला भाग	प्रकोष्ठ को उत्तान (Supine) करना कोहनी को मोड़ना कन्धे को मोड़ना	५, ६ ग्रै०
(१८) कूर्पर संकोचनी Brachialis चि १२४ में २६	प्रगंडास्थि के अगले पृष्ठ का नीचे का	अन्तः प्रकोष्ठास्थि का चचु प्रबंधन (Coronoid process)	कोहनी को मोड़ना	५, ६ और ७ ग्रै०

(१९) त्रिशिरस्का Triceps चित्र १२७ में ४ १२८ में ५	दो तिहाई भाग लम्बा शिर :—अंश पीठ के नीचे का अर्बुद (Infra glenoid tub.) बाह्य शिर :—प्रगंडास्थि की बाह्य धारा नाड़ी परिखा के ऊपर अन्तः शिरः—प्रगंडास्थि का पिछला पृष्ठ नाड़ी परिखा के नीचे	कूर्पर कूट का पिछला भाग (Olecranon process)	प्रकोष्ठ को फैलाना	६, ७, ८ ग्रै० बहिःप्रकोष्ठिका नाड़ी (Radial nerve) द्वारा

प्रकोष्ठ की पेशियां
(Muscles of forearm)

(२०) अधस्तलकारिणी Pronator teres	१ प्रगंडीयशिर—(Humeral head) प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद २ अन्तः प्रकोष्ठिका शिर—(Ulnar head) चंचु प्रव-	बहिःप्रकोष्ठिकास्थि के बहिः पृष्ठ का मध्य	प्रकोष्ठ को उन्मुख करना और मोड़ना	६, ७ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी (Median nerve)

	धंन की मध्य धारा दोनों सिरों के बीच में मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी रहती है	भाग		द्वारा
(२१) कर संकोचनी बहिःस्था Flexor carpi-radialis चित्र १३१ में १८	प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद (Medial epi-condyle of humerus)	दूसरी करभास्थि (metacarpal) के ऊपर के सिरे का अगला भाग :—कुछ भाग तीसरी कर-भास्थि में भी लगता है	कलाई को मोड़ना हाथ को बाहर को ले जाना	६, ७ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(२२) करतल संको-चनी Palmaris longus चित्र १३१ में १४	प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद	कलाई का व्यत्यस्त बन्धन (Flexor retinaculum) और हस्ततल की कंडरा कला (Palmar aponeurosis)	कलाई को मोड़ना और हस्ततल की कला को तानना	८ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(२३) कर संकोचनी अन्तःस्था Flexor carpi ulnaris चित्र १३१ में १६	प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद:—कूर्पर कूट (Olecranon) का मध्य भाग	मटराकारास्थि (Pisiform bone)	कलाई को मोडना और हाथ को अन्दर को ले जाना	८ ग्रै० १ वाक्ष० अन्तःप्रकोष्ठिका नाड़ी (Ulnar nerve) द्वारा

(२४) हस्तांगुली संकोचनी मध्य पञ्चिका Flexor digitorum sublimis चित्र १३१ में १०, २७ चित्र १३६, १३५	प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद; व कूर्परकूट की मध्य धारा; बहिः प्रकोष्ठास्थि की अगलीधारा का ऊपर का $\frac{१}{३}$ भाग	चार कंडरायें होती हैं; कलाई के पास मध्यमा (Middle finger) और अनामिका (Ring finger) की कंडरायें प्रदेशनी (Index finger) और कनिष्ठा (Little finger) की कंडराओं के सामने रहती हैं। हर एक कंडरा अंगुली के मौत्रिक कोष में रहती है और पहले पोवें के सामने कंडरा के दो भाग हो जाते हैं जिनके बीच में हो कर हस्तांगुली संकोचनी अग्र पञ्चिका (Flex. digitorum profundus) की कंडरा गुजरती है; फिर यह दोनों भाग मिल जाते हैं और आगे	पहले बीच के और फिर पहले पोवें को मोड़ना। कलाई को मोड़ना	७, ८ ग्रै० १ वा० मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी (Median nerve) द्वारा

		चलकर दूसरे पोर्वे के किनारों से लग जाते हैं		
(२५) हस्तांगुली संकोचनी अग्र पट्टिका Flexor digitorum profundus चित्र १३१ में २८,	अन्तः प्रकोष्ठिकास्थि के अगले और मध्य पृष्ठ के ¾ भाग से या अस्थ्यांतरिका कला (Interosseous membrane) से	४ कंडरायें होती हैं जो अन्तिम पोर्वों से लगती हैं	अन्तिम पोर्वों और कलाई को मोड़ना	७,८ ग्रै० १ वा० अन्तः प्रकोष्ठिका (Ulnar nerve) तथा अग्र अस्थ्यान्तरिका नाड़ी द्वारा
(२६) अंगुष्ठ संकोचनी दीर्घा Flexor pollicis longus	बहिः प्रकोष्ठास्थि के अगले पृष्ठ का बीच ½ भाग और अस्थ्यांतरिका कला; कभी कभी पंचु प्रवर्तन से भी	अंगुष्ठ के दूसरे पोर्वे का ऊपर का सिरा	अंगुष्ठ के पोर्वों को मोड़ना	ग्रै० ८, वा० १ अग्र अस्थ्यान्तरिका नाड़ी द्वारा (Anterior interosseous nerve)
(२७) प्रकोष्ठ चतुरस्रा, Pronator quadratus	अन्तः प्रकोष्ठास्थि के अगले पृष्ठ का नीचे का ¼ भाग और मध्य भाग	बहिः प्रकोष्ठास्थि का सामने का नीचे का ¼ भाग	प्रकोष्ठ को उन्मुख करना	ग्रै० ६,७ अग्र अस्थ्यान्तरिका नाड़ी द्वारा

प्रकोष्ठ के पिछले भाग की पेशियाँ
(Muscles of back of forearm)

(२८) प्रगंड बहिः प्रकोष्ठिका Brachioradialis चित्र १२८ में ३	प्रगंडास्थि के वाह्य आर्बुदिक रेखा का ऊपरी ⅔ भाग और पेशियान्तरिक कला (Intermuscular septum)	बहिः प्रकोष्ठास्थि के नीचे के सिरे का वाह्य पृष्ठ	कोहनी को मोड़ना	५, ६ ग्रै० बहि प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(२९) मणि बन्ध प्रसारिणी बहिस्था दीर्घा Extensor carpi radialis longus चित्र १२८ में ४ चित्र १३०	प्रगंडास्थि की वाह्य आर्बुदिक रेखा के नीचे का ⅓ भाग	दूसरी करभास्थि (Metacarpal) के ऊपर के सिरे में पीछे की ओर	कलाई को सीधा करना (पीछे को मोड़ना) और हाथ को बाहर लाना	६, ७ ग्रै० गम्भीर बहि प्रकोष्ठिका नाड़ी (Post. interosseous nerve) द्वारा
(३०) मणि बन्ध प्रसारणी बहिस्था ह्रस्वा Extensor carpi radialis brevis चित्र १२८ में ६, चित्र १३०	प्रगंडास्थि के वाह्य अर्बुद का अगला पृष्ठ और कूर्पर का वाह्य बन्धन	तीसरी करभास्थि के ऊपर के सिरे में पीछे की ओर	पहुँचे या कलाई को फैलाना (पीछे को मोड़ना)	६, ७ ग्रै० गम्भीर बहि प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा

(३१) अंगुली प्रसारणी Extensor digitorum communis चित्र १२८ में ५	प्रगंडास्थि का बाह्य अर्बुद (Lateral epicondyle of humerus)	दूसरी और तीसरी अंगुल्यस्थि का अधोभाग	अंगुल्यस्थियों को पीछे को मोड़ना; पहुँचे को मोड़ना, अंगुलियों को फैलाते समय उन को एक दूसरे से अलग करना	७, ८ ग्रै० गम्भीर बहिःप्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(३२) कनिष्ठा प्रसारणी Extensor digiti-minimi. चित्र १२८ में १६	प्रगंडास्थि का. बाह्यार्बुद	अंगुली प्रसारणी की कनिष्ठा शाखा से मिलकर ५ वी अंगुली की पहली अंगुल्यस्थि	कनिष्ठा को पीछे की ओर मोड़ना	७ ग्रै० गम्भीर बहिःप्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(३३) मणिबन्ध प्रसारणी अन्तस्था Extensor carpi-ulnaris चित्र १२८ में १७; चित्र १३०	प्रगंडास्थि का बाह्यार्बुद	५वी करभास्थि का अधोभाग	पौंहचे को पीछे की तरफ मोड़ना, हाथ को अन्दर को लाना	७, ८ ग्रै० ,,
(३४) कूर्पर प्रसारणी Anconeus चित्र १२८ में १९	बाह्यार्बुद का पीछे का भाग	कूर्परकूट और अन्तः प्रकोष्ठास्थि	कोहनी को फैलाना	७, ८ ग्रै० बहिः प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा

३५) करोत्तानिनी upinator	प्रगंडास्थि का बाह्या-र्बुद; कूर्पर बन्ध का बाह्य बन्धन; अन्तः प्रकोष्ठास्थि के ऊपर के भाग की एक रेखा।	वहिः प्रकोष्ठास्थि के ऊपरी $\frac{1}{3}$ भाग के पिछले और अगले ओर वाहरी	बहिः प्रकोष्ठास्थि को घुमाकर हथेली को पृथ्वी की ओर अर्थात् उत्तान करना	५, ६ ग्रैं० गम्भीर बहिःप्रकोष्ठका नाडी द्वारा
(३६) अंगुष्ठ बहि-र्नयिनी दीर्घा Abductor pollicis longus चित्र १२८ में ७	अन्त.प्रकोष्ठास्थि के पिछले भाग का वाहरी भाग, वहि.-प्रकोष्ठास्थि के पिछले भाग का बीच का $\frac{1}{3}$ भाग, अस्थ्यान्त-रिका कला।	पहली करभास्थि-के अधोभाग का पिछला भाग	अंगुष्ठ की करभास्थि को हस्ततल से परे ले जाना, हाथ को फैलाना और वाहर ले जाना	ग्रै० ७,८, पश्चात् अस्थ्यान्तरिका नाड़ी द्वारा
(३७) अंगुष्ठ प्रसा-रणीह्रस्वा Extensor pollicis brevis चित्र १२८ में ८, चित्र १३०	वहि.प्रकोष्ठास्थि का पिछला नीचे का $\frac{1}{5}$ भाग	अंगुष्ठ की पहली अगु-ल्यस्थि के अधो ाग का पिछला भाग	पहली अगुल्यस्थि को फैलाता है (पीछे की ओर ले जाता है) हाथ को फैलाना और बाहर की ओर लाना	ग्रै० ७, ८, पश्चात् अस्थ्या-न्तरिका नाड़ी (Posterior interosseous nerve) द्वारा

(३८) अंगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा Extensor pollicis longus चित्र १२८ में ११	अन्तः प्रकोष्ठास्थि के पीछे का $\frac{1}{3}$ भाग और अस्थ्यान्तरिका कला	अंगुष्ठ की दूसरी अंगुल्यस्थि का अधोभाग	अंगुल्यस्थियों को फैलाना हाथ को फैलाना और बाहर लाना	"
(३९) अत्यम्बिका प्रसारणी Extensor indicis	अन्तः प्रकोष्ठास्थि के पिछले नीचे के $\frac{1}{3}$ भाग के ऊपर	इसकी कडरा अंगुली प्रसारणी की उस कडरा से जो प्रदेशनी को जाती है जुड़ जाती है	प्रदेशनी को और हाथ को फैलाना (पीछे की ओर मोड़ना)	"

हस्त की पेशियां
(Muscles of hand)

(४०) अंगुष्ठ बहिर्नयनी ह्रस्वा Abductor pollicis brevis चित्र १३१ में २१	नौकास्थि का अर्बुद (Tubercle of scaphoid); बृहत् बहुकोण की रेखा (Ridge of the trapezium), व्यस्तमणिबन्ध बन्धन (Flexor retinaculum)	अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि का अधोभाग	पहले पोर्वे को बाहर ले जाना	ग्रं० ८, वा० १ मध्य प्रकोष्ठिका (Median nerve) द्वारा

(४१) अंगुष्ठ सकोचनी ह्रस्वा Flexor pollicis brevis चित्र १३१ में २२	व्यत्यस्त मणिबन्ध बन्धन और बहु कोण की रेखा	अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि (अंगुष्ठ बहिर्नायिनी ह्रस्वा के साथ)	पहले पोर्वे को और करभास्थि को मोड़ना	८ ग्रै० १ वा०
(४२) सन्मुखकारिणी अंगुष्ठगा Opponens pollicis चित्र १३१ में २०	व्यत्यस्त बन्धन, बहु कोण की रेखा	अंगुष्ठ की करभास्थि का अगला पृष्ठ और बाहरी धारा	करभास्थि को मोड़ना और उसको अन्दर की ओर घुमाना	८ ग्रै० १ वा० मध्य प्रकोष्ठिका द्वारा
(४३) अंगुष्ठ अन्तरनायनी Adductor pollicis चित्र १३१ में २३	तिरछा भाग:— दोनों बहुकोण के अगले पृष्ठ; शिरोधारी; २, ३, ४ करभास्थियों के अधोभाग अथवा इन अस्थियों के बन्धन	अंगुष्ठ की प्रथम अंगुल्यस्थि का अधोभाग अन्दर की ओर इस पेशी की कण्डरा में कण्डरास्थिका अस्थियाँ रहती हैं	अंगुष्ठ को हस्ततल की ओर खींचना	८ ग्रै० १ वा० अन्त प्रकोष्ठिका (Ulnar nerve) द्वारा

	व्यत्यस्त भागः—तीसरी करभास्थि के अगले पृष्ठ की रेखा; बन्धन			
(४४) हस्ततलीका ह्रस्वा Palmaris brevis		हस्ततल की कनिष्ठानुगाधारा (Medial border of palm) की त्वचा	त्वचा में झुर्रियाँ डालना	८ ग्रै० अन्तः प्रकोष्ठिका (Ulnar nerve) द्वारा
(४५) कनिष्ठा बहिर्नयिनी Abductor digiti-minimi brevis चित्र १३१ में १२	मटराकारास्थि; मणिबन्धसंकोचनी अन्त स्था की कंडरा	कनिष्ठा के पहले पोर्वे का अधोभाग	पहले पोर्वे को बाहर ले जाना	ग्रै० ८, वा १ अन्तः प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(४६) कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा Flexor digiti-minimi brevis चित्र १३१ में ११	व्यत्यस्त मणि बन्धन; वक्रास्थि (Hook of hamate) का बढ़ा हुआ भाग	पहली अंगुल्यस्थि को कनिष्ठानुगाधारा	कनिष्ठा के पहले पोर्वे को मोड़ना और उस को बाहर लाना	८ ग्रै० वा १ अन्तः प्रकोष्ठिका द्वारा
(४७) सन्मुख कारिणी कनिष्ठा Opponens digiti-minimi	वक्रास्थि और व्यत्यस्त बन्धन	५वी करभास्थि की कनिष्ठानुगाधारा	५वीं करभास्थि को सामने लाती है जिस से हस्ततल गहरा हो जाता है	८ ग्रै० वा० १ अन्तः प्रकोष्ठिका (Ulnar nerve) नाड़ी द्वारा

४८-५१ कृमिका (चित्र १३१ में २४, २, ३, ४; चित्र १३४) Lumbricales

हाथ में चार पेशियां छोटी-छोटी और केंचुवे के सदृश गोल-सी होती है इनको कृमिवत् पेशियां या कृमिका (Lumbrical) कहते हैं।

आरम्भ :—हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका की कंडराओं से इस प्रकार:—पहली और दूसरी उन कडराओं की बाह्य धारा और अगले पृष्ठ से जो कि प्रदेशिनी और मध्यमा को जाती हैं; तीसरी, मध्यमा और तर्जनी की कंडराओ से; चौथी, तर्जनी और कनिष्ठा की कण्डराओं की समीपस्थ धाराओं से।

अन्त :—हर एक अंगुली के पृष्ठ (Dorsum) पर अंगुलीप्रसारणी पेशी की कंडरा फैली रहती है। कृमिका की कंडरा का अन्त अपनी अंगुली की इस कंडरा में होता है।

कार्य:—पहले पोर्वों को मोड़ना और दूसरे और तीसरे पोर्वों को सीधा करना।

अस्थ्यांतरिका पेशियां Interossei (चित्र १३०, १३२, १३३)

यह दो प्रकार की हैं :—(१) पृष्ठ अस्थ्यांतरिका (Dorsal interossei) जो हाथ के पृष्ठ या पिछले भाग में हैं।

(२) करतलीय अस्थ्यांतरिका (Palmar interossei) जो हथेली में हैं।

५२–५५ पृष्ठ अस्थ्यांतरिका पेशियां (Dorsal interossei) (चित्र १३०, १३३)

यह चार हैं और पक्षाकार होती हैं

प्रारम्भः–पहली पेशी प्रथमा और द्वितीया; दूसरी पेशी द्वितीया और तृतीया; तीसरी तृतीया और चतुर्थी; चौथी चतुर्थी और पंचमी करभास्थियों के बीच में रहती है। इन पेशियों का आरम्भ इन अस्थियों के सन्निकट धाराओं से होता है।

अन्त :—पहली अंगुल्यस्थि का अधोभाग और अंगुलीप्रसारणी की कंडरा में इस प्रकार :—

प्रथमा—प्रदेशिनी की पहली अंगुल्यस्थि का बाह्य भाग।

द्वितीया—मध्यमा की पहिली अंगुल्यस्थि का वाह्य भाग।

तृतीया—मध्यमा की पहली अंगुल्यस्थि का अन्तः भाग।

चतुर्थी –तर्जनी की पहली अंगुल्यस्थि का अन्तः भाग।

कार्य :—यदि मध्यमा में से एक कल्पित रेखा खींची जावे तो इन पेशियों का कार्य अंगुलियों को इस रेखा से परे ले जाना है (चित्र १३३)।

चित्र १३३
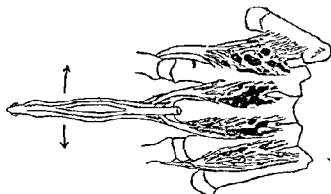
चित्र १३२
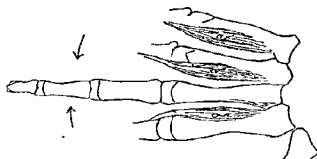
५६–५९ करतलीय अस्थ्यांतरिका पेशियाँ (Palmar interossei)

यह चार हैं और करभास्थियों के अगले पृष्ठ से लगी होती हैं।

आरम्भ :—प्रथमा, अँगूठे की करभास्थि के अधोभाग के अन्तः भाग से।

द्वितीया प्रदेशनी की करभास्थि के अन्तः भाग से।

तृतीया, तर्जनी की करभास्थि के बाह्य भाग से।

चतुर्था, कनिष्ठा की करभास्थि के बाह्य भाग से।

अन्त :—जिस अंगुली से आरम्भ होती है उसी की पहली अंगुल्यस्थि के उसी ओर के अधोभाग और अंगुली-प्रसारणी की कंडरा में उसका अन्त होता है।

कार्य :—अंगुलियों को मध्यमा में से होती हुई कल्पित रेखा की ओर लाना (चित्र १३२)।

नाड़ी :—ग्रै० ८ और वा० १ अन्तः प्रकोष्ठिका द्वारा।

ऊर्ध्व शाखा की ५९ पेशियों का वर्णन समाप्त हुआ।
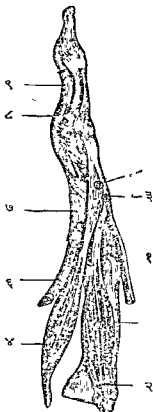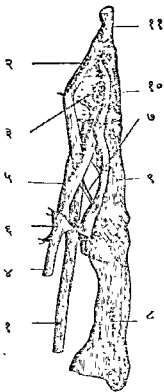
From Sparke's Artistic Anatomy (Bailliere Tindall & Cox, London)

चित्र १३४, १३५ की व्याख्या।

इन चित्रों में यह दर्शाया गया है कि कृमिकाओं और अस्थ्यांतरिकाओं का अन्त कैसे होता है; और हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्विका के दो भागों के बीच में से हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका कैसे निकलती है और ये दोनों कंडराएं किस प्रकार पोर्वों से लगी रहती हैं।

चित्र १३४

१ = पृष्ठ अस्थ्यांतरिका पे० (Dorsal interosseous muscle)
२ = पृष्ठ अस्थ्यांतरिका का आरम्भ (Origin of dorsal interosseus muscle)
३ = नं० २ का अन्त (Insertion of dorsal interosseous muscle)
४ = कृमिका (Lumbrical)
५ = उसका अन्त (*Its insertion*)
१० = अंगुली प्रसारिणी कण्डरा (Tendon of Extensor digitorum) जिसमें २, ४ का अन्त होता है।
६, ८, ९ = हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका (Flexor digitorum profundus)
७ = पिधान (Sheath)

चित्र १३५

१ = हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका की कण्डरा (Flexor digitorum profundus tendon).
२ = उसका अन्त (Its insertion)
३ = बंधन (Ligament)
४ = हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्विका (Flexor digitorum sublimis)

५ = नं० ४ के दो भाग (Two part of 4)

६ = पिधान (Sheath)

७ = बंधन (Ligament)

८ = करभास्थि (Metacarpal)

९ = पहली अंगुल्यस्थि (Proximal phalanx)

१० = बीच की ,, (Middle phalanx)

११ = अन्तिम या अग्र अंगुल्यस्थि (Distal phalanx)

चित्र १३८ की व्याख्या

१ = अंगुष्ठ बहिर्नायिनी दीर्घा (Abductor pollicis longus)

३ = अंगुष्ठ प्रसारणी ह्रस्वा (Extensor pollicis brevis)

५ = अंगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा (Extensor pollicis longus)

८ = मणिबन्ध प्रसारणी बहिस्था दीर्घा का अन्त (Insertion of Extensor carpi radialis longus)

१३–१४ = पृष्ठ अस्थ्यान्तरिका प्रथमा (1st dorsal interosseous)

१५ = अनामिका प्रसारणी (Extensor indicis)

१९ = अस्थ्यान्तरिका तथा कृमिका का अन्त।

Reduced from Sparke's Artistic anatomy (Messrs Bailliere, Tindall & Cox London.)
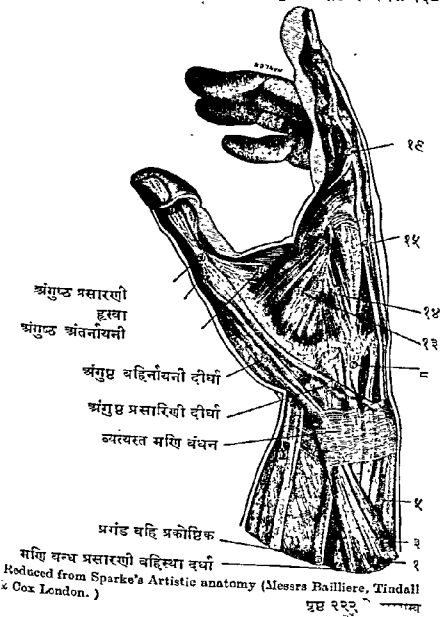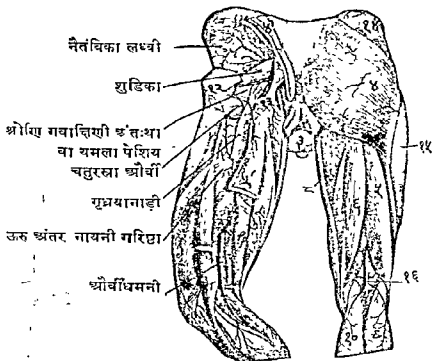
चित्र १३९

(Tiedmann)

१—गुदाग्नि २—मलद्वार ३—अंडकोष ४—नैतंत्रिका महती [कटा हुआ भाग] ५–द्विशिरका और्वी पेशी ५–द्विशिरका और्वी [कटा हुआ भाग) पेशी ६, ७—कण्डराकल्पा पेशी ८—ऊर्वन्तः पार्श्विका पेशी ९, १०—पिचिण्डिका महती के दो शिर ११—फलाकल्पा पेशी १२—महाशिखरक, यहाँ नैतंत्रिका मध्यथा पेशी लगी हुई है १३—कुकुन्दर पिण्ड. यहाँ त्रिकुकुन्दरिका बंधन लगा है १४—नैतंत्रिका मध्यथा १५—और्वी—— १६—जानु पश्चात् धमनी

पृष्ठ २२३ के सम्मुख

चित्र १३६
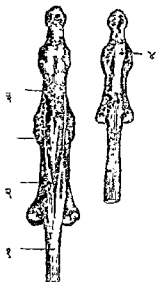
चित्र १३७
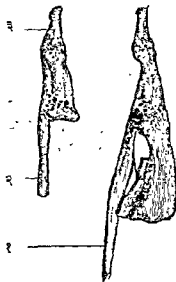
From Sparke's *Artistic Anatomy*(Bailliere, Tindall & Cox.)

चित्र १३६

१ = हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्विका की कण्डरा। (Tender of Flex. digitorum sublimis)

२ = उसके दो भाग।

चित्र १३७

१, २, हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका की कंडरा इसका अन्त सब से अगले पोर्वे के अगले पृष्ठ पर होता है (Flexor digitorum profundus)

३ = यह दो भाग बीच के पोर्वे के दोनों ओर जाकर लगते हैं (Insertion of the above to sides of middle phalanx)

४ = हस्तांगुली संकोचनी अग्र पश्चिका (Flex. digitorum profundus)

३ = अगला पोर्वा (या अंगुल्यस्थि (Distal phalanx)

अधो शाखा की पेशियाँ (Muscles of Inferior Extremity)

कटि की पेशियाँ (Muscles of Lumbar region).

(१) कटि लम्बिनी बृहती Psoas major चित्र १४० में ८	पाँचों कटि कशेरुकाओं के पार्श्व प्रवर्धन, कशेरुकाओं के बीच की गद्दियाँ (Inter-vertebral discs) और कशेरुकाओं के सन्निकृष्ट किनारे; ऊपर के चार कटि कशेरुकाओं के पार्श्वों की सौत्रिक महरावें (Fibrous arches)	ऊर्वस्थि का लघु शिरस्क (Lesser trochanter of femur)	जाँघ को वस्तिगह्वर पर मोड़ना (जब पेशी ऊपर से संकोच करे), जब नीचे से संकोच करे तो कटि को आगे की ओर अपनी ओर को झुकाना	२, ३, ४ कटि नाड़ियों (Lumbar nerves) की शाखायें
(२) कटि लम्बिनी लघ्वी Psoas minor चित्र १४० में ५	बारहवें वक्ष और पहले कटि कशेरुका के पार्श्व और उनके बीच की चकरी	भगचूडा (Pectineal line) और जघन भगतिका प्रवर्धन (Ilio-pectineal eminence) और कटि लम्बिनी बृहती वेष्ट (fascia)	पृष्ठ वंश को झुकाना	१ कटि नाड़ी
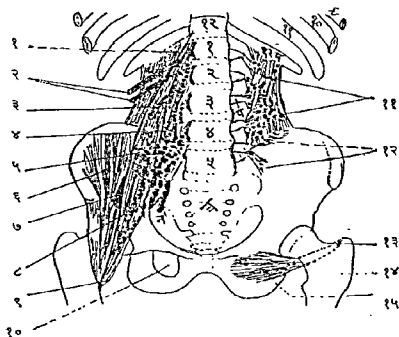
१ = सौत्रिक महराब (Fibrous arch)
२= १ कटिकी नाड़ी की शाखाएँ
३=औवीं बाह्य त्वगीया नाड़ी (Lat. cut. branch of femoral nerve)
४ = जनन-औवीं नाड़ी (Genito-femoral nerve)
५ = कटि लम्बिनी लम्बी की कंडरा (Tendon of psoas minor)
६ = जघनीया पे० (Iliacus)

७ = औवीं नाड़ी (Femoral nerve)

८ = कटि लम्बिनी बृहती (Psoas major)

९ = ,, ,, ,, का अन्त

१० = गवाक्ष (Obturator foramen)

११ = कटि चतुरस्रा (Quadratus lumborum)

१२ = जघन कटिबन्धन (Ilio lumbar lig.)

१४ = महा शिखरक (Greater trochanter)

१३ = इसका अन्त (Insertion)

१५ = श्रोणि गवाक्षिका बहिस्था (Obturator externus)

१२प = बारहवीं पर्शुका (12th rib)

न = गवाक्षीया नाड़ी (Obturator nerve)

त्र = त्रिकास्थि (Sacrum)

प = पार्श्व प्रवर्द्धन (Transverse process)

चित्र १४१ (Esmarch)
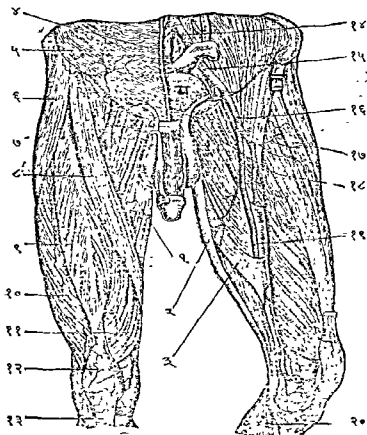
चित्र १४१ की व्याख्या

१ = दीर्घा ऊरु अंतरनायनी पे० (Adductor longus)
२ = ऊर्वन्तः पार्श्विका पे० (विरला) (Gracilis)
३ = गरिष्ठा ऊरु अतरनायनी पे० (Adductor magnus)
४ = उदरच्छदा बहि स्था की चौड़ी कण्डरा (Aponeurosis of Obliquus externus abdominis)
५ = उदरच्छदा बहि स्था (मांस भाग) (Obliquus externus abdominis)
६ = और्वी कलातंसनी (Tensor fascia latae)
७ = उदरच्छदा बहि स्था का छिद्र (External inguinal ring) जिसमें से होकर अण्डधारक रज्जु अंड तक पहुँचती है; अंत्रवृद्धि भी इसी छिद्र में से होती है।
१७ = अंडधारक रज्जु (Spermatic cord)
८ = सारटोरियस (Sartorius)
९ = ऊरु प्रसारणी (सरला) (Rectus femoris)
१० = ऊरु प्रसारणी बहि स्था पे० (Vastus lateralis)
११ = ऊरु प्रसारणी अन्त स्था (Vastus medialis)

[ऊरु प्रसारणी के चार भाग हैं :—तीन ऊपर गिनाये गये हैं, चौथा भाग ऊरु प्रसारणी मध्यस्था (Vastus intermedius) कहलाता है; समस्त पेशी को चतुर शिरस्का औैर्वी (Quadriceps femoris) कहते हैं]

१२ = जान्वस्थि (Patella) जिससे ऊरु प्रसारणी पेशी लगी है
१३ = जान्वस्थि बन्धन (Lig. patellae)
१४ = मूल श्रोणिगा धमनी (Common iliac artery)
१५ = बाह्य श्रोणिगा धमनी (External iliac artery)
१६ = और्वी धमनी (Femoral artery)
१८ = कंकतिका पेशी (Pectineus)
१९ = और्वी धमनी (Femoral artery)
२० = पिंचिडिका महती (Gastrocnemius)

चित्र १४२
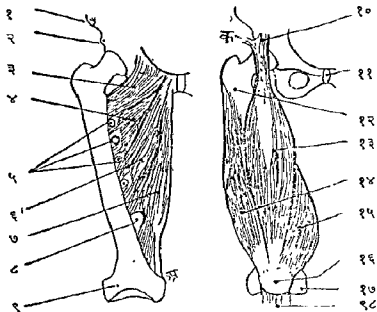
१ = पुरोर्ध्व कूट (Ant. sup. iliac spine)

२ = पुराधः कूट (Ant. inf. iliac spine)

३ = कंकतिका पे० (Pectineus)

४ = ऊरु अन्तरनायनी लघ्वी (Adductor brevis)

५ = रक्तवाहिनी छिद्र (Gaps for arteries)

६, ७ = ऊरु अन्तरनायनी गरिष्ठा (Adductor magnus)

८ = औवीं धमनी छिद्र (Hiatus for femoral artery)

९ = ऊर्वस्थि अधोभाग (lower end of femur)

१० क = सरला औवीं आरम्भ (Rectus femoris—origin)

११ = भगसन्धि (Pubic symphysis)

१२ = ऊर्वस्थि (Femur)

१३ = सरला औवीं (Rectus femoris)

१४ = ऊरु प्रसारणी बहि:स्था (Vastus lateralis)

१५ = ,, ,, अन्तःस्था (Vastus medialis)

१६ = जान्वस्थि (Patella)

१७ = ऊर्वस्थि (Femur)

१८ = जानुबन्धन (Lig. patellae)

(३) जघन्या Iliacus चित्र १४० में ६	जघनखात का ऊपर का ⅔ भाग जघनचूड़ा का अन्तरीय कोष्ठ; जघन त्रिक और जघन कटि बन्धन इत्यादि	अधिक भाग कटि लम्बिनी वृहली से मिल जाता है और इन दोनों की मिश्रित कंडरा लघु शिखरक और लघु शिखरक से १ इंच नीचे तक लगी रहती है	जाँघ को मोड़ना और मोड़ते हुए उसको अन्दर को घुमाना और जब मुड़ जाये तो बाहर को घुमाना	कटि २, ३, औवीं नाड़ी (Femoral nerve) द्वारा

जाँघ (ऊरु) की पेशियाँ (*Muscles of thigh*)

(४) औवींकला तंसनी Tensor fasciae latae चित्र १४१ में ६	जघन चूड़ा के बाह्य ओष्ठ का अगला भाग; जघन पुरोर्ध्व कूट	औवींकला के "जघन जंघा नामक भाग" (Iliotibial tract) की दो तहों के बीच में	औवींकला को तानना; जाँघ को बाहर ले जाना और भीतरी ओर घुमाना	कटि (Lumbar) ४, ५ त्रिक (Sacral) १ ऊर्ध्व नैतम्बिक नाड़ी (Sup. gluteal N.) द्वारा

(५)—सारटोरियस Sartorius चित्र १४१ में ८	जघन पुरोर्ध्व कूट और उसके नीचे का भाग	जघनास्थि का ऊपर का सिरा; जानुकोष और जानु का अन्तःरीय बन्धन	जंघास्थि को मोड़ना और भीतर को घुमाना; जाँघ को मोड़ना और बाहर की ओर ले जाना और उसको बाहर की ओर घुमाना	३,४ कटिकी ओर्वी नाड़ी द्वारा
चतुर शिरस्का ओर्वी: (Quadriceps femoris)—			टाँग (जघा) फैलाना या पसारना	२,३,४ कटिकी; ओर्वी नाड़ी द्वारा
६—सरला ओर्वी (१) Rectus femoris चित्र १४१ में ९	सीधा शिर: पुरोध. कूट; टेढ़ा शिर उपवक्षणोलूखल खात (groove above the acetabulum)	जान्वस्थि का ऊपर का किनारा		
७—ऊरु प्रसारणी बहिस्था (२) (Vastus lateralis) चित्र १४१ में १०	शिखरान्तरिक रेखा (Trochanteric line), महाशिखरक (Greater trochanter), नितम्बार्बुद (Gluteal tuberosity); विश्लेषित तीरणिका (Linea aspera) के बाह्य	सरला ओर्वी की कण्डरा से मिलकर जान्वस्थि के बाहरी और ऊपरी किनारे		

from Sparke's Artistic Anatomy (Messrs. Bailliere Tindall & Cox Lond)
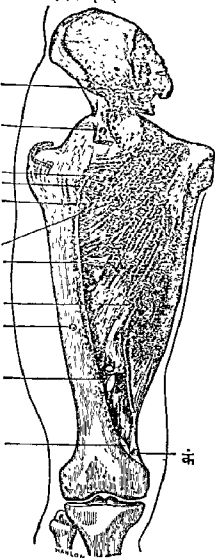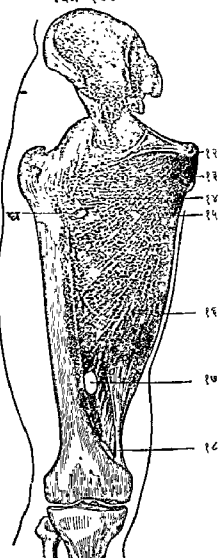
चित्र १४३ की व्याख्या

१ = जघनास्थि (Ilium)
२ = सरला और्वी की कंडरा (Tendon of Rectus femoris)
३ = श्रोणी गवाक्षिणी वहिस्था (Obturator externus)
४ = चतुरस्रा और्वी (Quadratus femoris)
५ = कटि लम्बिनी बृहती (Psoas major) की कण्डरा (कटी हुई)
६ = कंकतिका (Pectineus)
७ = ऊरु अन्तरनायनी दीर्घा (Adductor longus)
८ = ऊरु अन्तरनायनी गरिष्ठा (Adductor brevis)
९ = ऊर्वस्थि (Femur)
१० = धमनी छिद्र (Hiatus for artery)
११ = और्वी धमनी छिद्र (Hiatus for femoral artery)
कं० = ऊरु अन्तरनायिनी गरिष्ठा की कंडरा (Tendon of adductor magnus)

चित्र १४४ की व्याख्या

घ = धमनी छिद्र (Hiatus for artery)
१२ = भगास्थि (Pubis)
१३ = श्रोणी गवाक्षिणी वहिस्था (Obturator externus)
१४ = चतुरस्रा और्वी (Quadratus femoris)
१५ = ऊरु अन्तरनायनी लम्बी (Adductor brevis)
१६ = ऊरु अन्तरनायनी गरिष्ठा (Adductor magnus)
१७ = धमनी छिद्र (Hiatus for artery)
१८ = और्वी धमनी छिद्र (Hiatus for femoral artery)

	ओष्ठ का ऊपर का आधा भाग और बाह्य पेश्यान्तरिक परिच्छेद (lateral inter muscular septum)	से लगती है		
८—ऊरु प्रसारणी अन्तस्था (२) Vastus medialis चित्र १४१ में ११	शिखरान्तिरिका रेखा का नीचे का भाग; विश्लेषित तीरणिका का अन्तरीय ओष्ठ; पेश्यान्तरिक परिच्छेद	सरला की कंडरा से मिलकर जान्वस्थि और जानकोष से लगती है		
(६) ऊरु प्रसारणी मध्यस्था Vastus intermedius	ऊर्वस्थि के अगले और बाहरी भाग का $\frac{2}{3}-\frac{3}{4}$ अंश; विश्लेषित रेखा का बाह्य ओष्ठ	ऊपर की तीनों पेशियों के गम्भीर भाग से		
(१०) जानुका Articularis genu	ऊर्वस्थि का अगला पृष्ठ	जानु की संधि कला	जानु के फैलते समय सन्धि कला को ऊपर खींचना	काटिकी २, ३, ४ और्वी नाड़ी द्वारा

Adductor magnus चित्र १४१ में ३ चित्र १४४ में १६		के पास; विश्लेपित रेखा मय उपार्बुदिक रेखा के (Supra-condylar line) और अन्तर्नायिनी अर्बुद (Adductor tubercle)	घुमाना	काटिकी ४, ५ गृध्रस्या (Sciatic) नाड़ी द्वारा
(१६) नैतम्बिका महती Gluteus maximus चित्र १३९ में ४	जघनास्थि के नैतम्बिक पृष्ठ का पिछला भाग; त्रिक पृष्ठिका की कंडरा (Aponeurosis of Sacro-spinalis), त्रिक और चंचु (Coccyx) के पिछले पृष्ठ; त्रिक कुकुंदर बन्धन (Sacro tuberous lig.)	जघन-जंघा कला (Ilio-tibial tract), नैतम्बिक अर्बुद, बाह्य पेश्यो-तरिक कला	जाँघ को पसारना बाहर ले जाना और बाहर को घुमाना; जघन जंघा कला को खींचना	काटिकी ५ त्रिक १, २ अधो नैतम्बिक (Inferior gluteal) नाड़ी द्वारा
(१७) नैतम्बिका मध्यवस्या Gluteus medius चित्र १३९ में १४	जघनास्थि का नैतम्बिक पृष्ठ	महा शिखरक	अगला भाग जाँघ को झुकाता है और अन्दर को घुमाता है, पिछला भाग उसको बाहर को घुमाता है।	काटिकी ४, ५ त्रिक १ ऊर्ध्व नैतम्बिक (Superior gluteal) नाड़ी द्वारा
(१८) नैतम्बिका लघ्वी	जघनास्थि का नैतम्बिक पृष्ठ अगली	महा शिखरक	"	

Gluteus minimus चित्र १३९	और नीचे की रेखाओं के बीच से			का० ४, ५ त्रिक १
(१९) शुण्डिका Piriformis चित्र १३९	त्रिकास्थि के २, ३ ४ कशेरुकाओं के अगले पृष्ठ; कुकुंदर भंग (Greater sciatic notch) का ऊपर का किनारा	महा शिखरक	झुकी हुई जाँघ को बाहर ले जाना; फैली हुई जांघ को बाहर घुमाना	त्रिक १, २
(२०) श्रोणी गवाक्षिणी अन्तस्था Obturator internus चित्र १३९	गवाक्षीय कला (obturator membrane) का गह्वरया पृष्ठ (Pubic surface); गवाक्ष के किनारे	महा शिखरक का अन्तस्तल	,,	कटिकी ५ त्रिक १, २
(२१) यमलाऊर्ध्वस्था Gemellus Superior चित्र १३९	छोटे कुकुंदर भंग (Lesser sciatic notch) के किनारे	श्रोणी गवाक्षणी अन्तस्था के साथ	,,	श्रोणी गवाक्षणी अन्तस्था की नाडी (Nerve to obturator internus) का० ५ त्रि० १, २

(२२) यमला अधस्या Gemellus inferior चित्र १३९	”	”	”	चतुरस्रा औवीं की नाड़ी क० ४, ५, त्रिक १.
(२३) चतुरस्रा औवीं Quadratus femoris चित्र १३९	कुकुन्दर पिंड का बाहरी किनारा	चतुरस्रा अर्बुद और उसके नीचे की रेखा	जाँघ को मध्य रेखा की ओर लाना और बाहर को घुमाना	काटिकी ४, ५ और त्रिक १
(२४) श्रोणी गवाक्षिणी वहिस्या Obturator externus चित्र १४० में १५	गवाक्षिणी कला का औवीं पृष्ठ (Femoral surface) और आसपास की अस्थि	शिखरक खात	जाँघ को बाहर को घुमाना और उसको बाहर लाना और मोड़ना	काटिकी ३, ४ गवाक्षीया नाड़ी द्वारा
(२५) द्विशिरस्का औवीं Biceps femoris चित्र १३९ में ५	लम्बा शिर (Long head):—कुकुन्दर पिंड छोटा शिर (Short head) :—विश्लेपित तोरणिका का बाह्य ओष्ठ (Lateral lip of the lenea aspera); उपार्बुदिक रेखा	अनुजंघास्थि का शिर, (Head of fibula), जंघास्थि का बाह्य अर्बुद	टाँग को मोड़ना और बाहर को घुमाना; जाँघ को फैलाना	लम्बा शिर: त्रिक १, २, ३ छोटा शिर: काटि० ५ त्रि० १,

	का ऊपर का ३/४ भाग, बाह्य पंसान्तरिक परिच्छेद			
(२६) कंडरा कल्पा Semitendinosus चित्र १३९ में ६	कुकुन्दर पिंड	जंघास्थि के ऊपर के भाग का मध्य पृष्ठ	टांग को मोड़ना और अन्दर को घुमाना और जांघ को फैलाना	फा० ४,५ त्रि० १,२
(२७) कला कल्पा Semimembranosus चित्र १३९ में ११	कुकुन्दर पिंड	जंघास्थि के मध्यार्बुद के पिछले भाग का स्थान इत्यादि	,,	फा० ४, ५ त्रि० १

टांग की पेशियाँ (Muscles of leg)

(२८) अग्रजंघिका Tibialis anterior चित्र १२९ में ११	बाह्य अंतर्बुद (Lateral tibial condyle) और जंघास्थि के बाह्य पृष्ठ का ऊपरी ३/४ भाग	अन्तःनिपादिका (Medial cuneiform) का मध्य पृष्ठ और प्रथम प्रपादास्थि (1st. metatarsal) का अधोभाग	पैर को अन्दर को मोड़ना और ऊपर को घुमाना	फा० ४, ५

(२९) पादांगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा चित्र १२९ में ५ Extensor hallucis longus	अनुजंघास्थि के मध्य पृष्ठ का बीच का ½ भाग और अस्थ्यांतरिक कला (Interosseous membrane)	अंगुष्ठकी दूसरी अंगुल्यस्थि का अधोभाग	अंगुष्ठ को फैलाना और पैर को ऊपर को मोड़ना	का० ५ त्रि० १ गम्भीर विवर्तनी (anterior tibial) नाड़ी द्वारा
(३०) पादांगुली प्रसारणी दीर्घा चित्र १२९ में ११ Extensor digitorum longus	वाह्य जंघार्बुद; अनुजंघास्थि के मध्य पृष्ठ का बीच का ⅓ भाग	चारों अंगुलियों की २, ३ अंगुल्यस्थियां	अंगुलियों को फैलाना; पैर को ऊपर को मोड़ना	का० ५, त्रि० १ " "
(३१) पादविवर्तनी लघ्वी Peroneus tertius चित्र १२९ में १०	अनुजंघास्थि (Fibula) के मध्य पृष्ठ का बीच का ⅓ भाग, अस्थ्यांतरिक कला	पंचमी प्रपादास्थि का अधोभाग	पैर को ऊपर की ओर मोड़ना और तले को बाहर की ओर ले जाना	का० ५, त्रि० १
(३२) पिंचिंडिका महती; Gastrocnemius चित्र १३९में ९, १० चित्र १४५; १४६	वाह्य शिर:—उपार्बुदिक रेखा; जानुकोप मध्य शिर:—मध्या-	गुल्फास्थि का पिछला भाग	पैर फैलाना और (एँड़ी उठाना) जानु को मोड़ना	त्रि० १, २

(३३) पिंचिडिका, लम्बी Soleus चित्र १४६	वुंद के ऊपर से, अनुजंघास्थि का शिर और गात्र के ऊपर के ⅓ भाग का पिछला पृष्ठ; जंघास्थि का पिछला भाग	पिंचिडिका महती से मिल जाती हैं	" "	का० ५ चि० १,२
(३४) पिंचिडिका, विरला Plantaris	वाह्य उपार्बुदिक रेखा का नीचे का भाग	गुल्फास्थि का मध्यार्बुद	" "	का० ४,५ त्रि० १
(३५) जानु पृष्ठिका Popliteus	ऊर्वस्थि के वाह्यार्बुद के वाह्य पृष्ठ पर एक खात	जंघास्थि की जानु पृष्ठिका रेखा और उसके ऊपर का स्थान	टाँग को मोड़ना और उसको अन्दर को घुमाना	का० ४,५ त्रि० १
(३६) पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा Flexor hallucis longus	अनुजंघास्थि के पिछले पृष्ठ का नीचे का ⅔ भाग	अंगुष्ठ की दूसरी अंगुल्यस्थि का अधोभाग	पादांगुष्ठ को मोड़ना और पैर को फैलाना	का० ५ त्रि० १, २
पादांगुली	जंघास्थि के पिछले	चार कंडराओं द्वारा	अंगुलियों को झुकाना;	का० ५ त्रि० १,२

चित्र १४५

पादांगुष्ठ बहिर्नायिनी (Abductor hallucis)

m Sparke's Artistic Anatomy (Messrs. Bailliere, Tindall & Cox Lond.)

चित्र १४६

ऊरु प्रसारणी बहिस्था
(Vastus lateralis)
द्विशिरस्का ओर्वी
(Biceps femoris)
सरला ओर्वी
(Rectus femoris)
ऊरु प्रसारणी बहिस्था
(Vastus lateralis)
ओर्वी कला
(Fascia lata)
जान्वस्थि बंधन
(Lig. patellae)
द्विशिरस्का ओर्वी कण्डरा
(Tendon of Biceps femoris)
पिंचिंडिका महती बाह्य शिर
(Lateral head of gastrocnemius)
पाद विवर्तनी दीर्घा
(Peroneus longus)
पिंचिंडिका लघ्वी
(Soleus)
जंघा पुरोगा
(Tibialis anterior)
पादांगुली प्रसारणी दीर्घा
(Extensor digitorum longus)
पाद विवर्तनी ह्रस्वा
(Peroneus brevis)
पाद विवर्तनी लघ्वी
(Peroneus tertius).
पादविवर्तनीदीर्घा
(Peroneus longus)
पादांगुली प्रसारणी दीर्घा
(Extensor digitorum longus)
पाद विवर्तनी लघ्वी अन्त
(Peroneus tertius insertion)
पिंचिंडिका लघ्वी अन्त
(Soleus, insertion)
पादांगुली प्रसारणी ह्रस्वा
(Extensor digitorum brevis)
कनिष्ठा बहिर्नायनी
(Abductor digitiminimi)

संकोचनी दीर्घा Flexor digitorum longus	पृष्ठ का बीच का ३/४ भाग	अंगुलियों की अन्तिम अंगुल्यस्थियों से	पैर को सीधा करना	
(३८) जंघा पश्चिमगा Tibialis Posterior	अनुजंघास्थि के मध्य पृष्ठ का पिछला भाग; जंघास्थि के पिछले पृष्ठ का ऊपरी २/३ भाग; अस्थ्यान्तरिक कला	नौकाकृति का अर्बुद और प्रथमा त्रिकोण; गुल्फास्थि को छोड़कर शेष कूर्चास्थियों (Talus) से और २,३,४ प्रपादास्थियों के अधो भाग से	पैर को फैलाना और उसको अन्दर की ओर मोड़ना	त्रि० का० ४,५
(३९) पाद विवर्तनी दीर्घा Peroneus longus चित्र १४६	अनुजंघास्थि का शिर और उसके गात्र के वाह्य पृष्ठ का ऊपरी २/३ भाग; पेश्यान्तरिक परिच्छेद	प्रथम प्रपादास्थि का अधो भाग और प्रथम त्रिकोण	पैर को बाहर को मोड़ना और फैलाना	का० ५ त्रि० १ उपरितन विवर्तनी द्वारा नाड़ी (Musculo-cutaneous nerve)
(४०) पाद विवर्तनी ह्रस्वा Peroneus brevis चित्र १४६	अनुजंघास्थि के वाह्य पृष्ठ का नीचे का २/३ भाग	पंचमी प्रपादास्थि के अधोभाग का अर्बुद	"	"

(४१) पादांगुली प्रसारणी ह्रस्वा Extensor digitorum brevis चित्र १४७	पार्ष्णि (Calcaneum) का ऊपर का और बाह्य पृष्ठ	चार कंडरायें होती हैं पहली अंगुष्ठ को जाती है और पहली अंगुल्यस्थि के ऊर्ध्वभाग से लगती है शेष ३ कंडरायें दूसरी तीसरी चौथी अंगुलियों को जाती हैं और इन अंगुलियों सम्बन्धी अंगुली प्रसारणी दीर्घा की कंडराओं से मिल जाती हैं।	अंगुलियों के पोवों को फैलाना	का० ५ त्रि० १ गम्भीर विवर्तनी (Anterior tibial nerve) नाड़ी द्वारा
(४२) पादांगुष्ठ बहिर्नायिनी Abductor hallucis चित्र १४९	मध्य पार्ष्णि अर्बुद-पैर की कण्डरा कला इत्यादि	अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि के अधोभाग का मध्य पार्श्व	अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि को मोड़ना (तले की ओर) और उसको मध्य रेखा की तरफ खींचना	का० ५ त्रि० १ मध्य पादतली का (Medial plantar nerve) नाड़ी द्वारा

(४३) पादांगुली संकोचनी ह्रस्वा Flexor digitorum brevis चित्र १४८, १४९	मध्य पार्ष्णि अर्बुद	४ कंडरायें होती हैं और २, ३, ४, ५वीं अंगुलियों को जाती हैं; पहली अंगुल्यस्थि के सन्मुख हर एक कंडरा की दो शाखा हो जाती हैं इन दोनों शाखाओं के बीच में से होकर अंगुली संकोचनी दीर्घा की शाखा आगे जाती है यह दोनों शाखायें मिल जाती हैं और कुछ दूर आगे चलकर फिर दो भागों में विभक्त होती हैं और दूसरी अंगुल्यस्थि के पार्श्वों से जा लगती हैं	दूसरी अंगुल्यस्थि को पहली पर झुकाना और फिर पहली अंगुल्यस्थियों को झुकाना और अंगुलियों को पास ले जाना	का० ५ त्रि० १, २ मध्य पादतलीका (medial plantar nerve) नाड़ी द्वारा
(४४) कनिष्ठा बहिर्नायिनी Abduc-	पार्ष्णि के मध्य और बाह्यअर्बुद इत्यादि	पंचमी अंगुली की पहली अंगुल्यस्थि के	पहली अंगुल्यस्थि को झुकाना और उसको	त्रि० १, २ बाह्य पादतली-

tor digiti minimi चित्र १४८		अधो भाग का बाह्य पार्श्व	बाहर की ओर लाना	का (lateral plantar nerve) नाड़ी द्वारा
(४५) पाद चतुस्रा (Flexor digitorum accessorius) चित्र १४९	मध्यशिर :—पार्ष्णि का नतोदर मध्य पृष्ठ; बाह्यशिर:—पार्ष्णि के बाह्यार्बुद के सामने से	अंगुली संकोचनी दीर्घा की बाह्य धारा और निम्न पृष्ठ	अंगुली संकोचनी दीर्घा का सहायक	त्रिक १, बाह्य पादतलीका नाड़ी द्वारा
(४६-४९) पाद कृमिका Lumbricales चित्र १४९	(१) अंगुली प्रसारणी दीर्घा की पहली कंडरा की मध्य धारा (२) पहली और दूसरी कंडरा की सन्नकृष्ठ धाराओं से (३) दूसरी, तीसरी कंडराओं की सन्नकृष्ठ धाराओं से	इन पेशियों की कंडरायें अंगुली प्रसारणी दीर्घा की कंडराओं के फैले हुए भाग से जो पहली अंगुल्यस्थि के ऊपर रहता है मिल जाती हैं	पहली अंगुल्यस्थि को मोड़ना और दूसरी तीसरी को सीधा करना	पहली कृमिका-का० ५ त्रि० १ मध्य पादतलीका नाड़ी द्वारा; शेष = त्रि० १, २ बाह्य पादतलीका नाड़ी द्वारा

	(४) तीसरी चौथी कडराओं से			
(५०) पादांगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा Flexor hallucis brevis चित्र १४९, १५०	घनास्थि के पादतलिक पृष्ठ का मध्य भाग इत्यादि	पेशी के दो भाग हो जाते हैं मध्य और बाह्य मध्य भागः—अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि के अधोभाग का मध्य पार्श्व बाह्य भाग :—उसी अस्थि का बाह्य पार्श्व; इसकी कंडरा में कंडराचणक (Sesamoid) अस्थियां रहती हैं	अंगुष्ठ को मोड़ना	का० ५ त्रि० १ मध्य पादतलीका नाड़ी द्वारा
(५१) पादांगुष्ठ अन्तर्नायिनी Adductor hallucis चित्र १५०	तिर्छा शिराः—२, ३, ४थी प्रपादास्थि का अधोभाग और पादविवर्तनी दीर्घा का	पहली अंगुल्यस्थि के अधोभाग का बाह्य पार्श्व	अंगूठे को मोड़ना और अन्दर को लाना, व्यत्यस्त भाग सब अंगुलियों को एकत्रित	त्रि० १,२ बाह्य पादतलीका नाड़ी द्वारा

चित्र १४७, पैर की पेशियाँ
(Muscles of dorsum of foot)
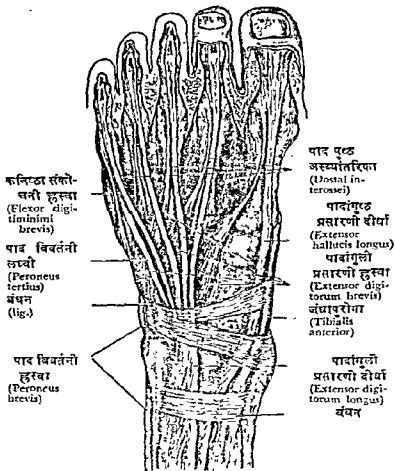
From Morris's Human Anatomy

चित्र १४८ पादतल, पहली तह (First layer of sole)
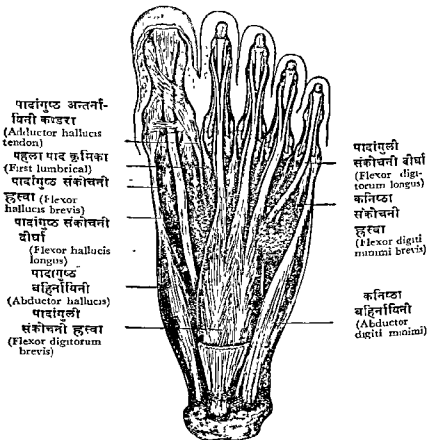
From Morris's Human Anatomy

चित्र १४९ पादतल की दूसरी तह (Second layer of sole)
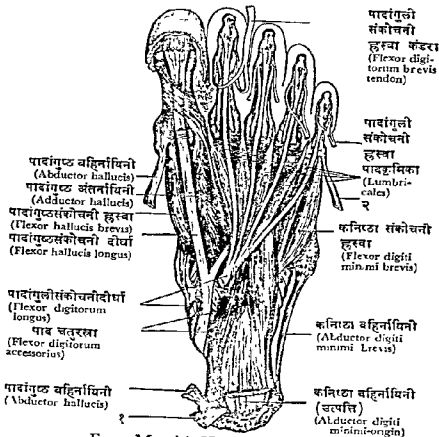
From Morris's Human Anatomy

१. पादांगुली संकोचनी ह्रस्वा (Flexor digitorum brevis)
२. कनिष्ठा वहिर्नायिनी (Abductor digiti minimi)

चित्र १५० पादतल की तीसरी तह (Third layer of sole)
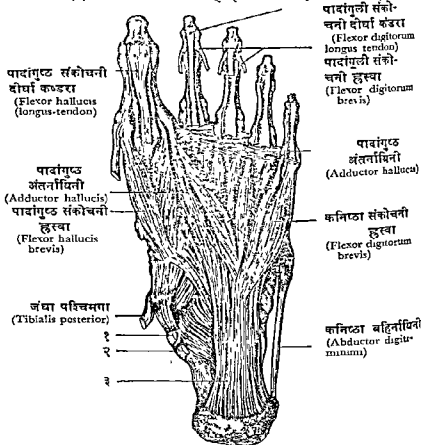
From Morris's Human Anatomy

१. पादांगुली संकोचनी दीर्घा (Flexor digitorum longus)
२. पादांगुष्ठ सकोचनी दीर्घा (Flexor hallucis longus)
३. बंधन (Long plantar lig.)

चित्र १५१ पादतल की चौथी तह
(Fourth layer of sole)
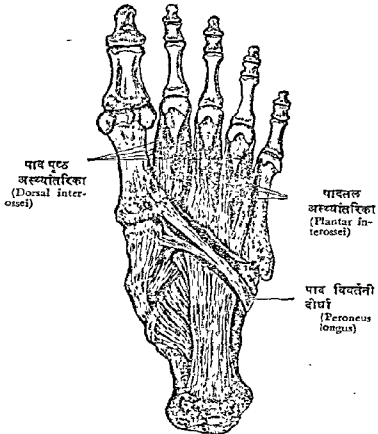
From Morris's Human Anatomy

	सौत्रिक कोष व्यत्यस्त शिरः— पादतल के कुछ बन्धनों से		करता है।	
(५२) कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा Flexor digiti minim brevis चित्र १४९	५वीं प्रपादास्थि के अधोभाग के नीचे से और पादविवर्तनी दीर्घा के सौत्रिक कोष से	कनिष्ठा की पहिली अंगुल्यस्थि के बाह्य भाग का पार्श्व		त्रि० १, २ बाह्य पादत- लीका नाड़ी द्वारा

पादअस्थ्यांतरिका (Interossei)

यह सात हैं ३ पादतल में और ४ पाद पृष्ठ में

(५२-५५) पादतल अस्थ्यांतरिका Plantar interossei चित्र १५१	३, ४ ५वीं प्रपादास्थियों के निम्न पृष्ठ	३, ४, ५वीं अंगुलियों की पहली अंगुल्यस्थियों का अधो भाग और प्रसारणी पेशी की कंडरा	पहली अंगुल्यस्थियों को मोड़ना और २, ३री को फैलाना और ३, ४, ५वी अंगुलियों को दूसरी अंगुली की ओर लाना	त्रि० १, २ बाह्य पादत- लीका नाड़ी (गम्भीर शाखा) द्वारा

(५९-५९) पादपृष्ठ अस्थ्यन्तरिका Dorsal interossei चित्र १५७ चित्र १५१	पक्षाकार (Bipinnate) होती हैं और २ सिरा द्वारा प्रपादास्थियों के सन्निकृष्ट धाराओं द्वारा निकलती हैं	पहली अंगुल्यास्थि का अधो भाग और अंगुली प्रसारणी पेशी की कंडरा इस प्रकार:—प्रथमा-दूसरी की मध्य धारा; शेष तीन—२, ३, ४थी अंगुल्यों की बाह्य धारा	अंगुलियों को दूसरी अंगुली में से होती हुई कल्पित रेखा से परे हटाना; पहली पेशी दूसरी अंगुली को अंगूठे की ओर ले जाती है दूसरी पेशी दूसरी अंगुली को कनिष्ठा की ओर ले जाती है; इसी तरह तीसरी चौथी। पहली अंगुल्यस्थि को झुकाना और दूसरी तीसरी को फैलाना	त्रि० १, २, बाह्य पादतलीया नाडी (गंभीर शाखा) द्वारा।

अध्याय ८

वसा (Fat)

बाहु के छेदन (Dissection) से आपको ज्ञात हो चुका है कि मास के ऊपर और त्वचा के नीचे एक पीली चिकनी वस्तु रहती है जिसको वसा या चर्बी कहते हैं। केवल तीन स्थानों को छोड़कर त्वचा के नीचे हर जगह वसा रहती है। जिन स्थानो में वसा नही पाई जाती वे ये हैं--पलक, अंडकोष और शिश्न (Penis)। वसा और बहुत से स्थानों में भी रहती है जैसे लम्बी अस्थियो के गात्रो (Shafts) की मज्जा (Marrow) में, उदर में, मांस पेशियों के बीच में। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो में अधिक वसा रहती है। जिन मनुष्यों में वसा कम होती है उनके शरीरों में कई जगह गढे दिखाई दिया करते जैसे अक्षक अस्थियो के ऊपर और नीचे और गालों में जो पिचके हुए मालूम होते हैं। जब वसा अधिक होती है तो छाती और चेहरा भरे हुए दिखाई देते हैं। दुबले मनुष्यो में कई अस्थियाँ त्वचा में उभरी हुई दिखाई देती हैं जो मोटे मनुष्य में वसा से खूब ढके रहने के कारण नही दिखाई देती। शरीर में कई जगह वसा की गद्दियाँ होती हैं जिन पर कोमल अंग रक्खे रहते हैं। अक्षिगोलक (Eyeball) के चारो ओर वसा रहती है, वृक्क (गुर्दा) (Kidney) वसा की गद्दी पर रक्खा रहता है, हथेलियों और तलुओ में भी वसा की गद्दियाँ होती हैं।

उष्णता का अच्छा चालक न होने के कारण वसा शरीर के ताप

परिमाण को स्थिर रखने में सहायता देती है। वह अधिक गर्मी और सर्दी दोनों से शरीर की रक्षा करती है। उन मनुष्यों के शरीर जो परिश्रम कम करते हैं और भोजन अधिक खाते हैं (विशेष कर ऐसे पदार्थ जिनसे अधिक वसा बनती है जैसे घी, चावल, शक्कर आदि) बहुत स्थूल हो जाते हैं। परिश्रम से वसा का व्यय होता है। जब व्यय कम होता है और वसा अधिक बनती है तो वह शरीर में इकट्ठी होने लगती है। सबसे पहले वह त्वचा के नीचे इकट्ठी होती है और तब शरीर को स्थूल बनाती है। फिर विशेष अंगों में जैसे उदर के भीतर, ठोड़ी के नीचे, गालों में चूतड़ों में इकट्ठी होती है। अधिक वसा के कारण पेट आगे को उभर आता है, चूतड़ बहुत मोटे हो जाते हैं, एक ठोड़ी की जगह दो ठोड़ियाँ दिखलाई देने लगती है, गाल फूल कर कुप्पा हो जाते हैं। हृदय जैसे अति आवश्यक और कोमल अंगों में अधिक वसा के रहने से उनके कार्य में फर्क आ जाता है। ऐसे मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

सामान्यतः शरीर के भार के प्रति १०० भागों में १८ भाग वसा के होते हैं।

त्वचा (Skin)

त्वचा से हमारा समस्त शरीर ढका हुआ है, उसके नीचे वसा रहती है। त्वचा अपने नीचे की कोमल चीजों की रक्षा करती है। यही नहीं यह हमारी स्पर्शेन्द्रिय (Organ of touch) भी है, इसके द्वारा हमको सर्दी और गर्मी का ज्ञान होता है। इसमें बालों की जड़ें रहती है और अंगुलियों में इससे नाखून भी निकलते हैं। त्वचा में कई प्रकार की छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ (Glands) भी होती हैं इनमें पसीना

बनता है, दूसरे प्रकार की ग्रन्थियों से एक तैलवत् चीज बनती है जो त्वचा और बालों को चिकना बनाती है। त्वचा में बहुत से छोटे-छोटे छिद्र (Pores) होते हैं, पसीना इन्हीं छिद्रों में से निकला करता है।

त्वचा का रंग सब जातियों में एक-सा नहीं होता। शीत-प्रधान देश-निवासियों की त्वचा का रंग ग्रीष्मप्रधान देश निवासियों के रंग से उजला (गोरा) होता है। उत्तर यूरोप और काश्मीर वालों का रंग गोरा होता है, दक्षिण भारतवर्ष और अफ्रीका वालों का रंग काला (श्याम) होता है। चीनियों और जापानियों का रंग पीला-सा होता है।

त्वचा की मोटाई शरीर के सब स्थानों में एक-सी नहीं होती। जहाँ उस पर अधिक दबाव पड़ता है वहाँ वह मोटी होती है; हथेलियों, तलुओं और पीठ की त्वचा और स्थानों की त्वचा से अधिक मोटी होती है; पलकों, अण्डकोष और शिश्न की त्वचा बहुत पतली होती है। पुरुषों की त्वचा स्त्रियों की त्वचा से अधिक मोटी होती है। त्वचा की मोटाई १/८० से १/६ इंच तक होती है।

शरीर के भार के १०० भागों में ८ भाग त्वचा के होते हैं। त्वचा की सूक्ष्म रचना अध्याय १३ में लिखी जायगी।

अध्याय ६

रक्त (Blood)

जब अंगुली में सूई चुभती है या शरीर का कोई भाग कहीं से कट जाता है तो एक गहरे लाल रंग का तरल निकलने लगता है—यह रक्त या रुधिर (खून) है।

रक्त के द्वारा हमारे समस्त शरीर का पोषण होता है। जल की अपेक्षा उसका गुरुत्व (Specific gravity) अधिक होता है। जल का गुरुत्व १००० माना जाय तो उसका १०५५ के लगभग होगा अर्थात् यदि एक गिलास जल का भार १००० तोले हो तो उतने ही रक्त का भार १०५५ तोले होगा। रक्त अपारदर्शक (Opaque) होता है, जल की भाँति उसमें से प्रकाश की रेखाएँ नहीं गुज़र सकतीं। उसका स्वाद कुछ नमकीन होता है। शरीर के भीतर उसका ताप-परिमाण १००° दरजे फार्नहाइट[1] या ३६.८° दर्जे शतांश होता है। रोगों में यह ताप-परिमाण घट बढ़ जाता है। ज्वरों में १००° से बढ़कर १०६°—१०७° फा० और कभी-कभी इससे भी अधिक हो जाता है। प्रत्येक प्राणधारी के ताजे रक्त से एक विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है।

शरीर से निकलने के पश्चात् रक्त तरल (Liquid) नहीं रहता, वह गाढ़ा होने लगता है और शीघ्र ही लुआबदार (Viscid) हो जाता है। यदि आप रक्त को एक बरतन में रख दें तो कुछ समय

---

१. फार्नहाइट और शतांश—ये दो प्रकार के तापमापक यंत्र हैं।

बीतने पर वह जम (Coagulate) जायगा; ऐसा प्रतीत होगा कि सब का सब ठोस हो गया है। परन्तु वास्तव में ऐसा नही होता : यदि वर्त्तन कुछ देर के लिये अलग रख दिया जाय तो उसमें एक लाल छिछड़ा (Clot) पीले से पानी पर तैरता हुआ दिखाई देगा; छिछड़ा वर्त्तन से यही चिपट जाय तो पीला पानी उसके ऊपर आ जायगा। जमने के पश्चात् जो यह पीला पानी बना उसका नाम रक्तरस-सीरम (Serum) है। यदि आप छिछड़े को बाहर निकाल

चित्र १५२ फाइब्रिन (Fibrin) का जाल
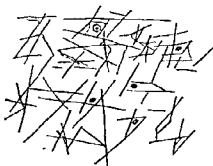
लें और उसको जल से धोवें तो कुछ देर पीछे उसका लाल रंग धुल जायगा और आप के हाथ में एक श्वेत वस्तु रह जायगी। ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि यह वस्तु सूक्ष्म तारों से बनी हुई है; उसके एक सूक्ष्म अंश की अणुवीक्षण से परीक्षा की जाय तो उसकी रचना ऐसी दिखाई देगी जैसी कि चित्र १५२ में दिखाई गई है। छिछड़ा अति सूक्ष्म तारों से बना है; तारों के परस्पर

संयोग से एक जाल बन जाता है जिसके छिद्रों में कुछ गोल गोल चीजें फँसी रहती हैं—ये रक्त की सेलें या रक्तकण (Blood corpuscles) हैं । जिस पदार्थ के ये तार बने होते हैं उसको फाइब्रिन[1] (Fibrin) कहते हैं । रसायन विद्या के अनुसार फाइब्रिन एक भाँति की प्रोटीन[1] (Protein) है।

रक्त के संयोगी-तत्त्व (Components) (रक्त का संगठन)

रक्त के दो भाग होते हैं :—

१. तरल भाग जिसका नाम रक्तवारि या प्लाज्मा[1] (Plasma) है ।

२. सेलें जो रक्तकण कहलाती हैं, रक्तकण रक्तवारि में तैरते हैं । रक्त के १०० भागों में ६० से ६५ भाग रक्तवारि के और ३५-४० भाग कणों के होते हैं ।

रक्तवारि (Plasma)

विशेष साधनों से यंत्रों द्वारा रक्तवारि कणों से अलग किया जा सकता है। वह हलके पीले रंग का तरल होता है जिसमें कण तैरा करते हैं । उसका गुरुत्व १०२६ से १०२९ तक होता है १०० भागों में ९० भाग जल (जो उदजन (Hydrogen) और ओषजन Oxygen) गैसों[3] का यौगिक है) के होते हैं; शेष दस भाग उन रासायनिक वस्तुओं के होते हैं जो उस जल में घुली रहती हैं, जैसे:—

१, २. अँगरेजी भाषा का शब्द है ।

३. गैस (अँगरेजी भाषा) = वायव्य ।

१. प्रोटीनें—रक्त में तीन प्रकार की प्रोटीनें होती हैं जिनमें से एक को फाइब्रिनजनक (Fibrinogen) कहते हैं।

२. वसा या चरबी।

३. अंगूरी शकर या द्राक्षौज (Glucose) (शकरें कई प्रकार की होती हैं जैसे अंगूरी शकर जो अंगूरादि मिष्ट फलों में पाई जाती हैं; गन्ने की शकर; खट्टे फलों की शकर; दुग्ध की शकर, माल्टीय शकर (Malt sugar)। इन सब शकरों में केवल तीन ही मूलतत्व पाये जाते हैं—कर्बन (Carbon), उदजन और ओषजन—परन्तु इनका संयोग किसी विशेष शकर में विशेष रीति से होता है।

४. शर्कराजन या ग्लाइकोजन (Glycogen)। इस वस्तु से रासायनिक परिवर्तन द्वारा अंगूरी शकर बन सकती है।

५. साधारण लवण (Salt) (जो हम रोज खाते हैं) और अन्य कई प्रकार के लवण।

६. ओषजन, कर्बनद्विओषित (CO_2) और नत्रजन (Nitrogen) गैसें।

७. यूरिया (Urea), यूरिक अम्लादि (Uric acid) पदार्थ। ये शरीर में हर समय बनते रहते हैं और मूत्र, पसीने द्वारा शरीर से बाहर निकलते हैं।

८. अनेक प्रकार की विषनाशक (Antitoxic) प्रति विष (Anti toxin) और (शरीर के) शत्रुघातक वस्तुएँ।

जमने पर (थक्का बँधने पर) रक्त में क्या परिवर्तन होता है।

रक्त की तीन प्रोटीनों में से एक फाइब्रिनजनक कहलाती है। यह घुलनशील होती है और रक्तवारि में घुली रहती है। जब रक्त जमता है तो इस प्रोटीन में एक परिवर्तन होता है जिसके कारण वह

अनघुल बन जाती है। इस अनघुल वस्तु को फाइब्रिन कहते हैं। घुलनशील न होने के कारण यह वस्तु रक्तवारि से बाहर निकल आती है। इसका रक्तवारि से अलग होना ही रक्त के जमाव का कारण है।

रक्तवारि (Plasma) और रक्तरस (Serum) में भेद

रक्तवारि रक्त के उस तरल भाग को कहते हैं जिसमें वे सब चीजें घुली हों जो रक्त में घुली रहती हैं; किसी प्रकार की नवीनता न हुई हो; कणों को छोड़कर रक्त का शेष भाग रक्तवारि है।

रक्तरस उस तरल भाग को कहते हैं जो फाइब्रिन नामक प्रोटीन के अनघुल बनकर बाहर निकल जाने के पश्चात् बाकी रहता है।

यह समझना चाहिए कि जमने के समय रक्तवारि के दो भाग हो जाते हैं—रक्तरस और फाइब्रिन। फाइब्रिन से जिसके जाल में कुछ कण फँसे रहते हैं छिछड़ा बनता है :—
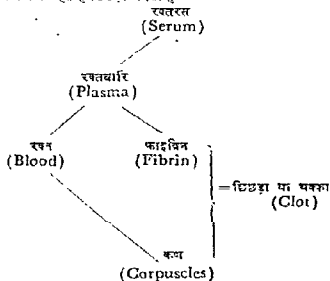
रक्त को शीघ्र जमाने वाले और उसके जमाव में विलम्ब डालने वाले कारण:—

वैसे तो रक्त शरीर से निकलने के पश्चात् शीघ्र जम ही जाता है परन्तु विशेष साधनों से इसका जमाव कुछ समय तक रोका जा सकता है और कई एक साधन ऐसे भी हैं जिन से जमाव बहुत ही शीघ्र हो सकता है :—

(१) अधिक उष्णता से रक्त जल्दी जमता है; ५६°–५७° शतांश का ताप (यह शरीर के ताप से कोई २० दर्जे अधिक होता है) उसको तुरन्त ही जमा देगा। शीत के प्रभाव से वह देर में जमता है; यदि बर्तन को बरफ से ठंडा करें तो रक्त १ घंटे या इससे अधिक देरी तक भी न जमेगा।

(२) खटिक योगिकों (Calcium compounds) (चूना, पत्थर, खड़िया, मिट्टी आदि) के मेल से रक्त शीघ्र जम जाता है। कई जगह ऐसा रिवाज है कि जब चोट लगने के कारण शरीर से रक्त निकलने लगता है तो रक्त को बन्द करने के लिए पत्थर पीसकर लगा देते हैं। रक्त का बहना शीघ्र बन्द हो जाता है। खटिक योगिकों (सम्मेलनों) के अतिरिक्त और बहुत सी चीजें ऐसी हैं जो उसको शीघ्र जमा दें।

कई एक रासायनिक वस्तुएँ ऐसी भी हैं जो उसको शीघ्र न जमने दें जैसे सोडियम सिट्रेट (Sodium citrate) नामक लवण।

(३) चिकने वर्तन में रक्त देर में जमता है। यदि रक्त वाले वर्तन को हम खूब हिलायें या रक्त को लकड़ी या किसी और कड़ी और खुरदरी चीज से चलावें तो वह शीघ्र जम जावेगा।

आरोग्यता में रक्त शरीर के भीतर अपने आप नहीं जमता परन्तु कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो शरीर के भीतर पहुँच कर उसको नालियों में जमा देती हैं जैसे—न्यूक्लियो प्रोटीन (Nucleo protein)। सर्प विष (Snake venom) का भी रक्त के जमाव पर एक विशेष असर होता है; किसी श्रेणी के सर्प के विष में रक्त को शीघ्र जमाने वाली वस्तुएँ अधिक होती हैं; किसी में उसके जमाव में विलम्ब डालने वाली।

टाइफ़ायड (Typhoid) ज्वर में रक्त में जल्दी और शरीर के भीतर जमने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

(५) जोंक (Leech) के सिर में कई छोटे-छोटे थूक बनाने-वाले यंत्र (ग्रन्थियां) होते हैं। इस रस में यह गुण है कि जब वह रक्त में मिल जाता है तो रक्त शीघ्र नहीं जमता। जब जोंक रक्त चूसती है तो यह रस उस जगह फैल जाता है जहाँ उसने अपना मुँह घुसा रक्खा है। यदि यह रस न हो तो रक्त उसके मुँह में जम जाय और उसको निगलने में कठिनता हो। जब जोंक त्वचा से हटा दी जाती है तो रक्त का बहना शीघ्र बन्द नहीं होता क्योंकि उसके जमाव में विलम्ब डालने वाली वस्तु वहाँ मौजूद है। जब यह स्थान खूब धो दिया जाता है तो रक्त जम जाता है और वहाँ से रक्त का बहना बन्द हो जाता है। कभी-कभी रक्त के बहाव को बन्द करने के लिए रक्त जमानेवाली औषधि के लगाने की आवश्यकता होती है।

मृत्यु के पश्चात् रक्त की दशा

मृत्यु के पश्चात् रक्त जम जाता है, साधारणतः मृत्यु के कोई ४ घटे पीछे रक्त जमना आरम्भ होता है। जिन नलियों में वह जीवित अवस्था में रहता है वह मृत्यु से पश्चात् बहुधा (विशेष कर शुद्ध रक्त वाली) खाली मिलती हैं, केवल कहीं-कहीं उनमें थोड़ा सा रक्तरस और कुछ छिछड़े पाये जाते हैं। रक्तरस का अधिक भाग इन नलियों की दीवारों में से चू कर गुरुत्वाकर्षण (Gravity) के कारण शरीर के उन भागों में इकट्ठा हो जाता है जो सब से नीचे होते हैं, मुर्दा पीठ के बल पड़ा हो तो अधिक रक्तरस के इकट्ठा होने के कारण उसकी पीठ और कमर पिलपिली हो जाती हैं। रक्तकण टूट जाते हैं, लाल कणों (R. B. C) का रंग रक्तरस में घुल जाता है जिससे उसका रंग लाल हो जाता है। मुर्दे के पिलपिले भागों को काटने से जो लाल तरल निकलता है वह लाल रक्तरस होता है न कि असली रक्त।

समस्त शरीर में रक्त कितना होता है

कुल रक्त का भार शरीर के भार का $\frac{1}{13}$ अंश के लगभग होता है। जिस मनुष्य का भार एक मन बीस सेर है, उसके शरीर में ३ सेर के लगभग रक्त होगा।

रक्त की सेलें (रक्त कण) (Blood corpuscles)

रक्त में तीन प्रकार की सेलें या कण पाये जाते हैं:—

(१) लाल रक्तकण (रक्ताणु) (Red blood corpuscles)

(२) श्वेत या विवर्ण रक्तकण (श्वेताणु) (White blood) corpuscles)

(३) सूक्ष्म रक्तकण (Blood platelets)

लाल रक्त कण (रक्ताणु) (R. B. C.) (चित्र १५४)

लाल सेलों की संख्या श्वेत सेलों से बहुत अधिक होती है। उनका आकार गोल (Spherical) होता है परन्तु वे दोनों तरफ से कुछ पिचकी हुई होती हैं (जैसे रबड़ की गेंद को दो तरफ से अंगुलियों से दबाकर पिचका दें)। दोनों ओर से पिचके रहने के कारण कण की शक्ल कुछ-कुछ चक्री (Disc) जैसी हो जाती है। प्रत्येक कण की मोटाई $\frac{१}{१२०००}$ इंच और चौड़ाई अथवा लम्बाई $\frac{१}{३२००}$ इंच होती है। रक्त का रंग इन्हीं कणों के कारण लाल होता है। एक घन सहस्रांश मीटर[१] (one cubic milimeter) (जो एक बूँद के साठवें अंश के बराबर होता है) रक्त में इनकी संख्या पुरुषों में पचास लाख और स्त्रियों में पैंतालीस लाख के लगभग होती है, नवजात शिशु में संख्या ६० लाख होती है। एक घन सहस्रांश मीटर $\frac{१}{१६३८७}$ घन इंच के बराबर होता है; इस हिसाब से १ घन इंच रक्त में (एक इन्च लम्बे, एक इंच चौड़े और एक इंच ऊँचे बर्तन भर रक्त में) ८१,९००,०००,००० लाल कण होते हैं। जिस मनुष्य का भार १$\frac{१}{२}$ मन है, उसके रक्त में १$\frac{१}{२}$

---

१. फ्रांस देश का लम्बाई नापने का पैमाना मीटर (meter) कहलाता है। एक मीटर ३९·३७ इंच के बराबर होता है; एक गज से कुछ बड़ा समझिये। मीटर के दसवें भाग को दशांशमीटर (Decimeter); सौवें भाग को शतांशमीटर (Centimeter) और हजारवें भाग को सहस्रांशमीटर (Millimeter) कहते हैं।

एक सहस्रांशमीटर = $\frac{१}{२५}$ इंच (लगभग)

एक शतांशमीटर = $\frac{२}{५}$ इंच

एक दशांशमीटर = ४ इंच

पदम के लगभग लाल कण होते हैं; यह एक केवल अनुमान है, इसमें करोड़ों का फ़र्क हो सकता है। एक लाल कण का भार $\frac{१}{१००००००००००}$ माशा होता है या यह समझो कि १० अरब लाल कणों का भार एक माशे के लगभग होता है। लाल कण का क्षेत्रफल ·०००००२ वर्ग इंच और घनफल ·००००००००००००४४ घन इंच होता है। यदि १½ पदम लाल कण एक स्थान में पास-पास रख दिये जावें (जो असंभव है) तो वे २३०० वर्ग गज़ स्थान घेरेंगे। इन अंकों से आप लाल कणों की सूक्ष्मता का कुछ अन्दाजा लगा सकते हैं। बिना अणुवीक्षण के उन्हें कोई कैसे देख सकता है ?

अलग-अलग कणों का रंग पीला-सा होता है परन्तु जब बहुत से कण इकट्ठे और एक-दूसरे के ऊपर पड़े हुए देखे जाते हैं तो रंग लाल दिखाई देता है, यह एक भौतिक घटना (Physical phenomenon) है।

स्तनधारी (Mammals) अर्थात् दुग्ध पिलानेवाले प्राणियों (जैसे मनुष्य, घोड़ा, गाय, बकरी, कुत्ता आदि) के लाल कणों में मींगी नहीं दिखाई देती। पृष्ठ वंशधारियों[1] (Vertebrates) की शेष श्रेणियों के रक्त लाल कणों में मींगियाँ होती हैं [जैसे पक्षी श्रेणी, कबूतर, चील, तोता; सर्पश्रेणी, सर्प, छिपकली, कछुआ; मण्डूकश्रेणी

विज्ञान में नापने के लिये मीटर और उनके अंशों का प्रयोग होता है, गज और इंच बहुत काम में नहीं आते।

१. प्राणी वर्ग (Animal kingdom) के दो विभाग हैं :—

(१) पृष्ठवंशविहीन (Invertebrates) विभाग (इस विभाग के प्राणियों में रीढ़ नहीं होती जैसे अमीबा, केंचुवा, घोंघा, मक्खी इत्यादि)

(जल और भूमि दोनों जगह रहनेवाले प्राणी) मेंडक; मत्स्यश्रेणी जैसे मछली] देखो चित्र १५३

स्तनधारियों के लाल कणों में मींगी न होने के कारण उनके रक्त को हम और प्राणियों (मेंडक, मछली, पक्षी इत्यादि) के रक्त से पहचान सकते हैं। यह तो नहीं बतला सकते कि यह रक्त मछली का है

चित्र १५३ मेंडक के रक्त के मींगीदार (Nucleated) अण्डाकार लाल कण

(२) पृष्ठवंशधारी विभाग (Vertebrates) (इस विभाग के प्राणियों में रीढ़ होती है) इस विभाग में पांच श्रेणियां हैं।

१. मत्स्य श्र० (मछली) (Piscidia)
२. मंडूक श्रे० (मेंडकादि) (Amphibia)
३. सर्प श्रे० (सर्प, छिपकली आदि) (Reptilia)
४. पक्षी श्रे० (कबूतर चिड़िया) (Aves)
५. स्तनधारी श्रे० (Mammalia) (अपनी छाती से अपनी संतान को दुग्ध पिलाने वाले प्राणी जैसे घोड़ा, गाय, बकरी, वानर, चाम चिड़िया, ह्वेल मछली, न्योला, मनुष्य)

या किसी चिड़िया का या सर्प का, परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह रक्त दुग्ध पिलाने वाले प्राणी का है या नहीं।

स्तनधारियों में केवल ऊँट की श्रेणी के प्राणियों को छोड़कर और सबों के लाल कण दोनों तरफ से चिपके हुए अर्थात् युगलनतोदर (Biconcave) होते हैं। ऊँट की श्रेणियों के जानवरों के लाल कण दोनों ओर से उभरे हुए अर्थात् युगलोन्नतोदर (Biconvex) होते हैं।

स्तनधारियों को छोड़कर अन्य जितने रीढ़दार प्राणी हैं (मछली, मेंढक, पक्षी इत्यादि) उन सबों के लाल कण मींगीदार अंडाकार और युगलोन्नतोदर होते हैं। मनुष्य के लाल कण चक्रियों की भाँति गोल परन्तु दोनों तरफ से पिचके हुए और मींगी रहित होते हैं।

गर्भ में चतुर्थ मास तक जितने लाल कण भ्रूण के शरीर में बनते हैं उन सबों में मींगी होती है। इस कारण इस समय के रक्त को और जीवधारियों (जैसे पक्षी) के रक्त से पहिचानना कठिन है। चौथे मास के पश्चात् जितने लाल कण बनते हैं उनमें मींगी नहीं होती और जिनमें थी उनमें से भी जाती रहती है।

लाल कणों में एक रंग होता है जिसको रक्तग्लोबिन या कणरञ्जक (Haemoglobin) कहते हैं। जब लाल कण टूटते हैं तो यह रंग रक्तवारि या सीरम में घुल जाता है। कणरञ्जक एक प्रकार की प्रोटीन है। इस प्रोटीन में कर्बन, ओषजन, उदजन, गन्धक, नत्रजन के अतिरिक्त लोहा भी होता है। मलेरिया ज्वर में इस रोग को उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जन्तु इन कणों के भीतर घुस जाते हैं और उनका

विनाश करते हैं। बहुत से कणों के टूटने से उनकी संख्या कम हो जाती है, संख्या कम होने से रक्त का रंग हल्का हो जाता है और मनुष्य का चेहरा पीला-सा पड़ जाता है और नाखून सफेद दिखाई देने लगते हैं।

श्वेत या विवर्ण कण (श्वेताणु)
(Leucocytes) (चित्र १५५)

इन कणों का रंग जल के रंग के सदृश होता है, इसी कारण ये विवर्ण कहलाते हैं; ये कण लाल कणों से कुछ बड़े होते हैं। इनमें मींगियाँ होती हैं जो विविध रूपों की होती हैं। किसी में गोलाकार, किसी में जूते की नाल की भाँति मुड़ी हुई और किसी में उसके कई छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं जो एक-दूसरे से सूक्ष्म तारों द्वारा जुड़े रहते हैं।

एक बूँद के साठवें भाग में अर्थात् एक घन सहस्रांश मीटर रक्त में ये ७००० से १०००० तक पाये जाते हैं। ५०० या ६०० लाल कणों के पीछे एक श्वेताणु होता है। काला अज़ार ज्वर (यह रोग आसाम, बंगाल, मद्रास प्रान्तों में अधिक होता है, संयुक्त प्रान्त और पंजाब में कम) में इस रोग के जन्तु इन कणों पर आक्रमण करते हैं, इस कारण इस रोग में इनकी संख्या घट जाती है। कुछ रोगों में, जैसे फुप्फुस प्रदाह (Pneumonia) इनकी संख्या अधिक हो जाती है यहाँ तक कि कभी-कभी एक घन सहस्रांश मीटर रक्त में ६०००० तक भी मिलते हैं।

श्वेत कण की लम्बाई १/२५०० इंच के लगभग होती है। जीवित कणों की आकृति सदा एक ही सी नहीं रहती; अमीबा की भाँति उनकी आकृति बदलती रहती है, कभी गोलाकार है तो कुछ क्षण पीछे विभिन्न

हो जाते हैं, पल भर पीछे उनमें अगुलियाँ सी निकलने लगती हैं, जरा देर पीछे फिर पूर्व दशा को प्राप्त करते हुए दिखाई देते हैं। श्वेत कणो की इस प्रकार की गति को अमीबावत् (Amoeboid) गति कहते हैं। जब ये कण गति नही करते या जब वे मर जाते है तो उनका आकार गोल दिखाई देता है।

रक्त में विशेष कर चार प्रकार के श्वेत कण पाये जाते हैः—

(१) लसीकाणु (Lymphocyte)। ये लाल कणो से कुछ ही बडे होते हैं। प्रत्येक कण में एक बड़ी गोल मींगी होती है। मींगी के चारों ओर थोड़ा सा जीवोज रहता है। इनकी सख्या प्रति सैकड़ा २० से २५ तक होती है। (देखो चित्र १५५)

(२) एक मींगी युक्त वृहत् लसीकाणु (Large monocyte)। ये लसीकाणुओं से बडे होते हैं; इनका परिमाण लाल कणो से दुगुना या तिगुना होता है। किसी कण में गोल (Spherical) मींगी होती है, किसी में अंडाकार (Oval) और किसी में वृक्काकार (Reniform) (लोबिये के बीज के समान)। मींगी के चारो ओर बहुत सा जीवोज (Protoplasm) होता है। प्रति सैकड़ा इनकी सख्या ३ से ५ तक होती हैं (देखो चित्र १५५)

(३) बहुरूप मींगीयुक्त श्वेताणु (Polymorphonuclear leucocyte)। इन कणों की मींगी कई प्रकार के रूप धारण करती है। अग्रेजी के E, V, S, U, Z अक्षरो में से किसी के आकार की हो सकती है। बहुधा मींगी के कई छोटे-छोटे भाग होते हैं जो एक दूसरे से सूक्ष्म तारों द्वारा जुडे रहते हैं। इन कणों में अमीबावत् गति करने की शक्ति और श्वेत कणों की अपेक्षा अधिक होती है; उनके जीवोज में बहुत से छोटे-छोटे दाने भी पाये जाते हैं। कणो को

विधिपूर्वक रंगने से दाने रंग ग्रहण कर लेते हैं। इन कणो की संख्या प्रति सैकड़ा ६५ से ७० तक होती है। (देखो चित्र १५५)

(४) अम्लरंगेच्छु श्वेताणु (Eosinophil)। ये कण बहुरूपी मीगीवालों से कुछ बड़े होते हैं। इन कणों की मीगी या तो गोल होती है या नाल की भांति मुड़ी हुई; कभी-कभी उसके कई टुकड़े होते हैं जो एक दूसरे से तारों द्वारा जुड़े रहते हैं। इन के प्रोटोप्लाज्म में बहुत से मोटे-मोटे दाने होते हैं जिनमे यह गुण है कि जब कण ईओसीन (Eosin) आदि अम्ल-(Acidic) रंगों से रंगे जाते हैं तो वे खूब गहरा रंग पकड़ते हैं। इन कणो के लिये अम्ल रंगेच्छ शब्द का प्रयोग इसी कारण होता है। ये दाने बहुरूप मींगी वाले कणों के दानों से अधिक मोटे होते हैं। इन कणों की संख्या प्रति सकड़ा २ से ४ तक (देखो चित्र १५५) होती है।

कभी-कभी एक या दो और प्रकार के श्वेत कण भी पाये जाते हैं।

रक्त की अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करने की विधि

इस विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन तो बड़ी पुस्तको में मिलेगा परन्तु हम यहाँ दो तीन बातें लिखते हैं। रक्त अंगुली से या कान की लौर से सुई चुभाकर निकाला जाता है; रक्त निकालने से पहले अंगुली को धो कर और सुई को तपाकर या किसी और विधि से शुद्ध कर लेते हैं। फिर एक तीन इंच लम्बी और एक इंच चौड़ी स्वच्छ कांच की पट्टी (Slide) पर जरा सा रक्त लगा देते हैं। फिर दूसरी पट्टी के छोटे किनारे या सुई द्वारा इस रक्त को एक पतली तह में फैला देते हैं। जब यह तह सूख जाती है तो उसको विशेष प्रकार के रंगों से यथा विधि रँगते हैं। इस पट्टी को धोकर सुखा लेते हैं; और फिर उसको अणुवीक्षण से देखते हैं।

रँगने से कणो की परीक्षा अच्छी तरह होती है। बहुत सी चीजें जो बिना रँगने के नही दिखाई देतीं अब साफ साफ दिखाई देने लगती है।

रक्त की परीक्षा में क्या-क्या बातें देखी जाती हैं

१. रक्त का रंग, गुरुत्व; वह शीघ्र जमता है या देर में।

२. रक्त की प्रतिक्रिया; कम क्षारीय है या अधिक क्षारीय।

३. लाल और श्वेत कणों की प्रति सहस्रांश मीटर संख्या; श्वेत कणों की संख्या की लाल कणों की सख्या से निस्बत (देखो पृष्ठ २७३)

४. लाल कण टूटे हुए तो नही हैं, किसी विशेष प्रकार के लाल कण तो नही दिखाई देते। उनके भीतर रोग उत्पादक जन्तु तो नही हैं [मलेरिया ज्वर या मौसमी बुखार के जन्तु इन कणों के भीतर रहते हैं]

५. चारों प्रकार के श्वेत कण प्रति सैकड़ा कितने हैं; किसी विशेष प्रकार के श्वेत कण घट बढ तो नही गए। असामान्य प्रकार के कण तो दिखाई नही देते, कणो में रोग उत्पादक जन्तु तो नही है ?

६. रक्तवारि में किसी प्रकार के रोग उत्पादक जन्तु हैं या नहीं।

७ रक्त का रासायनिक संगठनः—रक्त शर्करा जितनी होनी चाहिए उतनी है या कम या ज्यादा; रक्त में खटिक की मात्रा कम है या ज्यादा इत्यादि।

रक्त की परीक्षा से बहुत से रोगो के निदान में सहायता मिलती है।

चित्र १५४ रक्ताणु (R.B.C.) (तीन श्वेताणु भी हैं)

चित्र १५५ श्वेताणु (Leucocytes)

पृष्ठ २७६ के सम्मुख

चित्र १५६ हृदय

१, २, ३, = महाधमनी की तीन बड़ी शाखाएँ

पृष्ट २७७ के सम्मुख

यह मालूम हो जायगा कि हृदय छाती में कहां रहता है और उसकी शकल किस प्रकार की होती है।

हृदय का अधिक अंश मध्यरेखा के बाईं ओर अवस्थित है और उसके दाहिनी ओर दाहिना और बाईं ओर बायाँ फुप्फुस रहता है। उसके सामने उरोस्थि और बाईं ओर की दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवी उपपर्शुका रहती है, उसके पीछे पीठ के पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें मोहरों के गात्र और उनके बीच की चक्रियां रहती हैं परन्तु इन मोहरों और हृदय के बीच में वृहत धमनी (Aorta) और अन्न-प्रणाली (Oesophagus) पड़ी रहती है।

हृदय एक सौत्रिक तन्तु (Fibrous tissue) से निर्मित आवरण (Covering) से ढका रहता है। यह आवरण एक थैली के समान होता है जिसके भीतर हृदय रहता है; इसको हृदयकोष या हृदयावरण (Pericardium) कहते हैं। आवरण का भीतरी पृष्ठ बहुत चिकना और चमकदार होता है।

हृदय मांस से निर्मित एक कोष्ठ है जिसके भीतर रक्त भरा रहता है। यह कोष्ठ भीतर से एक खड़े (ऊर्ध्व; Vertical) मांस के परदे (Septum) द्वारा दाहिनी और बाईं दो कोठरियों में विभक्त है; इन दोनों कोठरियों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक कोठरी की दो मंजिलें हैं; ऊपर की मंजिल को ग्राहक कोष्ठ (Atrium) और नीचे की मंजिल को क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) कहते हैं। जिस छत द्वारा ऊपर की मंजिल नीचे की मंजिल से जुदा होती है वह पतले पतले किवाड़ों से बनी है। ये किवाड़ सौत्रिक तन्तु से निर्मित हैं और इस प्रकार लगे हुए हैं कि नीचे की तरफ को तो

खुलते हैं ऊपर की तरफ को नहीं। दाहिनी ओर तीन तिकोनिये किवाड़ होते हैं, बाईं ओर केवल दो।

इस प्रकार हृदय में चार कोठरियाँ (Chambers) होती हैं (चित्र १५७):—

१—दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Right atrium), २—दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Right ventricle), ३—बायाँ ग्राहक कोष्ठ (Left atrium), ४—बायाँ क्षेपक कोष्ठ (Left ventricle) (देखो चित्र १५६)। दोनों दाहिनी और बाईं कोठरियों के बीच में मांस का परदा है पर समझो कि इन दोनों कोठरियों की पास-पास की दीवारें मिली हुई हैं। दाहिने ग्राहक और क्षेपक कोष्ठ के बीच में दो किवाड़ हैं।[1]

किवाड़ों के नीचे की ओर खुलने के कारण रक्त ऊपर से नीचे को अर्थात् ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में तो आ सकता है; नीचे से ऊपर को नहीं आ सकता। किवाड़ों से बने हुए इस यन्त्र का नाम कपाट (Valves) है (चित्र १५९)।

ग्राहक कोष्ठों की दीवारें क्षेपक कोष्ठों की दीवारों से पतली होती हैं। बाएँ क्षेपक कोष्ठ की दीवारें दाहिने से दुगुनी-तिगुनी मोटी होती हैं (चित्र १५७, १५८)।

हर एक क्षेपक कोष्ठ की समाई (धारण शक्ति; Capacity) १½—१¾ छटाँक रक्त के लगभग होती है। ग्राहक कोष्ठों की समाई कुछ कम होती है।

---

१. यदि आपको मनुष्य का हृदय देखने को न मिल सके तो किसी (मांस बेचने वाले) की दुकान से बकरे का हृदय मँगवाकर देख लीजिए। इसकी बनावट मनुष्य के हृदय जैसी ही होती है।

चित्र १५७ की व्याख्या

इस चित्र में हृदय की भीतरी बनावट दिखलाई गई है। चारों कोष्ठ दिखाई दे रहे हैं; दोनों ग्राहक और दोनों क्षेपक कोष्ठों के बीच में रहने वाले परदे भी दिखाई देते हैं :—

१ = महा धमनी (Aorta)
२ = बाईं फुप्फुसीया शिराएं (Left pulmonary veins)
३ = बायां ग्राहक कोष्ठ (Left atrium)
४ = महा हार्दिकी शिरा (Great cardiac vein)
५ = बायां ग्राहक क्षेपक-कपाट (Mitral valve)
६ = बायीं कपाटीया पेशी (तीन) (Left papillary muscles)
७ = क्षेपकांतरिका प्राचीर (Interventricular septum)
८ = दाहिनी कपाटीया पेशी (दो) (Right papillary muscles)
९ = दाहिनी हार्दिकी धमनी (Rt.coronary artery)
१० = दाहिना ग्राहक क्षेपक कपाट (Tricuspid valve)
११ = ग्राहकांतरिका प्राचीर (Interatrial septum)
१२ = अंडाकार खात का किनारा (Fossa ovalis-edge)
१३ = दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Rt. atrium)
१४ = अंडाकार खात (Fossa ovalis)
१५ = ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava)
१६ = दाहिनी फुप्फुसीया शिराएं (Rt. pulmonary veins)

ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच में जो कपाट लगे हैं उनकी शिखरें (apices) क्षेपक कोष्ठों की दीवारों से मांस और पतली पतली कडराओं (chordae tendinae) द्वारा बंधी रहती हैं (चित्र में ५, ६, ८, १०,); जब क्षेपक कोष्ठ फैलता है और ग्राहक कोष्ठ सिकुड़ता है तो कपाटीया पेशियाँ सिकुड़कर छोटी हो जाती हैं जिसके कारण कपाट पूरे खुल जाते हैं; जब क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ता है तो कपाटीया पेशियों का प्रसार होता है जिसके कारण द्वार बन्द हो जाता है और रक्त फिर उल्टा ग्राहक कोष्ठ में नहीं जा सकता। जब कपाट खराब हो जाते हैं तो थोड़ा-बहुत रक्त उलटा लौटने लगता है।

(इसको रक्त अपसरण या रक्त अपक्रमण (Regurgitation) कहते हैं।)

Heitzmann—Zucker Kandl's Atlas

पृष्ठ २८० के ..

चित्र १५७ की व्याख्या

इस चित्र में हृदय की भीतरी बनावट दिखलाई गई है। चारों कोष्ठ दिखाई दे रहे हैं; दोनों ग्राहक और दोनों क्षेपक कोष्ठों के बीच में रहने वाले परदे भी दिखाई देते हैं :—

१ = महा धमनी (Aorta)
२ = बाईं फुफ्फुसीया शिराएं (Left pulmonary veins)
३ = बायां ग्राहक कोष्ठ (Left atrium)
४ = महा हार्दिकी शिरा (Great cardiac vein)
५ = बायां ग्राहक क्षेपक-कपाट (Mitral valve)
६ = बायीं कपाटीया पेशी (तीन) (Left papillary muscles)
७ = क्षेपकांतरिका प्राचीर (Interventricular septum)
८ = दाहिनी कपाटीया पेशी (दो) (Right papillary muscles)
९ = दाहिनी हार्दिकी धमनी (Rt.coronary artery)
१० = दाहिना ग्राहक क्षेपक कपाट (Tricuspid valve)
११ = ग्राहकांतरिका प्राचीर (Interatrial septum)
१२ = अंडाकार खात का किनारा (Fossa ovalis-edge)
१३ = दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Rt. atrium)
१४ = अंडाकार खात (Fossa ovalis)
१५ = ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava)
१६ = दाहिनी फुफ्फुसीया शिराएँ (Rt. pulmonary veins)

ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच में जो कपाट लगे हैं उनकी शिखरें (apices) क्षेपक कोष्ठों की दीवारों से मांस और पतली पतली कंडराओं (chordae tendinae) द्वारा बँधी रहती हैं (चित्र में ५, ६, ८, १०,); जब क्षेपक कोष्ठ फैलता है और ग्राहक कोष्ठ सिकुड़ता है तो कपाटीया पेशियाँ सिकुड़कर छोटी हो जाती हैं जिसके कारण कपाट पूरे खुल जाते हैं; जब क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ता है तो कपाटीया पेशियों का प्रसार होता है जिसके कारण द्वार बन्द हो जाता है और रक्त फिर उलटा ग्राहक कोष्ठ में नहीं जा सकता। जब कपाट खराब हो जाते हैं तो थोड़ा-बहुत रक्त उलटा लौटने लगता है।

(इसको रक्त अपसरण या रक्त अपक्रमण (Regurgitation) कहते हैं।)

Heitzmann—Zucker Kandl's Atlas

चित्र १५८ हृदय का व्यत्यस्त काट (Transverse section)

चित्र १५९

पृष्ठ २८१ के सम्मुख

चित्र १५८ की व्याख्या :—दोनों क्षेपक कोष्ठ शिखर से कोई एक इंच ऊपर काटी गई हैं; अ = नीचे का छोटा भाग ऊपर से देखा गया है; क = ऊपर का बड़ा भाग नीचे से देखा गया है। १ = बायाँ क्षेपक कोष्ठ (Left ventricle) ; २ = दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Rt. ventricle); ३ = दोनों कोष्ठों के बीच का परदा (Inter ventricular septum); ४ = बाएं क्षेपक कोष्ठ की मोटी दीवार; ५ = दाहिने क्षेपक कोष्ठ की पतली दीवार।

चित्र १५९ की व्याख्या :—दोनों ग्राहक कोष्ठ और फुप्फुसीया धमनी और महाधमनी बिलकुल काटकर अलग कर दिये गये हैं, अब शेष हृदय का ऊपर का भाग ऐसा दिखाई देता है; द = दाहिने ग्राहक और दाहिने क्षेपक कोष्ठ के बीच का रास्ता; यहां एक तीन किवाड़ वाला कपाट है, १, २, ३ ये तीन किवाड़ हैं। ब = बाएं ग्राहक और बाएँ क्षेपक कोष्ठ के बीच का रास्ता; यहां (१, २) दो किवाड़ वाला कपाट है। म = महाधमनी का आरम्भिक मुख, यहां (१, २, ३) तीन अर्ध चन्द्राकार किवाड़ लगे हैं। फु = फुफ्फुसीया धमनी का मुख, यहां (१, २, ३) तीन अर्ध चन्द्राकार किवाड़ लगे हैं।

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति--प्लेट ३०

चित्र १५८ हृदय का व्यत्यस्त काट (Transverse section)

चित्र १५९

प्रष्ठ २८१ के सम्मुख

चित्र १५८ की व्याख्या :—दोनों क्षेपक कोष्ठ शिखर से कोई एक इंच ऊपर काटी गई हैं; अ=नीचे का छोटा भाग ऊपर से देखा गया है; क=ऊपर का बड़ा भाग नीचे से देखा गया है। १ = बायाँ क्षेपक कोष्ठ (Left ventricle); २=दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Rt. ventricle); ३=दोनों कोष्ठों के बीच का परदा (Inter ventricular septum); ४ = बाएं क्षेपक कोष्ठ की मोटी दीवार; ५=दाहिने क्षेपक कोष्ठ की पतली दीवार।

चित्र १५९ की व्याख्या :—दोनों ग्राहक कोष्ठ और फुप्फुसीया धमनी और महाधमनी बिलकुल काटकर अलग कर दिये गये हैं, अब शेष हृदय का ऊपर का भाग ऐसा दिखाई देता है; द=दाहिने ग्राहक और दाहिने क्षेपक कोष्ठ के बीच का रास्ता; यहाँ एक तीन किवाड़ वाला कपाट है, १, २, ३ ये तीन किवाड़ हैं। ब = बाएं ग्राहक और बाएँ क्षेपक कोष्ठ के बीच का रास्ता; यहां (१, २) दो किवाड़ वाला कपाट है। ध=महाधमनी का आरम्भिक मुख, यहाँ (१, २, ३) तीन अर्ध चन्द्राकार किवाड़ लगे हैं। फु= फुफ्फुसीया धमनी का मुख, यहां (१, २, ३) तीन अर्ध चन्द्राकार किवाड़ लगे हैं।

दाहिने ग्राहक कोष्ठ में दो नलियाँ लगी रहती हैं। एक ऊपर के भाग में दूसरी नीचे के भाग में, ये दो शिराएँ हैं। ऊपर वाली ऊर्ध्व-महाशिरा (Superior vena cava) और नीचेवाली निम्नमहाशिरा (Inferior vena cava) कहलाती हैं।

ऊर्ध्वमहाशिरा अशुद्ध रक्त को सिर, ऊर्ध्व शाखाओं और वक्ष से इकट्ठा करके लाती है। निम्नमहाशिरा शरीर के शेष भागों से अर्थात् उदर और निम्न शाखाओं से रक्त को इकट्ठा करके लाती है।

दाहिनी क्षेपक कोष्ठ से एक नली निकलती है; इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं जिनमें से एक दाहिने फुप्फुस को और दूसरी बाएँ फुप्फुस को जाती है। ये फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary artery) हैं (देखो चित्र १५६ फु० धमनी) जहाँ इस धमनी का आरम्भ होता है वहाँ उसके भीतर तीन अर्धचन्द्राकार (Semilunar) किवाड़ों से निर्मित एक कपाट लगा रहता है; इस कपाट का प्रयोजन यह है कि रक्त कोष्ठ से धमनी में तो जा सके परन्तु उल्टा न लौटे (चित्र १५९ फु० १, २, ३)।

बाएँ क्षेपक कोष्ठ में चार नलियाँ लगी रहती हैं। इनमें से दो दाहिने और दो बाएँ फुप्फुस से आती हैं; ये फुप्फुसीया शिराएं (Pulmonary veins) हैं (चित्र १६२)। जहाँ ये हृदय से जुड़ी रहती हैं वहाँ इनके भीतर कोई कपाट नहीं होता।

बाईं क्षेपक कोष्ठ के पिछले भाग से एक बड़ी मोटी नली निकलती है; यह बृहत् धमनी (या महाधमनी) (Aorta) है। फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary artery) को छोड़ कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं वे सब बृहत् धमनी से निकलती हैं; जहाँ यह धमनी क्षेपक कोष्ठ से

चित्र १६० हृदय के दाहिने भाग के कपाट
(१) (२)
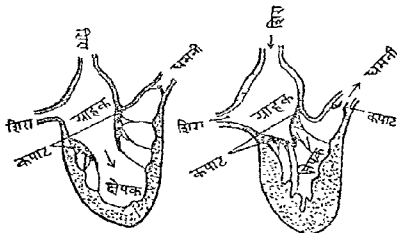
(१) म ग्राहक कोष्ठ सिकुड़कर रक्त को क्षपक कोष्ठ में ढकेल रहा है ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच के किवाड़ खुले हुये हैं।

(२) में क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ रहा है; किवाड़ जो पहले खुले थे अब बन्द हो गये हैं। ग्राहक कोष्ठ में रक्त शिरा से आ रहा है। क्षेपक कोष्ठ से रक्त निकल कर फुप्फुसीया धमनी में जा रहा है।

निकलती है वहाँ उसके भीतर तीन अर्धचन्द्राकार किवाड़ों से निर्मित एक कपाट होता है (चित्र १५९ ब १, २, ३)। इन कपाट के कारण रक्त कोष्ठ से धमनी में जा सकता है, धमनी से कोष्ठ में नहीं।

चित्र १६१ हृदय जैसा कि सामने में दिखाई देता है :—

१ = ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava)
२ = दाहिनी ऊर्ध्व फुप्फुसीया शिरा (Rt. upper pulmonary vein)
३ = उद्‌गामी महाधमनी (*Ascending aorta*)
४ = दाहिने ग्राहक कोष्ठ का शिखर (Rt. auricle)
५ = दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Rt. atrium)
६ = हार्दिकी शिराएं (सबसे छोटी) (*Small cardiac veins*)
७ = दाहिनी हार्दिकी धमनी (*Rt. coronary artery*)
८ = सामने की हार्दिकी शिराएं (Ant. cardiac veins)
९ = दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Rt. ventricle)
१० = हृदय का सामने का पृष्ठ (*Anterior surface of* heart)
११ = हृदय का शिखर (Apex)
१२ = बायां क्षेपक कोष्ठ (Left ventricle)
१३ = हृदय की महाशिरा (Great cardiac vein)
१४ = बाईं हार्दिकी धमनी की अधोगा शाखा (*Interventricular branch of the left coronary artery*)
१५ = दाहिने क्षेपक कोष्ठ का वह भाग जहां से फुप्फुसीया धमनी का आरम्भ होता है (Infundibulum)
१६ = बाएं ग्राहक कोष्ठ का शिखर (Left auricle)
१७ = फुप्फुसीया धमनी का फूला हुआ भाग
१८ = मूल फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary trunk)
१९ = बाईं ऊर्ध्व फुप्फुसीया शिरा (Lt. upper pulmonary vein)

चित्र १६१

(From Toldt's Atlast—By Permission)

पृष्ठ २८४ के सम्मुख
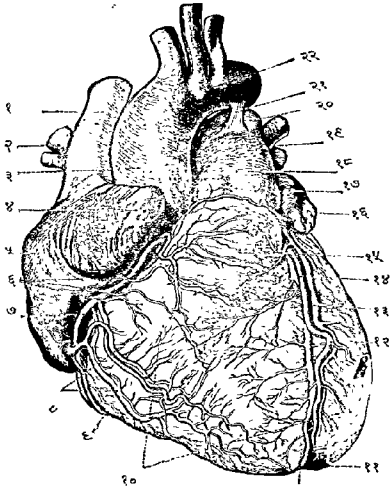
चित्र १६२

(From Toldt's Atlas—By permission)

पृष्ठ २८५ के सम्मुख

२० = बाईं फुप्फुसीया धमनी (Left pulmonary artery)
२१ = धमनी संयोजक (Ductus arteriosus)
२२ = महाधमनी की महराब (Arch of aorta),

चित्र १६२ हृदय जैसा कि पीछे से दिखाई देता है :—

१ = महा धमनी (Aorta)
२ = बाईं फुप्फुसीया धमनी (Left pulmonary artery)
३ = बाईं फुप्फुसीया शिराएं (Left pulmonary veins)
४ = तिर्यक् शिरा (Oblique vein)
५ = बायां ग्राहक कोष्ठ (Left atrium)
६, १६ = हृदय की महाशिरा (Coronary sinus)
७ = बाईं हार्दिकी धमनी की पिछली शाखा की एक शाखा (A branch of left coronary artery)
८ = ग्राहक-क्षेपक कोष्ठांतरिका परिखा (Atrio-ventricular sulcus)
९ = पिछली हार्दिकी शिराएं (Post. cardiac veins)
१० = हृदय का शिखर (Apex)
११ = पिछला पृष्ठ (Posterior surface)
१२ = पाश्चात्य कोष्ठांतरिका धमनी (Post. interventricular artery)

१३ = मध्य हार्दिकी शिरा (Middle cardiac vein)
१४ = छोटी शिरा (Small cardiac vein)
१५ = दाहिनी हार्दिकी धमनी (Rt. coronary artery)
१७ = दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Rt. atrium)
१८ = परिखा (Sulcus)
२० = अधोगा महाशिरा (Inferior vena cava)
२१ = ग्राहक कोष्ठांतरिका परिखा (पिछली) (Inter atrial sulcus)
२२ = बायाँ ग्राहक कोष्ठ (Left atrium)
२३ = *दाहिनी फुफ्फुसीया शिराएँ (Rt. pulmonary veins)*
२४ = दाहिनी फुफ्फुसीया धमनी (Rt. pulmonary artery)
२५ = उर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava)

हृदय के कपाट (Valves) (देखो चित्र १५७, १५९)

हृदय में चार कपाट होते हैं :—

१. दाहिने ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच में (Tricuspid)
२. बाएँ ,, ,, ,, (Mitral)
३. फुफ्फुसीया धमनी में (Pulmonary)
४. वृहत् धमनी में (Aortic)

कपाटों के कारण रक्त दाहिने क्षेपक कोष्ठ से दाहिने ग्राहक कोष्ठ में और फुफ्फुसीया धमनी से दाहिने क्षेपक कोष्ठ में लौट कर नहीं जा सकता; इसी प्रकार बाएँ क्षेपक कोष्ठ से बाएँ ग्राहक कोष्ठ में और वृहत् धमनी से बाएँ क्षेपक कोष्ठ में नहीं लौट सकता।

(कभी-कभी कपाटों के किवाड़ खराब हो जाते हैं तब रक्त उलटा

लौटने लगता है इसको रक्त अपक्रमण (Regurgitation) कहते हैं ।)

हृदय का कार्य

हृदय कभी एक-सा नहीं रहता; वह कभी सिकुड़ता है और कभी फैलता है। सिकुड़ने और फैलने से उसकी धारणाशक्ति घटती और बढ़ती रहती है ।

रक्त शरीर के सब अंगों को आवश्यक वस्तुएँ दे कर दो महाशिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठ में वापस आता है। ज्योंही यह कोठरी रक्त से भरती है, वह सिकुड़ने लगती है; सिकुड़ने से उसकी धारणाशक्ति (समाई) कम हो जाती है; इसलिए रक्त उसमें से निकल कर क्षेपक कोष्ठ में चला जाता है। जब रक्त क्षेपक कोष्ठ में पहुँचने लगता है तो कपाट के किवाड़ ऊपर को उठकर बंद होने लगते हैं और जब यह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तो वे अच्छी तरह से बन्द हो जाते हैं। कपाट के बन्द हो जाने से रक्त ग्राहक कोष्ठ में लौटकर नहीं जा सकता । दाहिने ग्राहक कोष्ठ से फुप्फुसीया धमनी निकलती है; रक्त उसमें चला जाता है और उसकी शाखाओं द्वारा फुप्फुसों में पहुँचता है ।

फुप्फुस रक्त को शुद्ध करनेवाले अंग हैं। इन अंगों में शुद्ध होकर रक्त चार नलियों द्वारा (२ शिराएँ दाहिने फुप्फुस से आती हैं और दो बाएँ से चित्र १५७) बाएँ ग्राहक कोष्ठ में लौट आता है। भर जाने पर यह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है और रक्त उसमें से निकलकर बाएँ क्षेपक कोष्ठ में प्रवेश करता है। रक्त के इस कोष्ठ में पहुँचने पर कपाट के किवाड़ ऊपर उठकर बंद होने लगते हैं और जब कोष्ठ सिकुड़ता है तो वे पूरे तौर से बन्द हो जाते हैं जिसके कारण रक्त लौटकर ग्राहक कोष्ठ में नहीं जा सकता।

क्षेपक कोष्ठ के सिकुड़ने से रक्त महाधमनी मे जाता है। महाधमनी से बहुत-सी शाखाएँ फूटती है जिनके द्वारा रक्त समस्त शरीर में पहुँचता है।

हृदय के कोष्ठ रक्त को आगे को ढकेल कर फैलने लगते हैं और शीघ्र पूर्व दशा को प्राप्त होते है। इतने में वे रक्त से भर कर फिर सिकुड़ने लगते है और इस रक्त को आगे को ढकेलकर फैल जाते हैं। यह सिकुड़ने और फैलने का सिलसिला जीवन भर रहता है; हृदय का कोई कोष्ठ पल भर के लिए भी खाली नहीं रहता। दोनों ग्राहक कोष्ठ एक साथ ही रक्त से भरते हैं और फिर एक साथ ही सिकुड़ते हैं; इसी तरह दोनों क्षेपक कोष्ठ भी एक ही साथ भरते और सिकुड़ते हैं। कभी-कभी रोगों के कारण एक कोष्ठ दूसरे से पहले सिकुड़ने लगता है।

कोष्ठो के सिकुड़ने को **आकुंचन** या **संकोच** (Contraction; Systole) कहते हैं और फैल कर पूर्व दशा को प्राप्त होने को **प्रसार** (Diastole)। पहिले ग्राहक कोष्ठों का आकुंचन होता है, फिर क्षेपक कोष्ठों का; तत्पश्चात् समस्त हृदय का प्रसार होता है और वह क्षण भर के लिए विश्राम करता है; फिर सिकुड़ता और फैलता है। एक आकुंचन और एक प्रसार में १/७२ मिनट के लगभग समय लगता है; यह समझो कि हृदय एक मिनट में ७२ बार रक्त ग्रहण करता है और इतने ही बार उसको आगे को ढकेलता है।

हृदय का शब्द (Heart Sounds)

हृदय नियमानुसार सिकुड़ता और फैलता रहता है। फैलने पर उसमें रक्त का प्रवेश होता है; सिकुड़ने पर रक्त उसमें से बाहर निकलता है। जब हृदय संकोच करता है तो वह रक्त को बड़े वेग से धमनियो में

ढकेलता है। संकोच और प्रसार से एक शब्द उत्पन्न होता है जो लुब-डप लुब-डप लुब-डप जैसा सुनाई दिया करता है। यह शब्द छाती पर कई स्थानों में सुनाई पड़ता है; यदि आप सुनना चाहें तो किसी मनुष्य की छाती पर उसके बाएँ स्तन से इच सवा इच नीचे अपना कान लगाएँ और एकाग्रचित्त होकर सुनें। आपको दो आवाजें सुनाई देंगी जिनके बीच में थोड़ा-सा अन्तर (निःशब्दता) रहता है :—लुब, थोड़ा-सा अन्तर डप। लुब और डप के बीच में थोड़ा-सा अन्तर रहता है। परन्तु डप और लुब के बीच में इससे अधिक अन्तर रहता है। लुब को हृदय का पहला शब्द और डप को दूसरा शब्द कहते हैं। हृदय के शब्द छाती पर और स्थानों में भी सुने जा सकते हैं जैसे दाहिनी ओर की दूसरी और बाईं ओर की तीसरी उपपर्शुका के ऊपर; और वक्षोस्थि के अग्र-खंड के ऊपर कौड़ी देश के गड्ढे में। हृदय की परीक्षा करते के समय डाक्टर इन शब्दों को शब्द परीक्षक (Stethoscope) यंत्र द्वारा सुनते हैं। हृदय के रोगों में ये शब्द और प्रकार के सुनाई देने लगते हैं।

हृदय के धड़कने की संख्या

प्रौढ़ मनुष्य का हृदय सामान्यतः एक मिनट में ८०,७५ बार धड़-कता है। बाल्यावस्था में हृदय जल्दी-जल्दी धड़कता है, जन्म काल में धड़कने की संख्या प्रति मिनट १४० होती है, ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है यह संख्या घटती जाती है। स्वस्थ बालकों में सोते समय या जब वे आराम में चुपचाप बैठे हों हृदय के धड़कने की संख्या इस प्रकार होती है :—

६ से १२ मास	=	१०५ से ११५ प्रति मिनट
२ से ६ वर्ष	=	९० से १०५ ,, ,,
७ से १० वर्ष	=	८० से ९० ,, ,,

११ से १४ वर्ष = ७४ से ८५ प्रति मिनट
वृद्धावस्था में संख्या पहले से कुछ अधिक हो जाती है।

बहुत से कारणों से हृदय की चाल शीघ्र या मन्द हो जाती है। भय, अति हर्ष, अधिक उष्णता (और ज्वर), भाँति-भाँति की चित्तवृत्तियाँ और विकार, मैथुन की इच्छा, क्रोध, भोजन करना, जलपान करना, व्यायाम ये सब बातें हृदय की चाल को तेज़ करने वाली हैं; बहुत-सी औषधियाँ भी ऐसा कर सकती हैं।

क्लेश, निर्बलता और भूखे रहने (उपवास) से हृदय की चाल मन्द हो जाती है; कई औषधियों से भी हृदय की चाल घट जाती है। कभी-कभी एकदम किसी भयंकर दृश्य को देखने से या शोकजनक समाचारों को अकस्मात् सुनने से भी हृदय का धड़कना एकदम बन्द हो जाता है; कभी-कभी मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती है।

धमनी (Artery) और शिरा (Vein) शब्दों की व्याख्या

रक्त की नालियाँ दो प्रकार की हैं—एक वे जो रक्त को हृदय से लेकर और अगों में पहुँचाती हैं। दूसरी वे जो सब अंगों से रक्त को इकट्ठा करके उसको हृदय में लौटा कर ले जाती हैं। पहले प्रकार की नलियों को धमनियाँ (Arteries) कहते हैं; दूसरे प्रकार की नलियों को शिराएँ (Veins)। केवल फुफ्फुसीया धमनी (Pulmonary A.) को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं उन सब में शुद्ध रक्त रहता है; ऐसे ही केवल फुफ्फुसीया शिराओं (Pulmonary veins) (जो चार हैं) को छोड़कर जितनी भी शिराएँ हैं उन सब में अशुद्ध रक्त रहता है, प्रायः धमनियाँ शुद्ध रक्तवाहिनी और शिराएँ

अशुद्ध रक्तवाहिनी नालियां हैं। फुप्फुसीया धमनी में अशुद्ध और फुप्फुसीया शिराओं में शुद्ध रक्त रहता है।

केशिकाएँ (Capillaries) (चित्र १९३)

हृदय के बाएँ क्षेपक कोष्ठ से सबसे बड़ी धमनी निकलती है जिसको वृहत धमनी (Aorta) कहते हैं। फुप्फुसीया धमनी को छोड़ कर शरीर की सब मुख्य धमनियाँ वृहत् धमनी से निकलती हैं; बड़ी धमनियों से बहुत-सी छोटी-छोटी धमनियाँ फूटा करती हैं; सबसे छोटी धमनियाँ बिना सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता के दिखाई नहीं देतीं। इन अति सूक्ष्म धमनियों[1] में बहता हुआ रक्त इनसे भी पतली-पतली नलियों में पहुँचता है; इन नलियों की दीवारों में मांस नहीं होता। वे सेलों की एक तह से ही बनी होती हैं।

इन नलियों में से कुछ तो इतनी पतली और कम चौड़ी होती हैं कि उनके भीतर केवल एक ही रक्तकण की गति सम्भव है। ये अति सूक्ष्म नलियां जिनकी दीवारों में मांस नहीं है केशिकाएं (Capillaries) कहलाती हैं। केशिकाएँ हर एक अंग में जाल-रूप में फैली हुई हैं। उनकी दीवारें अंगों की सेलों के पास या उनसे मिली हुई रहती हैं। (देखो चित्र १९३)

जब रक्त इन केशिकाओं में बहता है तो थोड़ा-सा रक्तवारि (Plasma) उनकी पतली-पतली दीवारों में से छन कर बाहर निकल जाता है; यह तरल अंगों की सेलों से मिला रहता है। अंगों की सेलें इस रस से पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करती हैं। शरीर की सेलें केशिकाओं

---

१. अति सूक्ष्म और अणुवीक्ष्य धमनी धमनिका (Arteriole) कहलाती है।

के रक्त से ओपजन भी ग्रहण करती है; कर्बन-द्विओषित गैस जो हर समय बनती रहती है केशिकाओ के रक्त में पहुँच जाती है। इस गैस के कारण केशिकाओं के रक्त का रग स्याहीमायल हो जाता है।

चित्र १६३; धमनियों का रक्त केशिकाओं में होकर शिराओं में पहुँच जाता है
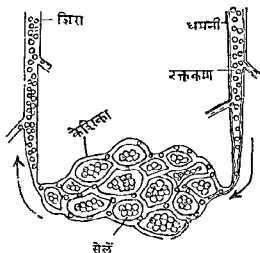
अब ये केशिकाएँ एक दूसरे से जुड़ने लगती हैं और उनके परस्पर सयोग से उनसे मोटी नलियाँ बन जाती हैं जिनके भीतर कम ओपजन और अधिक कर्बनद्विओषित वाला स्याहीमायल रक्त बहता है; इस रक्त में पौष्टिक पदार्थ भी कम होते हैं। ये नलियाँ जो केशिकाओ के मिलने

से बनती हैं शिराएँ[1] हैं। पतली-पतली शिराओं (शिराकों) (Venule) के एक-दूसरे से जुड़ने से बड़ी-बड़ी शिराएँ बन जाती हैं। पतली शिराएँ बड़ी शिराओं की सहायक हैं।

धमनी से शाखाएँ निकलती हैं; शिरा सहायकों के मिलने से बनती हैं। धमनी ज्यों-ज्यों आगे को जाती है पहले से छोटी और पतली होती जाती है; शिरा आरम्भ में छोटी होती है और धीरे-धीरे बड़ी होती जाती है। अंगों में शुद्ध रक्त धमनियों द्वारा पहुँचता है; और वहाँ से अशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा वापस जाता है। धमनी की सूक्ष्म शाखाओं और शिरा के सहायकों के बीच में केशिकाओं का जाल रहता है।

रक्त परिभ्रमण या परिक्रमण
(Circulation of Blood) (चित्र १६४)

बाएँ क्षेपक कोष्ठ के आकुञ्चन से रक्त बड़े वेग के साथ वृहत् धमनी में प्रवेश करता है जिसकी शाखाओं द्वारा वह समस्त शरीर में पहुँचता है। अंगों में पहुँच कर धमनियों की अनेक छोटी-छोटी शाखाएँ हो जाती हैं; इन शाखाओं में बहता हुआ रक्त केशिकाओं के जाल म पहुँचता है जिससे छोटी-छोटी शिराओं का आरम्भ होता है। छोटी-छोटी शिराओं के मेल से बड़ी-बड़ी शिराएँ बन जाती हैं जो अंगों से बाहर निकल कर और शिराओं से जा मिलती हैं।

निम्न शाखा की शिरा और्वी शिरा (Femoral vein)

---

१. अति सूक्ष्म शिरा = शिराक (Venule)।

चित्र १६४ रक्त परिभ्रमण (रक्त संचार)
(Circulation of Blood)

ऊर्ध्वगा महाशिरा (Superior vena cava) या

अधोगा महाशिरा (Inferior vena cava) या
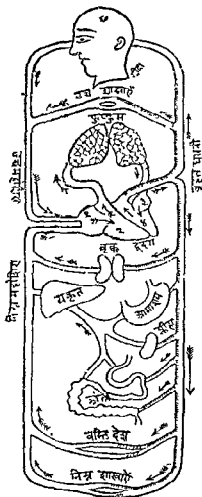
१—दाहिना ग्राहक कोष्ठ। २—दाहिना क्षेपक कोष्ठ। ३—बायां ग्राहक कोष्ठ।
४—बायां क्षेपक कोष्ठ। जिधर को तीर की नोंक है उधर को रक्त बहता है।

उदर में पहुँच कर अपनी ओर के वस्तिदेश[1] (Pelvis) की शिरा (अन्तः श्रोणिगा शिरा, Internal iliac vein) से जा मिलती है; इस प्रकार दोनों निम्न शाखाओं और वस्तिदेश की शिराओं के संयोग से दो बड़ी शिरायें बन जाती हैं जो बृहत् धमनी की अन्तिम शाखाओं के पास रहती है। ये दोनों शिराएँ शीघ्र मिल जाती है और इनके मेल से एक बड़ी शिरा बन जाती है जिसका नाम अधोगा महाशिरा (Inferior vena cava) है। अधोगा महाशिरा उदर में बृहत् धमनी के दाहिनी ओर रहती है। उदरस्थ अंगों की शिराएँ इसकी सहायक है; इस कारण ज्यों-ज्यों यह ऊपर को जाती है वह अधिक मोटी हो जाती है। यकृत (Liver) के पीछे होकर अधोगा महाशिरा वक्षउदरमध्यस्थ पेशी (Diaphragm) के एक छिद्र में से वक्ष के भीतर घुस जाती है और घुसते ही दाहिने ग्राहक कोष्ठ के नीचे के भाग में जा खुलती है। अधोगा महाशिरा मेंके रक्त को निम्न शाखाओं और उदर से इकट्ठा करके हृदय में पहुँचा देती है (देखो चित्र १६४)।

---

१. उदर में पहुँचते ही और्वी शिरा (Femoral vein) में कुछ सहायक शिराएँ (Tributaries) मिलती हैं; इनके मिलने के पश्चात् यह बड़ी शिरा बाह्य श्रोणिगाशिरा (External iliac vein) कहलाती है। बाह्य श्रोणिगा और अन्तः श्रोणिगा शिराओं (External & internal iliac veins) के मेल से जो शिरा बनती है उसका नाम संयुक्ता श्रोणिगा शिरा (Common iliac vein) है। दाहिनी और बाईं संयुक्त श्रोणिगा शिराओं के मेल से अधोगा महाशिरा (Inferior vena cava) बनती है। चित्र १६४

शिर, ग्रीवा, ऊर्ध्व शाखाओं और वक्षस्थल की शिराओं के सयोग से एक बड़ी शिरा बन जाती है जिसको ऊर्ध्वगा महाशिरा (Superior vena cava) कहते हैं ऊर्ध्वगा महाशिरा वक्ष में रहती है और नीचे आकर दाहिने ग्राहक कोष्ठ के ऊपर के भाग में खुलती है। इस प्रकार जितना रक्त बृहत् धमनी की शाखाओं द्वारा

चित्र १६५ रक्तचक्र
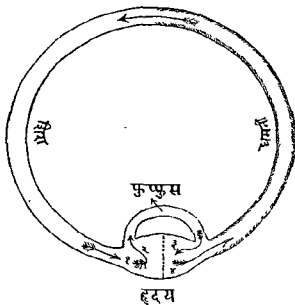
अंगो में पहुँचता है वह दो महाशिराओं द्वारा हृदय के दाहिने भाग में लौट आता है।

यह अशुद्ध रक्त दाहिने ग्राहक कोष्ठ से दाहिने क्षेपक कोष्ठ में और उससे फुफुसीया धमनी द्वारा दोनों फुप्फुसों में पहुँचता है। फुप्फुसों में रक्त की शुद्धि होती है। शुद्ध होने के पश्चात् रक्त फुप्फुसों से चार फुप्फुसीया शिराओं द्वारा बाएँ ग्राहक कोष्ठ में लौट आता है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में पहुँचता है और यहाँ से फिर बृहत् धमनी में जाता है।

इस तरह से रक्त एक स्थान से चल कर शरीर भर में घूम-घाम कर फिर वहीं लौट आता है। वह एक जगह नहीं ठहरता। रक्त के चक्रवत् बहने को रक्तपरिक्रमण या रक्तपरिभ्रमण कहते हैं (देखो चित्र १६५)। अनुमान है कि रक्त को एक चक्र पूरा करने में १५ सेकण्ड के लगभग लगते हैं। (अर्थात् इस समय में हृदय से चलकर फिर हृदय में लौट आता है।

रक्तवाहिनी नलियों की बनावट

धमनी—धमनी की दीवार सौत्रिक तन्तु और अनैच्छिक मांस से निर्मित होती है। सब से बाहर सौत्रिक तन्तु होता है जिसमें श्वेत और पीले दोनों प्रकार के सूत्र होते हैं। सौत्रिक तह के भीतर मांस की तह होती है; मांस सेलों में रले-मिले कुछ पीले सूत्र भी होते हैं; बड़ी-बड़ी धमनियों में छोटी धमनियों की अपेक्षा पीले सूत्र अधिक होते हैं; मांस की तह के भीतर एक तह पीले सौत्रिक तन्तु की होती है; इस तह के पृष्ठ पर सेलें बिछी रहती हैं। इन सेलों की तह के कारण धमनी का भीतरी पृष्ठ कुछ चिकना-सा होता है और रक्त बिना किसी प्रकार की रगड़ खाए सुगमता से बह सकता है (देखो चित्र १६६)।

शिरा—शिरा की दीवार की बनावट धमनी जैसी होती है। सब से

बाहर सौत्रिक तन्तु होता है; धमनी की अपेक्षा यह घना और अधिक होता है। मध्य में अनैच्छिक मास होता है; यह धमनी से कम होता है और इसमें पीले और श्वेत दोनो प्रकार के सूत्र मिले रहते है; श्वेत सूत्र पीलो से अधिक होते ह; किसी किसी शिरा में मांस की तह नही होती। मास के भीतर पीला सौत्रिक तन्तु रहता है जिस पर सेलों की एक तह बिछी रहती है। मांस कम होने के कारण शिरा की दीवार धमनी की दीवार से पतली होती है, और पीला सौत्रिक तन्तु कम होने से उसमें स्थितिस्थापकता (Elasticity) कम होती है।

चित्र १६६ धमनी और शिरा की रचना चित्र १६७ शिरा के कपाट
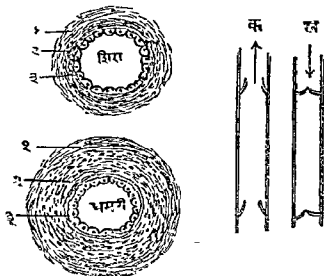
१—सौत्रिक तंतु। २—मांस। ३—पीला सौत्रिक तंतु, और सेलों की तह; क—शिरा का कपाट खुला है; ख—कपाट बंद है।

बहुत सी शिराओं के भीतर जगह जगह कपाट (Valves) लगे रहते हैं। इन कपाटों के किवाड़ हृदय की ओर खुलते हैं; जो शिराएँ हृदय से नीचे अवस्थित हैं उनमें किवाड़ ऊपर को खुलते हैं और जो उससे ऊपर अवस्थित हैं उनमें नीचे की ओर खुलते हैं। इन किवाड़ों के कारण रक्त हृदय की ओर ही बहता है, उलटा पीछे को नहीं जा सकता। ऊर्ध्वगा और अधोगा महाशिराओं, अस्थि, कपाल और कशेरु (Vertebral column) की शिराओं में कपाट नहीं होते।

केशिका (Capillary)--केशिकाकी दीवार केवल सेलों से निर्मित है ; उनमें मांस और सौत्रिक तन्तु नहीं होते। केशिका के छिद्र का व्यास सामान्यतः $\frac{1}{3000}$ इंच के लगभग होता है। मस्तिष्क और अन्त्र की श्लैष्मिक झिल्ली की केशिकाएँ सब से पतली होती हैं; त्वचा, और फुप्फुस की केशिकाएँ सब से चौड़ी होती हैं।

धमनी की गति, नब्ज (Pulse), धमनी-स्पंदन या स्फुरण

यदि आप किसी धमनी को अँगुली से दबायें तो वह जीवित शरीर में उठती और गिरती प्रतीत होगी। हृदय के आकुञ्चन के समय धमनी उठती है और उसके प्रसार के समय पूर्व दशा को प्राप्त होती है। इस उठने और गिरने को धमनी का फड़कना, धमनी-स्पन्दन या स्फुरण, या नब्ज कहते हैं।

फड़क का कारण

धमनियों की दीवारें अधिकतर मांस और पीले सौत्रिक तन्तु से निर्मित हैं ; इन दोनों तन्तुओं से स्थितिस्थापकता होती है अर्थात् ये चीजें खींचने से बढ़ जाती हैं और जब हम खींचना बन्द करें तो पूर्व

दशा को प्राप्त होती हैं। इन तन्तुओं के होने से धमनी की दीवार में भी स्थितिस्थापकता होती है ; जोर पड़ने पर धमनी फैल कर चौडी हो सकती है ; जोर हटने पर फिर पहली जैसी हो जाती है।

बायाँ क्षेपक कोष्ठ सिकुडकर बड़े वेग के साथ १½ छटाक रक्त वृहत् धमनी में ढकेला करता है। धमनियाँ हर समय भरी रहती हैं; जब यह १½ छटांक रक्त भरी हुई वृहत् धमनी में पहुँचा तो उसमें कैसे समायेगा? यद्यपि यह धमनी खाली नहीं परन्तु वेग पड़ने पर वह स्थितिस्थापकता के कारण फैल कर पहले से अधिक चौड़ी हो सकती है जिससे उसकी समाई बढ़ जाती है। बस जब अधिक रक्त वृहत् धमनी में जाता है तो उसका हृदय के समीप का भाग फैल कर चौड़ा हो जाता है और यह सब रक्त उसमें समा जाता है। सिकुड़ने के पश्चात् बायाँ क्षेपक कोष्ठ फैलता है ; दबाव कम होने से वृहत् धमनी का यह फैला हुआ भाग अपनी पूर्व दशा को प्राप्त करना चाहता है ; यह तब ही सम्भव है कि जब उससे अगला भाग फैले। ऐसा ही होता है ; धमनी का एक भाग सिकुड़ता है और उससे अगला भाग फैलता है ; फिर यह भाग सिकुड़ता है और अगला भाग फैलता है ; वृहत् धमनी की शाखाएँ भी इसी तरह फैलती और सिकुड़ती हैं और रक्त आगे को बहता है। इतने में क्षेपक कोष्ठ का दूसरा आकुंचन होता है और फैलने और सिकुड़न की नई लहर उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार वृहत् धमनी और उसकी शाखाओं में फैलने और सिकुडने की लहरें एक के पश्चात् दूसरी उत्पन्न होती रहती हैं। एक लहर के पीछे दूसरी लहर के आने से धमनी में फड़क उत्पन्न हो जाती है ; इसी को धमनी-स्पन्दन या नब्ज कहते हैं।

यह स्पन्दन साधारणतः केवल धमनियों में ही मालूम होता है, शिराओं में नहीं ; कारण यह है कि जब रक्त सूक्ष्म-सूक्ष्म धमनियों में

पहुँचता है तो इस लहर का वेग कम हो जाता है; केशिकाओं और शिराओं में यह लहर रहती ही नहीं। जब धमनी कट जाती है तो उसमें से रक्त उछल-उछल कर निकला करता है; परन्तु जब शिरा कटती है तो रक्त धीमे-धीमे एक चाल से बहता है उछलता नहीं।

रक्त-भार (Blood pressure)

जब किसी स्थितिस्थापक नली में कोई तरल रहता है तो वह तरल उस नली की दीवारों पर एक दबाव डालता है। जब हम भरी हुई नली को अंगुली से दबाते हैं तो उस तरल का दबाव मालूम होता है। जितने अधिक गुरुत्व का यह तरल होता है उतना ही अधिक दबाव नली की दीवारों पर पड़ता है। यदि तरल किसी पम्प द्वारा नली में भरा जावे तो उस तरल का नली की दीवारों पर दबाव उतना ही अधिक होगा जितना कि उस पम्प का वेग; यदि पम्प जोर से तरल को ढकेलता है तो तरल का दबाव भी अधिक होगा; यदि पम्प का वेग कम है तो तरल का दबाव भी कम होगा। यदि नली की दीवारें स्थितिस्थापक हैं तो वे तरल के दबाव को सह लेती हैं अर्थात् अधिक वेग पड़ने से वे फैल जाती हैं; जब स्थितिस्थापकता काफी नहीं होती तो जब वेग एक हद्द से ज्यादा हो जाता है तो दीवारें फट जाती हैं और तरल बाहर बहने लगता है।

धमनियाँ शरीर की स्थितिस्थापक नलियाँ हैं। हृदय उनके लिए पम्प है; जो तरल हृदय धमनियों में ढकेलता है वह रक्त है। जब आप धमनी को अंगुली से दबाते हैं तो आप उसके भीतर के रक्त का भार या वेग प्रतीत करते हैं। जब हृदय का वेग अधिक है तो इस रक्त का भार भी अधिक होता है; जब हृदय कमजोर होता है तो यह भार भी कम होता है। जब रक्त के बहाव में रुकावट होती है (जैसे वृक्क के रोगों में) तो रक्त भार अधिक हो जाता है; जब धमनिकाएँ पहले से चौड़ी हो

जाती है तो रक्त बहुत आसानी से बहता है और धमनी में रक्त का भार कम हो जाता है।

रक्त का भार साधारणतः तो धमनी को अंगुली से दबा कर मालूम किया जा सकता है ; ठीक-ठीक मालूम करने के लिए कई प्रकार के रक्त-भार-मापक यंत्र (Blood pressure instrument ; Sphygmomanometer) बनाये गये हैं।

धमनी के रक्त का भार दो प्रकार का होता है। एक वह जो हृदय के संकोच के समय होता है । इसे संकोच या आकुंचन रक्त भार (Systolic blood pressure) कहते हैं ; दूसरा वह जो उस समय होता है जब हृदय का प्रसार होता है। यह प्रसार रक्त भार (Diastolic blood pressure) है ; संकोच रक्त-भार प्रसार रक्त-भार से अधिक होता है। रोगों में रक्त-भार घट बढ जाता है। रक्त-भार का बहुत कम होना या अधिक होना दोनों ही बुरे हैं रक्त-भाराधिक्य (High blood pressure) से छोटी-छोटी धमनियों के फटने का डर रहता है। मस्तिष्क की धमनियों के फटने से अर्धांग (Paralysis) हो जाता है।

ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है रक्त-भार भी बढ़ता जाता है। रक्त-भार का सम्बन्ध भोजन से भी है। मांस भक्षियों का रक्त भार मांस न खाने वालों के रक्त-भार से बहुधा अधिक रहता है। भारतवासियों का रक्त-भार यूरोपनिवासियों के रक्त-भार से कुछ कम होता है।

सामान्यतः संकोच रक्त-भार इस प्रकार होता है :—

आयु १०—१५ वर्ष	=	१००—११०	सहस्रांशमीटर पारा
,, २५ ,,	=	११५—१२५	,,
,, ४० ,,	=	१३५—१४५	,,
५० से अधिक	=	१४५—१५५	,,

प्रसार रक्त-भार १०—१५ वर्ष की आयु में ६०—७५ होता है ;

२१, २२ वर्ष की आयु में ६५—८० और फिर धीरे-धीरे ९५ तक हो जाता है। १०० से अधिक होना ठीक नहीं।

नाड़ी परीक्षा

नाड़ी परीक्षा धमनियों को अँगुलियों से यथाविधि दबाकर की जाती है। परीक्षा करने लिये यन्त्र भी बनाए गये हैं। बड़ी-बड़ी धमनियाँ प्रायः मांस और वसा से खूब ढकी रहती हैं; कहीं-कहीं वे केवल त्वचा और जरा-सी वसा से ही ढकी रहती हैं। नाड़ी परीक्षा ऐसे ही स्थानों में की जाती है क्योंकि अधिक वसा और मांस के न होने के कारण उनकी फड़क आसानी से मालूम हो सकती है। बहुधा कलाई में बहिः प्रकोष्ठिका धमनी (Radial artery) की परीक्षा की जाती है। आप चाहें तो धमनियों की फड़क इन स्थानों में मालूम कर सकते हैं।

१. कनपटी में कान के ठीक सामने।
२. ग्रीवा में टेंटुवे (Trachea) के दाहिनी ओर बाईं और उरः कर्णमूलिका पेशियों को दबाकर।
३. वंक्षण के मध्य में और्वी धमनी (Femoral artery) से।
४. पैर में अंगुष्ठ की ओर गट्टे के नीचे जंघा पश्चिमगा धमनी (Posterior tibial artery)
५. कोहनी में सामने की तरफ प्रगंडीया धमनी (Brachial artery)
५. बाहु में बगल की ओर वाले किनारे में प्रगंडीया धमनी। (Brachial artery)।

धमनी एक मिनट में उतने ही बार फड़कती है जितनी बार हृदय धड़कता है। नाड़ी-परीक्षा से हृदय और रक्त-भ्रमण की दशा का ज्ञान

होता है; उससे धमनियों और हृदय के रोगों का पता लग जाता है; रक्तवाहक संस्थान के अंगों के अतिरिक्त और भी कई अंगों के रोगों का निदान करने में उससे सहायता मिलती है। अमुक मनुष्य ने कल आलू का शाक खाया था या बेंगन का यह हमारी राय में नाड़ी-परीक्षा से नहीं जाना जा सकता; सब रोगों का निदान भी केवल नाड़ी परीक्षा ही से नहीं हो सकता।

लसीका (Lymph)

जब रक्त केशिकाओं में बहता है तो उनकी पतली-पतली दीवारों में से उसका कुछ तरल भाग चू कर बाहर निकल जाता है। इस चूए हुए तरल का नाम लसीका है। लसीका में वे पदार्थ घुले रहते हैं जिनकी सेलों को आवश्यकता रहती है जैसे शकर, प्रोटीन, वसा, लवण आदि। अंगों की सेलों और रक्त के बीच में तो केशिकाओं की दीवार रहती है परन्तु लसीका और सेलें एक दूसरे से बिलकुल मिले रहते हैं, यह समझो कि सेलें लसीका में स्नान किया करती है और उससे सदा भीगी रहती हैं। रक्त लसीका द्वारा ही सेलों का पोषण करता है।

जब सेलें काम करती हैं तो प्रोटीन आदि पदार्थों से रासायनिक क्रियाओं द्वारा बहुत-सी निकम्मी और विषैली वस्तुएँ बनती हैं—यूरिया, यूरिकअम्ल, कर्बनद्विओषित इत्यादि। ये सब वस्तुएँ लसीका में घुल जाती हैं।

हर एक स्थान में रक्तकेशिकाओं से भिन्न कुछ और केशिकाएँ भी रहती हैं; ये लसीका केशिकाएँ (Lymph capillaries) हैं। सेलों को पोषणकारक पदार्थ देकर और उनसे हानिकारक पदार्थ लेकर यह लसीका केशिकाओं में चला जाता है। इन केशिकाओं के परस्पर

मेल से पतली-पतली लसीका-वाहिनियाँ (Lymph vessels) बन जाती हैं। पतली लसीकावाहिनियों के एक दूसरे से मिलने से बड़ी-बड़ी लसीकावाहिनियाँ[१] बन जाती हैं। समस्त शरीर से इकट्ठा होकर लसीका दो नालियों में आ जाता है जिनमें से एक बड़ी होती है और एक छोटी, बड़ी नली महालसीकावाहिनी (Thoracic duct) कहलाती है (चित्र १६८)। इस नली का आरम्भ उदर के भीतर कमर के दूसरे मोहरे के गात्र के सामने होता है; उदर से यह वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी के एक छिद्र में से होकर वक्ष में पहुँचती है; वक्ष से ग्रीवा के बाएँ भाग में पहुँचती है। ग्रीवा में बाईं अक्षक के ऊपर ग्रीवा और बाईं उर्ध्व शाखा की शिराओं के संगम में जा मिलती है; जो लसीका उसमें होता है वह शिराओं के रक्त में जा मिलता है। महालसीका-वाहिनी की लम्बाई १५ से १८" इंच तक होती है। इस नली में इन इन स्थानों से लसीका आता है:—दोनों निम्न शाखाएँ; उदर, वक्ष का अधिक भाग; बाईं ऊर्ध्व शाखा; ग्रीवा और शिर का बायाँ भाग।

दाहिनी उर्ध्वशाखा और ग्रीवा के दाहिने भागों से लसीका एक छोटी नली में इकट्ठा होता है। यह नली लसीका को ग्रीवा की दाहिनी ओर की शिराओं के रक्त में मिला देती है।

हम जो कुछ लसीका के विषय में लिख चुके हैं उससे विदित है कि वह रक्त से ही निकलता है और फिर रक्त ही में जा मिलता है।

जो लसीका क्षुद्र अन्त्र की दीवारों से आता है उसमें वसा बहुत होती है क्योंकि भोजन से प्राप्त हुई वसा लसीका केशिकाओं के द्वारा

१. लसीकावाहिनियाँ बहुधा शिराओं के साथ-साथ या उनकी दीवारों से चिपटी हुई रहा करती हैं।

चित्र १६८ लसीका संचार

चित्र व्याख्या —

व = वक्ष; क = कटि; ५ से १२ तक = वक्ष के कशेरुका १,२ कटि कशेरुका, बा. ग. श = ग्रीवा के बाएँ भाग की बड़ी शिरा; बा. ऊ. श = बाई ऊर्ध्व शाखा की शिरा; द. ग. श = ग्रीवा के दाहिने भाग की शिरा; द. ऊ. श = दाहिनी ऊर्ध्व शाखा की शिरा।

जिन नलियों में नन्हें-नन्हें बिन्दु हैं वे *लसीकावाहिनियाँ* हैं।

ज = जननेंद्रियों की लसीका-वाहिनियाँ।

प = ये लसीकावाहिनियाँ वक्ष के नीचे के भागों की दीवार से लसीका को उदर में ले जाकर लसीका-कोष (Cisterna chyli) में डालती हैं।

अंत्र—ये अंत्र की लसीका वाहिनियां हैं; इनके द्वारा वसा अंत्र से आकर लसीका-कोष में पहुँचती है। लसीका कोष से महालसीकावाहिनी का आरम्भ होता है। यह लसीका को ग्रीवा में ले जाकर *शिराओं के रक्त में* मिला देती है।
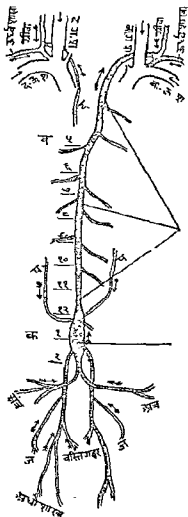
चित्र १६९ हाथ की लसीकावाहिनियां (Sappey)
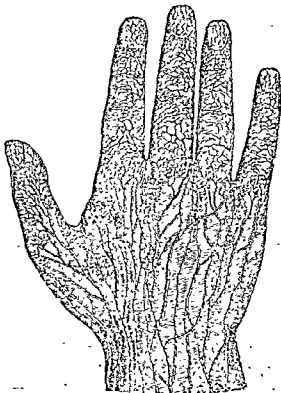
ही शरीर में पहुंचती है (देखो इस पुस्तक का दूसरा भाग, पोषण संस्थान)।

लसीका में कुछ श्वेत कण रहते हैं, इन कणों और रक्त के

"लसीकाणुओं" (Lymphocytes) में कोई भेद नही होता । रक्त की भाँति लसीका में जमने की शक्ति है । उसका रग रक्तवारि (Plasma) के रग जैसा होता है; क्षुद्र अन्त्र की दीवारों से जो लसीका आता है 'उसका रंग अधिक वसा के कारण दूधिया-सा (Chyle) होता है ।

लसीका-ग्रन्थियाँ

(Lymph glands) (चित्र १७०, १७१)

कक्षतल (Axilla) वंक्षण (Groin) और ग्रीवा में बहुत-सी छोटी-छोटी गुठलियों जैसी चीजें होती हैं; आरोग्यता में हम इनको टटोलने से अच्छी तरह स्पर्श नही कर सकते परन्तु जब रोगों के कारण ये बढकर बडी या सख्त हो जाती है तो ये सहज में टटोली जा सकती हैं। ये "लसीका-ग्रन्थियाँ" हैं । स्थानीय लसीकावाहिनियाँ इन ग्रन्थियो में से होकर जाया करती हैं। ये नलियाँ ग्रन्थि के एक सिरे या किनारे से जुडी रहती है, दूसरे किनारे या सिरे से एक नई नली आरम्भ होती है; जो लसीका पहली नली से इस गन्थि के भीतर पहुँचता है वह दूसरी नली के द्वारा ग्रन्थि से बाहर निकलता है (चित्र १७० में १, २) ग्रन्थियों का एक काम उन श्वेत कणों को बनाने का है जिनका वर्णन "क्षुद्र और वृहत् लसीकाणुओं" के नाम से हम पीछे कर चुके हैं। जब लसीका इन ग्रन्थियो में से होकर बहता है तो ये कण उसमें आ जाते हैं; और जब वह शिराओं के रक्त में मिलता है तो ये कण रक्त में पहुँच जाते हैं। लसीका-ग्रन्थियाँ विषनाशक वस्तुएँ भी बनाती हैं ।

कक्षतल, वंक्षण और ग्रीवा को छोड़कर ये ग्रन्थियाँ और स्थानों में भी रहती हैं जैसे वक्ष और उदर में । महामारी (प्लेग, ताऊन) में इन्ही

चित्र १७० लसीकाग्रन्थि की रचना (Sharpey from Schafer's Histology)
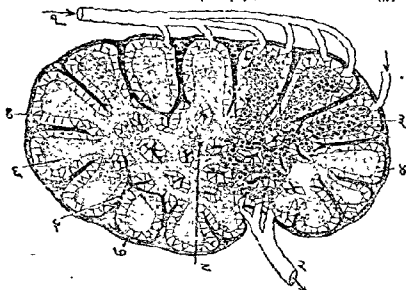
व्याख्या :—१ = इस लसीकावाहिनी द्वारा लसीका ग्रन्थि में पहुंचता है। २ = इस नली द्वारा लसीका ग्रन्थि से फिर बाहर निकलता है। ३ = ग्रन्थि की सेलें। ४ = इन स्थानों में लसीका रहता है। ५ = सौत्रिक तंतु से निर्मित इन दीवारों द्वारा ग्रन्थि के बहुत से नन्हें-नन्हें खंड (lobules) हो जाते हैं जिनमें सेलें भरी रहती हैं। ६ = ग्रन्थि का एक खंड। ७ = ग्रन्थि कोष (Capsule)। ८ = ग्रन्थि का केन्द्रिक भाग।

चित्र १७१ वक्ष की लसीका-ग्रन्थियां

१ = टेंटुवे के आस-पास रहने वाली लसीका-ग्रन्थियां। २ = अधर स्वरयांत्रिकी नाड़ी (Inferior laryngeal nerve)। ३ = टेंटुवा या श्वास प्रणाली। ४ = टेंटुवे और श्वास प्रणाली के पास की ग्रन्थियां (Tracheo-bronchial lymph glands)। ५, ६, ७ = फुफ्फुसीया ग्रन्थियां (Pulmonary glands)। ८ = टेंटुवा और श्वास प्रणाली सम्बन्धी नीचे की ग्रन्थियां (Inferior tracheo bronchial glands)

चित्र १७१ वक्ष की लसीका ग्रन्थियाँ
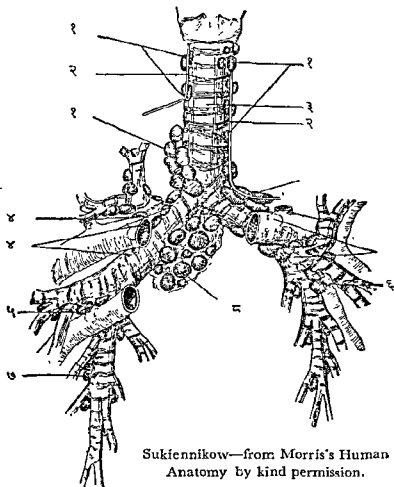
व्याख्या के लिये देखिये पृष्ठ ३०९

ग्रन्थियों का प्रदाह होता है, इनके सूजने और पकजाने को ही बद (Bubo) या गिल्टी का निकलना कहते हैं। पैर या टांग में फोड़ा बनने से जंघासे (वंक्षण) की गिल्टियां फूल जाती हैं; हाथ में जख्म या फोड़े होने के कारण कोहनी और कक्षतल की गिल्टियां फूल जाती हैं, कान में दर्द होने से कभी-कभी कान के सामने की गिल्टी फूल जाती है। फोड़ों या जख्मों के कारण लसीका-ग्रन्थियों के सूज जाने को "ओलमा" या "उलम्बा" कहते है; फोड़े या जखम के अच्छे हो जाने पर इन ग्रन्थियों की सूजन भी जाती रहती है। कभी-कभी गरदन में टेंटुवे के दोनों ओर की ग्रन्थियाँ सूजकर बड़ी हो जाती हैं, ये पककर पिलपिली भी हो जाया करती है, इस रोग को "बेल" या "कंठमाला" कहते है। फिरंग रोग (आतशक; Syphilis) में समस्त शरीर की लसीका-ग्रन्थियां बड़ी हो जाती हैं और छूने से कड़ी और सख्त मालूम होती है। वक्ष की लसीका-ग्रन्थियों के लिये देखो चित्र १७१।

बृहत् धमनी (Aorta) चित्र १७२

बाएँ क्षेपक कोष्ठ से बृहत् धमनी का आरम्भ होता है। यह धमनी पहले ऊपर को जाती है, कोई दो इंच ऊपर को जाने के पश्चात् बाईं ओर को मुड़ जाती है और फिर नीचे को जाती है और नब हृदय के पीछे रहती है। वक्ष के नीचे के भाग में पहुँच कर यह धमनी वक्ष उदर-मध्यस्थ पशी के एक छिद्र में से होकर उदर में पहुँचती है। उदर में इस धमनी के पीछे रीढ़ रहती है और उसके सामने अंत्र (आंत) की गेंडलियां। उदर में कमर के चौथे कशेरुका के गात्र के सामने यह धमनी दो बड़ी शाखाओं में विभक्त होकर खतम हो जाती है।

चित्र १७२ की व्याख्या

ग्र = दाहिना ग्राहक कोष्ठ; क्ष = दाहिना क्षेपक कोष्ठ; उ = उद्गामी महाधमनी (Ascending aorta)

१ = हृदय (Heart)

२ = दाहिनी हार्दिकी धमनी (Rt. coronary artery)

३ = बाईं हार्दिकी धमनी (Left coronary artery)

४ = मूल फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary artery)

५ = महाधमनी की महराब (Arch of aorta)

६ = कक्षीया धमनी (Axillary artery)

७ = दाहिनी मूल शिरोधीर्वतिनी (शिरोधीया) धमनी (Rt. common carotid artery)

७' = बाईं मूल शिरोधीर्वतिनी धमनी (Lt. common carotid artery)

८ = बाईं अक्षकाधोवर्तनी (अक्षकाधरा) धमनी (Lt. subclavian artery)

९ = दाहिनी ओर अक्षकाधरा और शिरोधीया धमनियाँ महाधमनी की महराब की पहली शाखा से निकलती हैं।

१० = मूल शिरोधीया धमनी की दो बड़ी शाखाएँ हो जाती हैं—अंतः-शिरोधीया (Internal carotid A) और बहिः-शिरोधीया (External carotid A)

११ = चुल्लिका ऊर्ध्व धमनी (Superior thyroid artery)

१२ = रासनिकी धमनी (दाहिनी) (Lingual artery Rt.)

१३ = मौखिकी धमनी (Facial A.)

१४ = अधो ओष्ठ्या धमनी (Inferior labial artery)

चित्र १७२
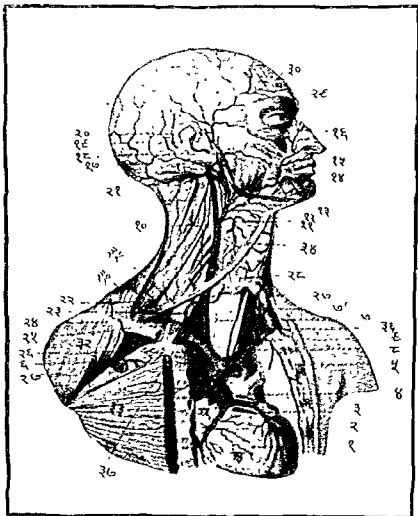
(From Masse's Atlas)

पृष्ठ ३१३ के सम्मुख

१५ = ऊर्ध्व ओष्ठ्या धमनी (Superior labial artery)
१६ = अंतः उपांग की धमनी (Angular A.)
१७ = (उपरितन) शांखिकी धमनी (Superficial temporal A.)
१८, १९, २० = शांखिकी की शाखाएँ
२१ = गुद्दी की धमनी (Occipital A.)
२२ = ग्रीवा की व्यत्यस्त धमनी (Transverse cavical A.)
२३ = चुल्लिकाधो धमनी (Inferior thyroid A.)
२४ = अंसोर्ध्व धमनी (Suprascapular A.)
२५ = कासेरुकी धमनी (Vertebral A.)
२६ = अंतःस्तनीया धमनी (Internal mammary A.)
२७ = २६ की एक शाखा
२८ = चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid gland)
२९ = नेत्रनिमीलनी पेशी (Orbicularis oculi M.)
३० = शिरच्छदा पेशी (अगला भाग) (Frontalis M.)
३१ = कर्णेस अंस अक्षका पेशी (Trapezius M.)
३२ = अंसच्छदा पेशी (Deltoid M.)
३३ = उरश्छादनी वृहती पेशी (Pectoralis major M.)
३४ = अंसकंठिका (अगला भाग) (Omo-hyoid superior belly)
३५ = अंसकंठिका (पिछला भाग) (Inferior belly of omohyoid)
३६ = कासेरुकी धमनी (Vertebral A.)
३७ = दाहिनी अक्षकाधोवर्तिनी धमनी (Subclavian A. Rt.)

आरम्भिक भाग का व्यास १ इंच से कुछ अधिक होता है अंतिम भाग का व्यास पौन इंच से अधिक नहीं होता।

वृहत धमनी के तीन भाग माने जाते है :—

१. उद्गामी (Ascending) (ऊपर को जानेवाला भाग) जो दो इंच लम्बा होता है।

२. महराब या धमनी का मुड़ा हुआ भाग (Arch)।

३. अधोगामी (Descending) भाग जो कमर के चौथे कशेरुका तक चला जाता है।

वृहत् धमनी की शाखाएँ

उद्गामी भाग से दो शाखाएँ निकलती हैं। जो हृदय का पोषण करने के कारण हार्दिकी धमनियाँ (Coronary arteries) कहलाती हैं (चित्र १६१, १६२, १७२)।

महराब से तीन बड़ी-बड़ी शाखाएँ निकलती हैं। इनमें पहिली सबसे बड़ी होती है; थोड़ी दूर ऊपर को जाकर यह वक्ष के भीतर ही दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है; इनमें से एक शाखा दाहिनी ऊर्ध्व शाखा का पोषण करती है, दूसरी ग्रीवा के दाहिने भाग में चली जाती है और ग्रीवा और शिर के दाहिने भाग का पोषण करती है। (चित्र १७२ में ९, ३७)।

शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति प्लेट ३४ चित्र १७३ धमनी ?
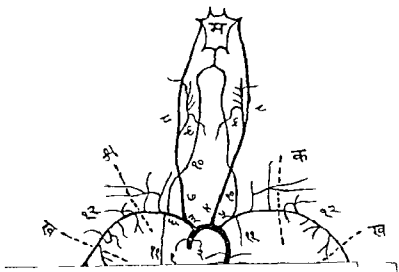
चित्र १७३ की व्याख्या

१, २ = दाहिनी और बाईं हार्दिकी धमनियाँ (Rt. & Lt. coronary arteries)

३ = अनामिका धमनी (Innominate A.)

४ = बाईं शिरोधीया धमनी (मूलिया) (Left common carotid A.)

५ = बाईं अक्षकाधोवर्तिनी धमनी (Left subclavian A.)

६ = दाहिनी अक्षकाधोवर्तिनी (Rt. subclavian A.)

७ = दाहिनी शिरोधीया धमनी (मूलिया) (Rt. common carotid A.)

८ = अंतः शिरोधीया धमनी (Internal carotid A.)

९ = बहिः शिरोधीया धमनी (External carotid A.)

१० = कशेरुकी धमनी (Vertebral A.)

११ = स्तनीया धमनी (Internal mammary A.)

१२ = कक्षीया धमनी (Axillary A.)

१३ = प्रगंडीया धमनी (Brachial A.)

१४ = बहिः प्रकोष्ठिका धमनी (Radial A.)

१५ = अंतः प्रकोष्ठिका धमनी ((Ulnar A.)

१६ = करतलिकी धमनी (महराब) (Deep palmar Arch)

१७ = करतलिकी धमनी (उपरितन महराब) (Superficial palmar arch)

१८ = आंगुलीया धमनी (Digital artery)

१९ = पर्शु कांतरिका धमनी (Intercostal A.)
२० = वक्षउदर मध्यस्थ ेशी को धमनी (Phrenic A.)
२१ = याकृती धमनी (Hepatic A.)
२२ = बाईं आमाशयिकी धमनी (Left gastric A.)
२३ = प्लैहिकी धमनी (Splenic A)
२४ = वृक्किका धमनी (Renal A.)
२५ = अंत्रोर्ध्व धमनी (Sup mesenteric A.)
२६ = आण्डिकी धमनी (Testicular A.)
२७ = अंत्राधः धमनी (Inf. mesenteric A.)
२८ = मध्य त्रिक धमनी (Median sacral A.)
२९ = श्रोणिमूलिया धमनी (Common iliac Aa.)
३० = बहिः श्रोणिगा धमनी (Ext. iliac A)
३१ = अंतः श्रोणिगा धमनी (Int. iliac A.)
३२ = और्वी धमनी (Femoral A.)
३३ = जान्विकी धमनियां (Genicular A.)
३४ = जंघा पश्चिमगा धमनी (*Post. tibial A.*)
३५ = जंघा पुरोगा धमनी (Ant. tibial A.)
३६ = जंघा पश्चिमगा धमनी (Post. tibial A.)
३७ = विवर्तनी धमनी (Peroneal A.)
३८ = गौल्फी धमनी (Malleolar A.)
३९ = पाद पृष्ठिका धमनी (Dorsalis pedis A.)
४० = पादतलिकी धमनी (Plantar arch)
४१ = पादांगुलीया धमनी (Digital arteries)

चित्र १७४

From Schultze—Lubosch's Topographische Anatomie

पृष्ठ ३१७ के सम्मुख

चित्र १७४ की व्याख्या

इस चित्र में पर्शुकांतरिका पेशियाँ, धमनियाँ, शिराएँ और नाड़ियां दिखाई गई हैं; नाड़ियों का पिंगल मंडल से सम्बन्ध भी दर्शाया गया है।

१ = अंतः पर्शुकांतरिका पेशी (Internal intercostal M.)
२ = पर्शुकांतरिका शिरा (Intercostal vein)
३ = पर्शुकांतरिका धमनी (intercostal artery)
४ = पर्शुकांतरिका नाड़ी (Intercostal nerve)
५ = परिफुप्फुसीया कला (Pleura)
६ = पिंगला नाड़ी (Sympathetic nerve)
७ = पर्शुकांतरिका शिरा (Intercostal vein)
८ = ,, धमनी (Intercostal artery)
९ = अजाइगोस शिरा[1] (Azygos vein)
१० = पिंगला गंड (Sympathetic ganglion)

महराब की दूसरी शाखा से ग्रीवा और शिर के बाएँ भाग का पोषण होता है। तीसरी शाखा बाईं उर्ध्व शाखा का पोषण करती है।

अधोगामी बृहत् धमनी से बहुत-सी शाखाएँ निकलती हैं। वक्ष में य शाखाएँ उसम रहने वाले अंगों का पोषण करती हैं जैसे फुप्फुस, अन्नप्रणाली, लसीका-ग्रन्थियाँ, वायुप्रणालियाँ; इन शाखाओं के अतिरिक्त नौ जोड़े धमनियों के और निकलते हैं; ये धमनियाँ पसलियों के बीच में रहती हैं और वक्ष की दीवारों का पोषण करती हैं (चित्र १७३, १७४)।

१. अंगरेजी शब्द

उदर में पहुँचकर यह धमनी बहुत-सी शाखाएँ देती हैं जिनसे उदरस्थ अंगों का पोषण होता है जैसे आमाशय, यकृत्, प्लीहा, अन्त्र, वृक्क, इत्यादि (चित्र १७३)।

प्रत्येक अंतिम शाखा की दो शाखाएँ हो जाती हैं जिनमें से एक वस्ति गह्वर में चली जाती है और वहाँ रहने वाले अंगों का पोषण करती है (चित्र १७३)।

दूसरी शाखा बड़ी होती है; यह वंक्षण से जाँघ में चली जाती है और निम्न शाखा का पोषण करती है।

ग्रीवा (Neck) की धमनियाँ (चित्र १७२, १७३, १७५)

ग्रीवा में दो बड़ी धमनियाँ रहती हैं। एक टेंटुवे के दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर। टेंटुवे के इधर-उधर अंगुली से दबा कर इनकी फड़क मालूम की जा सकती है। यह शिरोग्रीया या शिरोग्रीवर्तिनी धमनी (Common carotid A.) है। ग्रीवा के ऊपर के भाग में हरएक धमनी की दो शाखाएँ हो जाती हैं। एक शाखा कुछ दूर ऊपर चढ़ने के पश्चात् कपाल की तली तक पहुँचती है, और एक छिद्र में से उसके भीतर घुस जाती है। और मस्तिष्क का पोषण करती है। दूसरी शाखा कपाल के बाहर रहने वाले अंगों का (जसे चेहरा) पोषण करती है। इसकी दो शाखाओं की फड़क मालूम की जा सकती है :—एक तो कान के सामने कनपटी की धमनी की, दूसरी निम्नहनु के ऊपर समकोण से एक इंच आगे। पहली धमनी उपरितन शंखिकी (Superficial temporal) कहलाती है और दूसरी मौखिक (Facial)

ऊर्ध्वशाखा की धमनी (चित्र १७२, १७३, १७६,)

दाहिनी ओर की धमनी वक्ष में महराब की पहली शाखा से

चित्र १७५ (Esmarch)
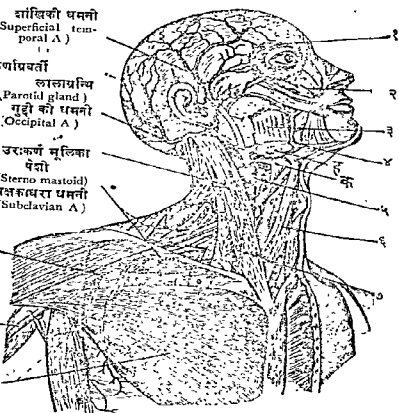
१ = नेत्रनिमीलनी पेशी; (Orbicularis oculi) २ = ऊर्ध्वो-गत चतुरस्रा पेशी (Levator labii superioris alaque asi); ३ = चर्वणी पेशी (Masseter M.); ४ = मौखिकी मनी (Facial A.) ५ = शिरोधोवर्तिनी की दो शाखाएं हो रही है

(Bifurcation of Common carotid A.); ६ = उरः कंठिका पे० (Sterno hyoid); ७ = शिरोग्रीवर्तिनी धमनी (Common carotid A.); ह = हन्विधोवर्ती लालाग्रन्थि (Submandibular gland); क = कंठिकास्थि (Hyoid bone); ८ = कक्षीया धमनी (Axillary artery); ९ = प्रगंडीया धमनी (Brachial A.); १० = उरश्छादनी बृहती पेशी (Pectoralis major M.)

निकलती है, बाईं सीधी महराव से निकलती है (चित्र १७२ में ३७, ८) पहले ऊपर को ग्रीवा की ओर चढकर अक्षक तक पहुँचती है; यहाँ इससे कई शाखाएँ निकलती हैं जो ग्रीवा के नीचे के भाग का पोषण करती है; एक शाखा (कार्शेरुकी) ऊपर को जाती है और कपाल के भीतर पहुँच कर मस्तिष्क का पोषण करती है (देखो चित्र १७२ में २५)। अब यह धमनी अक्षक और पहली पसली के बीच में होकर कक्षतल या बगल में पहुँचती है; यहाँ भी बहुत-सी शाखाएँ निकलती हैं। कक्षतल से यह धमनी बाहु में आ जाती है; यहाँ वह वक्ष की ओर और प्रगंडास्थि के समीप रहती है; (चित्र १७५ में ९)। बाहु को दबा कर उसकी फड़क मालूम की जा सकती है। बाहु में कई शाखाएँ देकर यह धमनी कोहनी के सामने के भाग में आती है और यहाँ उसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं। ये दोनों शाखाएँ शेष ऊर्ध्वशाखा अर्थात् प्रकोष्ठ और हस्त का पोषण करती है।

एक शाखा अन्तः प्रकोष्ठास्थि के साथ-साथ रहती है; दूसरी वहिः प्रकोष्ठास्थि के साथ-साथ (चित्र १८०)। प्रकोष्ठ के ऊपर के भाग में मांस से खूब ढके रहने के कारण ये धमनियाँ टटोली नहीं जा सकती। नीचे जाकर वहिः प्रकोष्ठिका धमनी (Radial A.) केवल थोड़ी-सी

वसा और त्वचा से ही ढकी रहती है और कलाई के सामने अँगुली से दवाकर उसकी फड़क सहज में मालूम की जा सकती है। धमनी परीक्षा में इसी धमनी से काम लिया जाता है। अंत.प्रकोष्ठिका धमनी भी टटोली जा सकती है परन्तु इतनी आसानी से नहीं क्योंकि वह अधिक ढकी रहती है।

हस्ततल में इन दोनों से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं; कई शाखाओं के मेल से धमनियों की महरावें बन जाती हैं। इन महरावों से जो शाखाएँ निकलती हैं उनसे अँगुलियों का पोषण होता है। अँगुलियों के दोनों किनारों पर एक-एक धमनी रहती है (रंगीन चित्र १७६)।

चित्र १७६ की व्याख्या

हाथ की धमनियाँ

नोट :—गहरे रंग की धमनियाँ उपरितन है और हल्के रंग की गम्भीर।

१ = अस्थ्यांतरिका पुरोगा ध० (Ant. interosseous A.)
२ = बहिः प्रकोष्ठिका ,, (Radial A.)
३ = बहिः मणिका पुरोगा ,, (Anterior carpal A. —radial)
४ = उपरितन पुरोगा ,, (Superficial palmar A.)
५ = बहिः मणिका पश्चिमगा ,, (Post. carpal A.)
६ = बहिः प्रकोष्ठिका ,, (Radial A.)
७ = पहली करभीया पश्चिमगा (1st. dorsal metacarpal A.)
८ = दूसरी करभीया पश्चिमगा (2nd. dorsal metacarpal A.)

९ = अंगुष्ठीया विशेषा (Princeps pollicis A.)
१० = पहली करभीया पश्चिमगा (First dorsal metacarpal A.)
११ = प्रदेशिनी बहिःस्था ध० (Radialis indices A.)
१२ = आंगुलीया पश्चिमगा (Dorsal digital A.)
१३ = आंगुलीया पुरोगा (Palmar digital A.)
१४ = आंगुलीया पुरोगा की पहली पश्चिमगा शाखा (First dorsal branch of palmar digital A.)
१५ = आंगुलीया पुरोगा की दूसरी पश्चिमगा शाखा (2nd. dorsal branch of palmar digital A)
१६ = आंगुलीया पुरोगा धमनियों का संगम (Anastomosis of palmar digital Aa.)
१७ = अंतः प्रकोष्ठिका ध० (Ulnar A.)
१८ = अन्तः मणिका पुरोगा (Anterior carpal A.-ulnar)
१९ = अन्तः मणिका पश्चिमगा (Post. carpal A.)
२० = गंभीर अन्तः प्रकोष्ठिका ध० (Deep branch of ulnar A.)
२१ = उपरितन महराब (Superficial palmar arch)
२२ = मणिका प्रत्यावर्त्ती ध० (Carpal recurrent A.)
२३ = वेधनिका पश्चिमगा (Dorsal perforating Aa.)
२४ = करभीया पुरोगा (Palmar metacarpal Aa.)
२५ = मूल आंगुलिया पुरोगा (Common digital Aa.)
२६ = करभीया पश्चिमगा (Dorsal metacarpal Aa.)
२७ = मूल आंगुलीया पुरोगा (Common palmar digital A.)
२८ = वेधनिका पुरोगा (Palmar perforating Aa.)
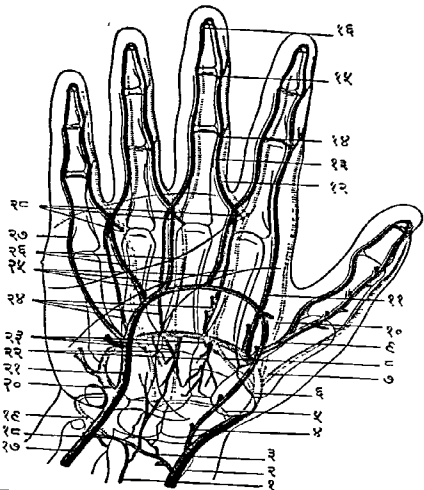
चित्र १७६

From Morris's Human Anatomy *by kind permission*

पृष्ठ १२२ के सम्मुख

(From Morris's Human Anatomy)

पृष्ठ ३२३ के सम्मुख
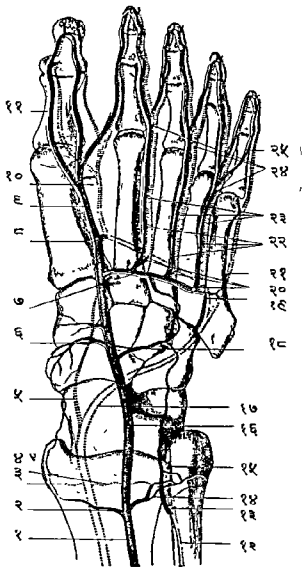
चित्र १७७ की व्याख्या

पैर की धमनियाँ

१ = जंघा पुरोगा (Anterior tibial A.)
२ = अंतः गौल्फी (Medial malleolar A.)
३ = जंघा पश्चिमगा की गौल्फी शाखा (Malleolar branch of Post. tibial A.)
४ = जंघा पश्चिमगा और विवर्तनी का संयोग (Communicating branch between post. tibial and Peroneal Aa.)
५ = अंतः पादतलिकी (Medial plantar A.)
६ = अंतः प्रपाद (Medial tarsal branch)
७ = धनुषाकारा (Arcuate A.)
८ = गम्भीर पादतलिकी (Deep plantar A.)
९ = पहली पादपृष्ठ प्रपादीया (1st dorsal metatarsal A.)
१० = पहली पादतल प्रपादीया (1st. plantar metatarsal A.)
११ = प्रथम पाद पृष्ठ प्रपादीया की अंगुलीया शाखा (Digital branch of the 1st dorsal metatarsal A.)
१२ = विवर्तनी (Peroneal A.)
१३ = वेधनिका विवर्तनी (Perforating br. of peroneal A.)
१४ = बाह्य गौल्फी (Lateral malleolar br.)
१५ = विवर्तनी पश्चिमगा (Calcanean branch)
१६ = पादपृष्ठिका (Dorsalis pedis A.)

१७ = बाह्य पादतलिकी (Lateral plantar A)
१८ = बाह्य कौर्ची (Lateral tarsal br.)
१९ = बाह्य पादतलिकी (Lat. plantar A.)
२० = बेधनिका पश्चिमगा (Post. perforating A.)
२१ = कनिष्ठा की बाहरी ओर की पादतलिकी आंगुलीया (Lateral plantar digital A. for the little toe).
२२ = धनुषाकार धमनी की २, २, ३, ४, पादपृष्ठ प्रपादीया (2nd, 3rd and 4th dorsal metatarsal branches of the Arcuate A.)
२३ = २, ३, ४ पादतलिकी प्रपादीया (2nd, 3rd & 4th plantar metatarsal arteries)
२४ = बेधनिका पुरोगा (Ant perforating Aa.)

निम्न शाखा की धमनियाँ (चित्र १७३, १७७, १७९)

निम्न शाखा की धमनी उदर से निकलकर वक्षण में पहुँचती है। वंक्षण के मध्य में जननेन्द्रियों से कुछ दूरी पर उसकी फड़क मालूम की जा सकती है। जाँघ के नीचे के भाग में पहुँच कर यह धमनी पीछे चली जाती है और जानु के पीछे होकर टाँग के ऊपर के भाग में पहुँचती है (चित्र १४१) (जब जानु मुड़ता है अर्थात् जब टाँग जाँघ पर मुड़ती है तो जानु के पिछले भाग में एक गढ़ा पड़ जाता है; धमनी इसी स्थान में रहती है; इस गढ़े में जोर से दबाकर उसकी फड़क मालूम की जा सकती है)। यहाँ उसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं; एक धमनी दोनो अस्थियों के बीच में होकर टाँग के सामने के भाग में आ जाती है; दूसरी टाँग के पिछले भाग का पोषण करती है। अगली धमनी शाखाएँ
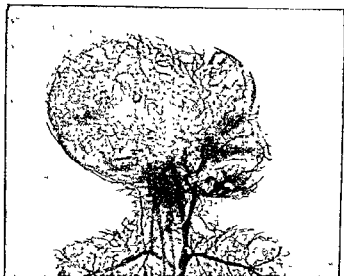
चित्र १७८

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट ३८

चित्र १८० बालक की ऊर्ध्व शाखा की धमनियों का एक्स-रे चित्र
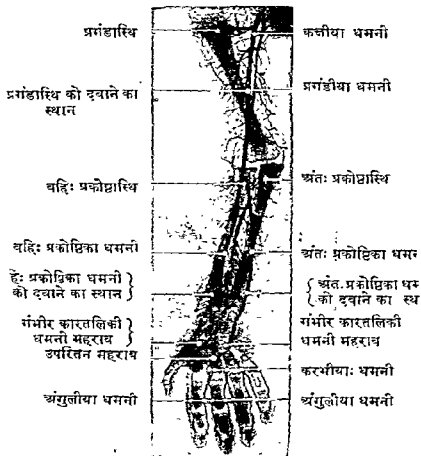
om Orrin's First Aid X-Ray Atlas of Arteries by
mission

चित्र १७८ के सम्मुख

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवाँ आवृत्ति— प्लेट ३८

चित्र १८१ बालक की अधोशाखा की धमनियों का एक्स-रे चित्र
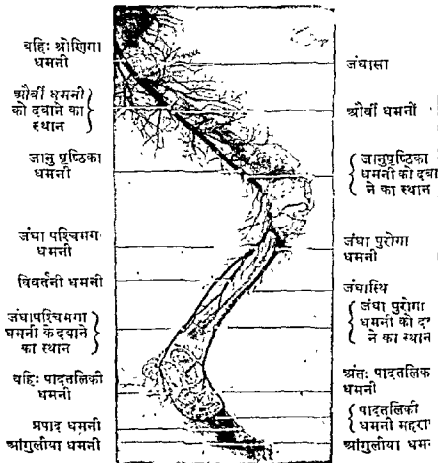
From Orrin's First Aid X-Ray Atlas of Arteries by permission

पृष्ठ ३२५ के सम्मुख

देती हुई पैर में पहुँचती है और यहाँ से पहली और दूसरी प्रपादास्थियों के बीच में होकर पैर के तले में चली जाती है।

पिछली धमनी पिंडली में बहुत-सी शाखाएँ देती है और अंगुष्ठ की ओर के गट्टे के नीचे होकर तले में पहुँचती है। इस गट्टे और एड़ी के बीच में इसकी फड़क मालूम की जा सकती है।

तले में दोनों धमनियों के मेल से एक महराब बन जाती है जिससे पतली-पतली शाखाएँ निकलती हैं; ये अंगुलियों का पोषण करती है (देखो रंगीन चित्र १७७)।

धमनियों की नामकरण विधि

धमनियों के नाम बहुधा उन स्थानों और अंगों के पीछे रक्खे जाते हैं जिनका वे पोषण करती हैं जैसे चक्षु का पोषक करने वाली धमनी चाक्षुषी धमनी (Ophthalmic A.) कहलाती है; ऐसे ही आमाशयिकी धमनी (Gastric A.), फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary A.), हार्दिकी धमनी (Coronary A.), पक्वाशयिकी धमनी (Duodenal A.), मौखिकी धमनी (Facial A.)। इसी प्रकार अक्षकाधोवर्तिनी (Subclavian A.), कक्षीया (Axillary A.), प्रगंडिया (Brachial A.), अन्तः प्रकोष्ठिका (Ulnar A.), बहि. प्रकोष्ठिका (Radial A.), करतलिकी (Metacarpal A.), आंगुलीया (Digital A.), मूलश्रोणिगा (Common iliac A.), अंतः श्रोणिगा (Internal iliac A.), बहिः श्रोणिगा (External iliac A.), और्वी (Femoral A.), नैतंबिकी (Gluteal A.), जंघापुरोगा (Ant. tibial A.), जंघापश्चिमगा (Post. tibial A.), गौल्फी (Malleolar A.), कौर्च्ची (Tarsal A.), पादतलिकी (Metatarsal A.), मूलशिरोधोवर्तिनी

या शिरोग्रीया (Common carotid A.), कशेरुकी (Vertebral A.), काकिकी (Pharyngeal A.), तालविकी (Palatine A.), शङ्खिकी (Temporal A.), हानविकी (Maxillary A.), रासनिकी (Lingual A.), शष्कुलीया (Auricular A.), ग्रैवेयी (Cervical A.), आश्रवी (Lacrimal A.), स्वरयन्त्रिकी (Laryngeal A.), पर्शुकान्तरिका (Intercostal A.), स्तनीया (Mammary A.), कटिकी (Lumbar A.), याकृती (Hepatic A.), प्लैही (Splenic A.), वृक्किका (Renal A.), आण्डिका (Testicular A.), यौनी (Vaginal A.), गर्भाशयिकी (Uterine A.), अंत्रोर्ध्व (Sup. mesenteric A.), अंत्राधः (Inf. mesenteric A.) इत्यादि इत्यादि।

धमनियों की संख्या

जब किसी बड़ी धमनी का वर्णन किया जाता है तो उसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ गिनाई जाती हैं; छोटी-छोटी शाखाएँ नहीं गिनी जाती क्योंकि जब धमनी किसी अंग में प्रवेश करती है तो उससे अनेक शाखाएँ फूटती हैं जिनका गिनना असम्भव और व्यर्थ है। देखो एक्स-रे चित्र १७८, १७९, १८०, १८१)

शिराएँ

जो रक्त किसी अंग में धमनी द्वारा जाता है वह शिरा द्वारा उससे बाहर निकलता है। बहुधा शिरा और धमनी पास-पास रहती हैं; जिस स्थान पर धमनी अंग के भीतर घुसती है उसी स्थान से शिरा बाहर निकलती है। कभी-कभी शिरा और धमनी दूर-दूर रहती हैं। कहीं-कहीं जो रक्त एक धमनी द्वारा अंग में जाता है वह एक से अधिक शिराओं

चित्र १८२ की व्याख्या

१ = दाहिनी मूल शिरोधीया धमनी (Rt. common carotid A.)
२ = दाहिनी शिरोधीया शिरा (Rt. Internal jugular V.)
३ = दाहिनी लसीकावाहिनी (Rt. Lymphatic duct)
४ = अनामिका धमनी (Innominate A.)
५ = दाहिनी दशमी नाड़ी (Rt. Vagus N.)
६ = दा० अनामिका शिरा (Rt. Innominate V.)
७ = अन्तरीय स्तनीय शिरा (Internal mammary V.)
८ = हृदयावरण तथा थाइमस की शिरा (Trunk of pericard-) ial and thymic V.)
९ = ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava)
१० = एजाइगोस शिरा (Azygos vein)
११ = पर्शुका (Rib)
१२ = हेमीएजाइगोस शिरा (Hemiazygos V.)
१३ = याकृती शिराएँ (Hepatic veins)
१४ = अधोगा महाशिरा (Inferior vena cava)
१५ = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी की नीचे की दाहिनी धमनी (Rt. Inf. Phrenic A.)
१६ = धमनी जिसकी याकृती, आमाशयिकी और प्लैहिकी नामक तीन शाखाएँ होती हैं (Coeliac A.)
१७ = दाहिनी ओर की मध्य उपवृक्किका धमनी (Rt. middle suprarenal A.)
१८ = दाहिना वृक्क (Rt. Kidney)
१९ = दाहिनी आण्डिकी धमनी (Rt. testicular A.)
२० = दाहिनी आण्डिकी शिरा (Rt. testicular V.)

२१ = कटिचतुरस्रा पेशी (Quadratus lumborum M.)
२२ = जघनचूड़ा (Iliac crest)
२३ = बाईं मूलशिरोधीया धमनी (Lt. common carotid A)
२४ = बाईं दशमी नाड़ी (Lt. vagus N)
२५ = महालसीका वाहिनी (Thoracic duct)
२६ = बायीं अनामिका शिरा (Lt. Innominate V.)
२७ = बाईं अक्षकाधोवर्तिनी धमनी (Lt. subclavian A.)
२८ = पर्शुकांतरिका उत्तमा शिरा (Lt. Superior intercostal V.)
२९ = बाईं स्वरयंत्राधः नाड़ी (Lt. Recurrent laryngeal N.)
३० = सहायक हेमीएज़ाइगोस शिरा (Accessory hemiazygos V.)
३१ = अन्नप्रणाली (Oesophagus)
३२ = अन्नप्रणाली की धमनियाँ (Oesophageal Aa.)
३३ = हेमीएज़ाइगोस शिरा (Hemiazygos V.)
३४ = महालसीका वाहिनी (Thoracic duct)
३५ = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी की बाईं धमनी (Lt. ins Phrenic A.)
३६ = बाईं ओर की मध्य उपवृक्किका धमनी (Lt. suprarenal A.)
३७ = लसीका-कोष (Cisterna chyli)
३८ = अंत्रोर्ध्व धमनी (Sup. Mesenteric A.)
३९ = बाईं कटिकी शिरा (Lt. Lumbar V.)
४० = बाईं आण्डिकी शिरा (Lt. Testicular vein)
४१ = अंत्राधः धमनी (Inf. Mesenteric A.)
४२ = मूत्रप्रणाली (Ureter)
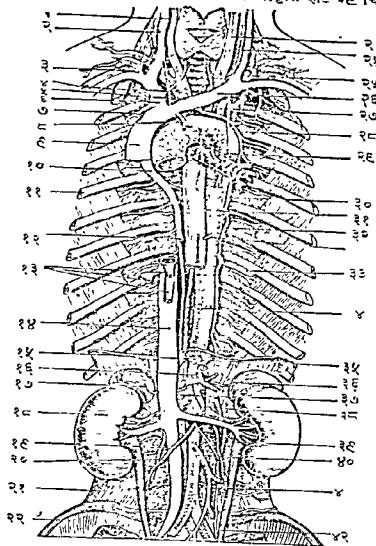
(From Morris's Anatomy—By permission)

पृष्ठ ३५८ के सम्मुख
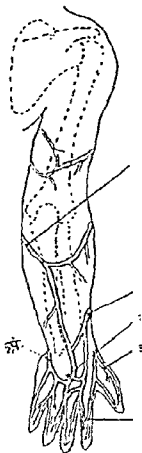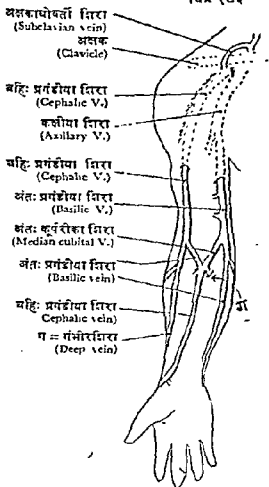
१ = अंतः प्रगंडीया सिरा (Basilic vein)   २ = कर पृष्ठ सिरा महराब (Dorsal venous arch)   ३ = आंगुलीया सिरा (Digital vein)

चित्र १८५ की व्याख्या

१ = पादांगुलीया शिरा (Digital vein of foot)
२ = उर्वंतः पार्श्विका शिरा (Long saphenous V.)
३ = गंभीर जंघिल शिरा (Ant. tibial V.)
४ = जंघा बहिः पार्श्विका शिरा (Short saphenous V.)
५ = जानु पृष्ठिका शिरा (Popliteal V.)
६ = और्वी शिरा (Femoral V)
७ = बाह्य श्रोणिगा शिरा (External iliac V.)
७' = अंतः श्रोणिगा ,, (Internal iliac V.)
८ = संयुक्ता (मूल) श्रोणिगा (Common iliac vein)
९ = अधोगा महाशिरा (Inf. vena cava)
१० = आंडिकी या डिम्बिकी (दाहिनी) (Rt. testicular or ovarian V.)
१०' = बायीं आंडिकी या डिम्बकी (Lt. testicular or ovarian V.)
११ = वृक्किका शिरा (Renal V.)
१२ = अंत्रोर्ध्व शिरा (Sup. mesenteric V.)
१३ = अंत्राधो ,, (Inf. mesenteric V.)
१४ = प्लैहो ,, (Splenic V.)
१६ = संयुक्ता शिरा (Portal vein)
१७ = संयुक्ता शिरा (Portal vein)
१८ = याकृती शिरा (Heptic V.)
१९ = हस्तांगुलीया शिरा (पृष्ठ की) (Dorsal digital veins of hand)
२० = हस्ततल की शिरा (Vein of palm)
२१ = बहिः प्रकोष्ठिका (Vein of radial side)
२२ = अंतः प्रकोष्ठिका (Vein of ulnar side)
२३ = बहिः कूर्परीका (Lateral cubital V)
म = मध्य प्रकोष्ठिका (Median antebrachial V.)
२४ = अंतः कूर्परीका (Median cubital V.)

चित्र १८५ शिराएँ

पृष्ठ ३३० के म
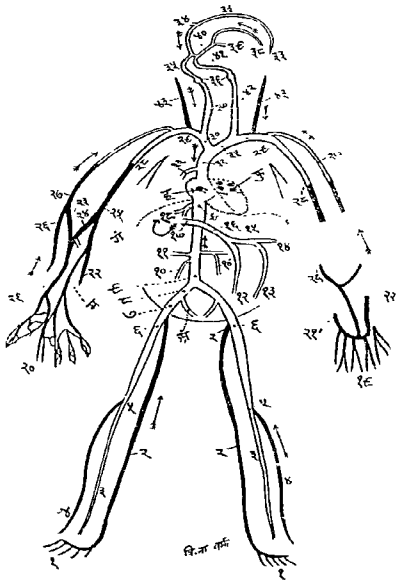
चित्र १८६ की व्याख्या

धड़ की शिराएँ

१ = पर्शुकांतरिका शि० (Intercostal vein) ; इनका रक्त एक शिरा में जाता है जो पीछे रीढ़ के पास रहती है और जिसको अजाइगोस शिरा (चित्र में २) कहते हैं।

२ = अजाइगोस शिरा (Azygos vein) जो ऊर्ध्वगा महाशिरा में जाकर खुलती है

३ = ऊर्ध्वगा महाशिरा (Sup. vena cava).

४ = दाहिनी गम्भीर शिरोग्रीवा शिरा (Rt. Internal jugular V.)

५ = दा० अक्षकाधोवर्ती (Rt. Subclavian V.)

६ = बाईं अनामिका शिरा (Lt. Innominate V.)

७ = गम्भीर स्तनीय शिरा (Internal mammary V.)

८ = पर्शुकांतरिका उत्तमा शिरा (Sup. intercostal V.)

९ = कटिकी शिराएँ (Lumbar veins)

१० = हेमी अजाइगोस शिरा (Hemiazygos V.)

११ = उपरितन उदराधः (बाईं) शिरा (Inferior epigastric V. left).

१२ = सरलांत्रीय शिरा जाल (अर्श शिरा जाल) (Haemorrhoidal venous plexus)

१३ = दा० बाह्य श्रोणिगा शिरा (Rt. External iliac V.)

१४ = दा० अंतः श्रोणिगा शिरा (Rt. Internal iliac V)

१५ = बा० मूल श्रोणिगा शिरा (Lt. Common iliac V.)

१६ = ऊर्ध्वगा कटिकी शिरा (Ascending lumbar V.).

१७ = संयुक्ता शिरा (Portal Vein).

१८ = अधोगा महाशिरा (Inf. Vena Cava).

१९ = याकृती शिरायें (Hepatic Veins).
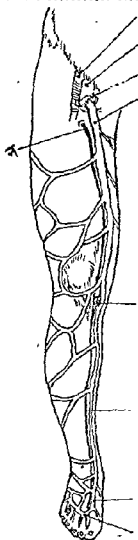
और्वी धमनी (Femoral A.).

और्वी गंभीर सिरा (Femoral V.)

अंडाकार खात (Fossa ovalis)

ऊर्वंतः पार्श्विका सिरा (Long Saphenous V.)

न = ऊर्वंतः पार्श्विका नाड़ी (Saphenous nerve)

न

ऊर्वंत पार्श्विका नाड़ी (Saphenous N.)

" "

" "

पाद पृष्ठ सिरा महराब (Dorsal venous arch)

चित्र १८७ अधोशाखा की उपरिस्थ सिराएं (Superficial veins of inf. extremity).

द्वारा बाहर निकलता है । बड़ी बड़ी शिराएँ धमनियों के समान मांसादि से खूब ढकी रहती हैं । पतली या गोरी त्वचा से चमकती हुई नीली धारियाँ दिखाई दिया करती हैं; ये पतली-पतली उपरितन शिराएँ (Superficial veins) होती हैं ।

शिराओं के नाम बहुधा वही होते हैं, जो उनकी साथ की धमनियों के । शिराओं के लिए (देखो चित्र १८५. १८६. १८७) ।

अध्याय ११

श्वासोच्छ्वास संस्थान
(Respiratory system)

शरीर में सेलों के टूटने-फूटने और काम करने के समय भाँति-भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होने से अनेक प्रकार के पदार्थ बनते रहते हैं। इनमें से बहुत से पदार्थों के शरीर के भीतर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ पदार्थ तो ऐसे भी होते हैं कि यदि वे शरीर में अधिक देर तक रहें, तो बहुत से विकारों के उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है। इस कारण इन पदार्थों को बाहर निकालने का प्रबन्ध शरीर में किया गया है। कई इन्द्रियों का यह काम है कि जब रक्त उनमें जावे, तो वे उसमें से हानिकारक पदार्थ निकाल लें और फिर इन पदार्थों को श्वास, मूत्र और पसीने द्वारा शरीर से बाहर निकाल दें।

रक्त को शुद्ध करने वाले मुख्य अंग ये हैं—

१. फुफ्फुस (Lungs)

२. वृक्क (Kidneys)

३. त्वचा (Skin)

इनके अतिरिक्त यकृत्, प्लीहा और अन्य कई ग्रन्थियाँ भी रक्त की शुद्धि करने में सहायता देती हैं।

फुफ्फुसों द्वारा रक्त की शुद्धि

फुफ्फुसों द्वारा शरीर से तीन चीजें बाहर निकलती हैं और एक चीज़ उसमें प्रवेश करती है। बाहर निकलने वाली चीजें ये हैं :—

चित्र १८९ की व्याख्या

दाहिना फुप्फुस अंतः पृष्ठ

(Rt. lung-medial surface)

१, १ = अन्नप्रणाली परिखा (Groove for oesophagus)
२ = शिरा परिखा (Groove for azygos vein)
३–४ = ऊर्ध्व अधरखंड अन्तर (Fissure separating upper from middle & lower lobes)
५ = ऊर्ध्व महाशिरा परिखा (Groove for superior vena cava)
६ = ऊर्ध्वखंड-मध्यखंड अन्तर (Transverse fissure)
७ = अक्षकाधरा धमनी परिखा (Groove for subclavian A.)
८ = फुप्फुस की तली जो नतोदर होती है (Base)
९ = परिफुप्फुसीया कला (Pleura-cut)
१० = फुप्फुस-मूल बंधन (Pulmonary lig.)
११ = शिरा (Vein)
ग = लसीका ग्रन्थि; (Lymph gland)
व = वायु प्रणाली (Bronchus)
श = फुप्फुसीया शिरा (Pulmonary V.)
ध = फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary A.)
शिखर से प तक = पिछला किनारा (Post. border)
शिखर से अ तक = अगला किनारा (Ant. border)

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट ४१

चित्र १८८ फुप्फुस (सामने का भाग) (Bonamy's Atlas)

फुप्फुस (पिछला भाग)

पृष्ठ ३३६ के सम्मुख

चित्र १९० प्लेट ४१

पृष्ठ ३३७ के सम्म
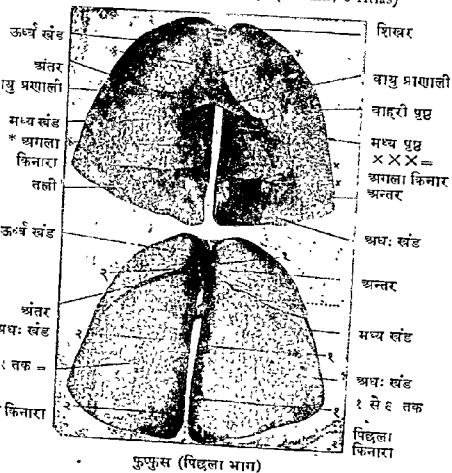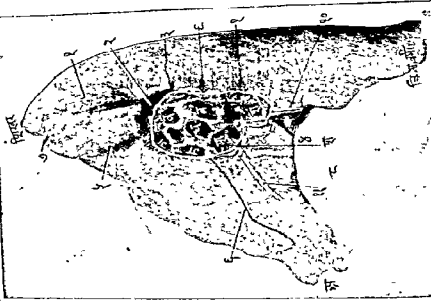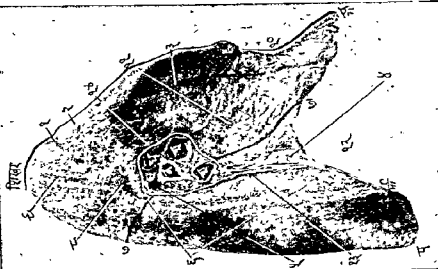
चित्र १९० की व्याख्या

बायां फुप्फुस अंतः पृष्ठ

(Left lung-medial surface)

१ = अनामिका शिरा परिखा (Groove for innominate V.)

३ = वक्षउदर मध्यस्थ नाड़ी परिखा (Groove for phrenic N.)

४ = यहां अन्नप्रणाली रहती है (For oesophagus)

५ = लसीका ग्रन्थि (Lymph gland)

६ = महाधमनी परिखा (Groove for descending Aorta)

७ = ऊर्ध्वखंड अधर खंड अंतर (Fissure between superior & inferior lobes) .

८ = महाधमनी की महराब की परिखा (Groove for the arch of aorta)

९ = अक्षकाधोवर्तिनी धमनी परिखा (Groove for subclavian A.)

११ = यहां हृदय रहता है (Cardiac impression)

१२ = फुप्फुस की तली (Base)

१३ = फुप्फुस बंधन (Pulmonary lig.)

१४ = परिफुप्फुसीया कला (Pleura cut)

ध = फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary artery)

व = वायु प्रणाली (Bronchus)

शा = फुप्फुसीया शिरा (Pulmonary vein)

शिखर से अ तक = अगला किनारा (Ant. border)

शिखर से प तक = पिछला किनारा (Post. border)

१. कर्बनद्विओषित गैस (Carbon-di-oxide gas)

२. उड़नशील (Volatile) हानिकारक पदार्थ

३. जलीय वाष्प (Water vapour)

जो चीज़ शरीर ग्रहण करता है, वह ओषजन (Oxygen) गैस है।

फुफ्फुस या फेफड़ा (Lung)

(चित्र १८८, १८९ १९०)

फुफ्फुस दो होते हैं। वे वक्ष (छाती) में हृदय के दाहिनी और बाईं ओर रहते हैं (चित्र १८८) दाहिना फुफ्फुस बाएँ की अपेक्षा अधिक चौड़ा और भारी होता है। फुफ्फुस कुछ-कुछ गावदुमी या शंक्वाकृति (Conical) होता है; एक ओर पतला और कम चौड़ा होता है; दूसरी ओर मोटा और अधिक चौड़ा होता है। पतला और नोकीला भाग जिसको फुफ्फुस का शिखर (Apex) कहते हैं गर्दन की ओर अक्षकास्थि के पीछे रहता है; मोटा और चौड़ा भाग, जो तली या अधोभाग (Base) कहलाता है, नीचे को उदर की ओर रहता है और उस परदे पर रक्खा रहता है जिसका नाम वक्षउदरमध्यस्थ पेशी (Diaphragm) है (देखो चित्र १९६, १९८)। इस परदे द्वारा वक्ष की कोठरी उदर की कोठरी से जुदा होती है (चित्र २०१); इसमें नलियों के आने-जाने के लिये कई छिद्र होते हैं। दोनों फुफ्फुसों की तलियाँ गहरी अर्थात् नतोदर होती हैं; दाहिने फुफ्फुस की तली बाएँ से अधिक गहरी होती है। फुफ्फुसों का वह भाग जो वक्ष की दीवार से मिला रहता है उभरा हुआ और उन्नतोदर होता है; हृदय के सम्मुख वाला भाग गहरा और नतोदर होता है। दाहिना फुफ्फुस

चित्र १६१ वक्ष का एक्स-रे चित्र
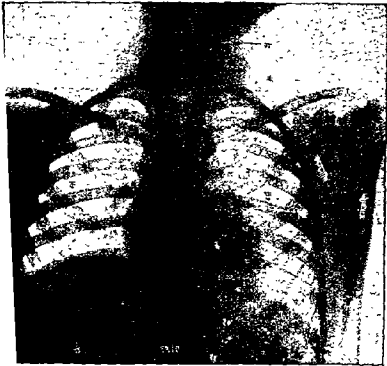
—११ तक=पर्शुकाएँ (Ribs) फु=फुप्फुस (Lung) हृ—हृदय
Heart) य=यकृत (Liver) पे-पे=वक्षउदरमध्यस्था पेशी
Diaphragm)

पृष्ठ ३३८ के सम्मुख

चित्र १९२ स्वस्थ फुप्फुस और न्युमोनिया का फुप्फुस

१ = स्वस्थ फुप्फुस पानी में तैरता है।
२ = न्युमोनिया का फुप्फुस पानी में डूब जाता है।

३३९ के सन्मुख

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट ४२ चित्र १६३
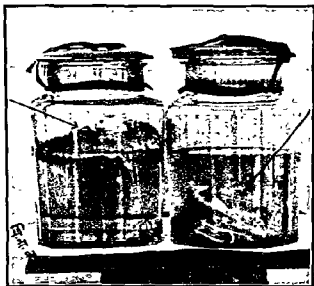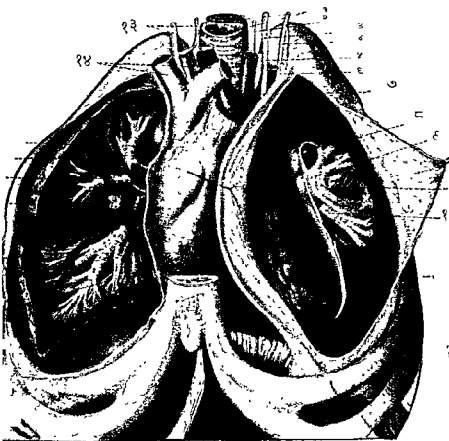
From Schultze—Lubosch's Topographische Anatomic

-अन्न प्रणाली, टेंटवा ३—बाई दशमी नाड़ी ४—बाई वक्षउदर मध्यस्था नाड़

-मूलश्रोणीया धमनी ६—वा० अक्षकाधोवर्ती धमनी ७—अनामिका कमन

-बाई फुप्फुसीया ९—परिफुप्फुसीया कला १०—बा० श्वास प्रणाल

११—फुप्फुसीया शिरा १२—फुप्फुस बन्धन

पृष्ठ ३३९ के सम्मुख

बाएं से अधिक चौड़ा और भारी परन्तु कम ऊँचा होता है। दाहिने फुप्फुस में दो दरारें (Fissures) होती हैं (द १ द २ चित्र २०१) जिनसे उसके तीन खण्ड हो जाते हैं, बाएं फुप्फुस में केवल एक ही दरार होती है और उसके केवल दो ही खंड (lobes) होते हैं। ये भाग आपस में जुड़े रहते हैं।

प्रौढ़ मनुष्य के फुप्फुस का रंग कुछ नीलाहट लिए हुए भूरा-सा होता है (कुछ-कुछ स्लेट का सा रंग समझिये)। जन्म से पहले (गर्भ में) फुप्फुस का रंग गहरा लाल होता है; नवजात बालक के फुप्फुस का रंग गुलाबी होता है।

फुप्फुस ऊपर से चिकने और चमकीले होते हैं और उन पर कुछ चित्तियां पड़ी रहती हैं (देखो, चित्र १८८, २०१) स्पर्श करने से वे मुलायम मालूम होते हैं। यदि आप फुप्फुस को अंगुलियों से दबायें तो वह स्पंज जैसा मालूम होगा और वायु भरे रहने के कारण धीमा-धीमा 'कर-कर' जैसा शब्द भी सुनाई पड़ेगा। काटने पर फुप्फुस में स्पंज की भांति बहुत से छोटे और बड़े छिद्र दिखाई देते हैं (चित्र १९३)। कटे हुए भाग को भींचें तो इन छिद्रों में से झागदार तरल (foam) निकलेगा। ये छिद्र रक्त और वायु की नलियों के मुख हैं।

भारतवासियों के दोनों फुप्फुसों का भार एक सेर के लगभग होता है; स्त्रियों में जरा इससे कुछ कम होता है। युरोपनिवासियों (जैसे अंग्रेज) के फुप्फुसों का भार सवा सेर के करीब होता है।

स्वस्थ मनुष्य के फुप्फुस वायु से भरे रहने के कारण जल से हलके होते हैं; यदि (मृत) शरीर से निकाल कर जल में डाल दिये जायें तो वे तैरेंगे (चित्र १९२)। परन्तु न्युमोनिया (फुप्फुसप्रदाह; pneumonia) और क्षय रोग (तपेदिक, थाइसिस) में फुप्फुस के वे भाग जिनमें य रोग

चित्र १९४ की व्याख्या

१ = अधोगामी महाशिरा का रास्ता (Opening for] Inferior vena cava)
२ = कंडरा का दाहिना भाग (Rt. tendinous part)
३ = महाधमनी (Aorta)
४ = पेशी का दाहिना स्तंभ (Rt. crus)
५ = कटि लम्बिनी लघ्वी पे० (Psoas minor M.)
६ = कटि लम्बिनी बृहती पे० (Psoas major M.)
७ = उदरच्छदा अंतःस्था पे० (Transversus abdominis M.).
८ = कटि चतुरस्रा पे० (Quadratus lumborum M.)
९ = चौथा कटि कशेरुका (4th. Lumbar vertebra)
१० = दूसरे कटि कशेरुका का पार्श्व प्रवर्द्धन (Tr. process of 2nd. lumbar vertebra.)
११ = बाह्य कटिपर्शु का महराब (Lateral lumbocostal arch).
१२ = बायाँ स्तंभ (Left crus).
१३ = अंतः कटि-पर्शु का महराब (Medial lumbocostal arch.).
१४ = पेशी का पर्शुकाओं से निकलने वाला भाग (Costal origin).
१५ = कंडरा का बायाँ भाग (Left tendinous part.)
१६ = अन्न प्रणाली (Oesophagus).
१७ = कंडरा का बीच का भाग (Middle part of tendon).
१८ = पेशी का वक्षोऽस्थि से आरम्भ होने वाला भाग (Sternal head).

हों कुछ ठोस हो जाते हैं और उनमें वायु नहीं रहती; इस कारण ये भाग पानी में तैरते नहीं प्रत्युत डूब जाते हैं। यदि समस्त फुप्फुस खराब हो गया हो तो वह सब का सब डूब जायगा (चित्र १९२)

चित्र १९४—वक्ष-उदर-मध्यस्था पेशी (Diaphragm)
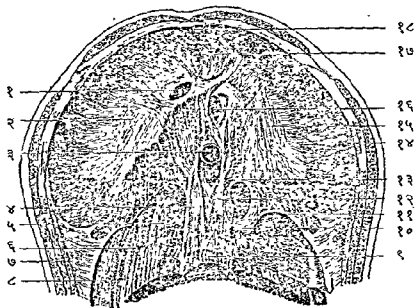
From Morris's Human Anatomy—by kind permission of Messrs P. Blakistons Son & Co. Philadelphia.

चित्र १९५ की व्याख्या

वक्षःस्थल का व्यत्यस्त काट इस प्रकार काटा गया है कि छुरी वक्ष के पाँचवें और चौथे कशेरुकाओं के गात्रों के बीच में रहनेवाली कारटिलेज की चक्री में से होकर गुजरी। इस चित्र में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि फुप्फुस परिफुप्फुसीया कला से किस प्रकार ढके रहते हैं। इस कला की एक तह वक्ष की भीतरी दीवार से चिपटी हुई रहती है, दूसरी फुप्फुस से; ये दोनों तहें फुप्फुस मूल पर पहुँचकर एक-दूसरे से मिल जाती हैं।

देखो चित्र के बाहर :—१′ = बाईं परिफुप्फुसीया कला (Left parietal pleura) जो वक्ष की दीवार पर पहुंचेगी; २′, ३′, ४′ = वक्ष की भीतरी दीवार पर रहनेवाली परिफुप्फुसीया कला; (Left-parietal pleura); ५ = फुप्फुस से चिपटी हुई कला (Visceral pleura); ६ = यहां पर फुप्फुस से चिपटी हुई कला वक्ष की भीतरी दीवार पर रहनेवाली कला से मिल जाती है (जैसे १, २, ३, ४, ५, ६) (Continuation of parrital and visceral pleura); १, २, ३, ४ = दाहिनी परिफुप्फुसीया कला (Rt. pleura)। स्त = स्तनीया धमनी वा शिरा (Internal mammary vessels); न १ = वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी की बाईं नाड़ी (Left phrenic nerve); प २ = बाईं दूसरी पर्शुका कटी हुई (Left 2nd rib-cut); प ३ = बाईं तीसरी पर्शुका कटी हुई (Left 3rd rib, cut); प ४ = बाईं चौथी पर्शुका कटी हुई (Left 4th rib, cut);

पृष्ठ ३४२ के सम्मुख
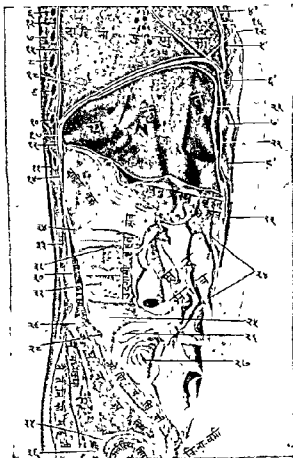
पृष्ठ ३४४ के सम्मुख

ऊ=शिरा (Vena azygos); स = स्कन्धास्थि कटी हुई (Scapula cut.); क = कशेरु पार्श्व प्रवर्द्धन (Transverse process of vertebra); प ४ = चौथी पर्शुका मुण्ड (Head of 4th rib); म ५ = मस्तिष्क की दशमी नाड़ी (दाईं) (Rt. vagus N.); सु = सुषुम्ना (Spinal cord); अ = अन्न प्रणाली (Oesophagus); ल = महालसीका वाहिनी (Thoracic duct); प' ४ = दाहिनी चौथी पर्शुका का मुण्ड (Head of 4th rt. rib); न ४ = अधः स्वरयांत्रिकी नाड़ी (बाईं) (Left recurrent laryngeal N.); न ३ = बायीं दशमी मस्तिष्क नाड़ी (Lt. vagus N.); ग = लसीका ग्रन्थि (Lymph gland); पें = अंस पर्शुका पेशी (Serratus ant. M.); प ३, प २ = दाहिनी दूसरी और तीसरी पर्शुका कटी हुई; अं = परिफुफ्फुसीया कला की दोनों तहों के बीच का अन्तर (Pleural space); उ प २ = दूसरी उप पर्शुका (2nd costal cartilage)।

चित्र के भीतर :—

अ, ध = अधोगा महाधमनी (Descending aorta); १ = दाहिनी वायु प्रणाली (Rt. bronchus); २ = बाईं वायु प्रणाली (Lt. bronchus); ऊ ध = ऊर्ध्वगा महा धमनी (Ascending aorta); म शि = ऊर्ध्व महाशिरा (Sup. vena cava); अ = चक्रिका (Intervertebral disc)।

चित्र १९६ की व्याख्या

एक नौ दस वर्ष के लड़के को शव इस प्रकार काटी गई है कि छुरी दाहिनी मध्य वंक्षण रेखा (Rt. mid-inguinal plane) में से होकर गुजरी। एक भाग में दाहिनी शाखा लगी रही; इस भाग के सम्मुख का यह फोटो है।

४', ५', ६' = कटी हुई पर्शुकाएँ (Cut ribs)

७', ८' = कटी हुई उपपर्शुकाएँ (Cut costal cartilages)

६, ७, ८, ९, १०, ११ = दाहिनी पर्शुकायें कटी हुई (Rt. ribs, cut)

१२, १३ = परिफुप्फुसीया कला (वह भाग जो वक्ष की दीवारों से लगा रहता है) (Parietal pleura)

१४ = परिफुप्फुसीया कला वृक्क के पीछे भी कुछ दूर तक रहती है (Part of pleura behind the kidney)

१५ = परिफुप्फुसीया कला का वह भाग जो फुप्फुस से लगा रहता है (Visceral pleura)

१६ = परिफुप्फुसीया कला (Pleura)

१७, १८, १९ = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी (Diaphragm)

२१ = परिविस्तृत कला जो यकृत् पर चढ़ी हुई है (Visceral peritonium *covering the liver*)

२२, २३ = उदर की अगली दीवार के पिछले पृष्ठ पर रहनेवाली परिविस्तृत कला (उदरक कला) (Parietal peritoneum)

२४ = अंत्रच्छदा कला (Greater omentum)

२५, ३२ = वृहत् अंत्र (Colon)

२६ = क्षुद्रांत्र और वृहत् अंत्र के बीच का कपाट (Ileo-caecal valve)। यहाँ क्षुद्रांत्र का वृहत् अंत्र से संबंध रहता है।

२७ = उपांत्र का मुख (Opening of appendix)

२८ = धमनी

२९ = जघन चूड़ा (Iliac rest)

३० मांसावरक कला (Fascia)

३१ = श्लैष्मिक कला का झोल (Fold of mucus membrane)

३३ = त्रिक पृष्ठिका कला (Lumbar fascia)

३४ = परिवृक्क वसा (Perinephric fat)

श्रोणिपक्षिणी (Iliacus M.)

३५ = जघनास्थि और कुकुन्दरास्थि के बीच कारटिलेज (Cartilage between ilium and ischium)

३६ = कुकुन्दरास्थि (Ischium)

फुप्फुस जल में तब ही तैर सकता है कि जब उसमें वायु भरी हो। जन्म से पहले अर्थात् गर्भकाल में बालक के फुप्फुसों के भीतर वायु नहीं रहती; इस समय बालक श्वास नहीं लेता और रक्त की शुद्धि भिन्न

प्रकार से होती है। इस समय फुप्फुस का गुरुत्व पानी के गुरुत्व से *अधिक होता है; पानी का गुरुत्व १००० माना जाय तो फुप्फुस का* १०६८ के लगभग होगा। इस कारण इस समय का फुप्फुस जल में डूब जाता है। उन बच्चों के फुप्फुस जो मुर्दा पैदा होते हैं, जल में नहीं तैरते कारण यह है कि उन्होंने जन्म होने के समय कोई श्वास नहीं लिया और वायु ने उनके फुप्फुसों में प्रवेश नहीं किया। यदि बच्चे ने पैदा होने के पश्चात् एक भी श्वास ले लिया है तो उसके फुप्फुस जल में न डूबेंगे; वे तैरते रहेंगे। फुप्फुस का जल में तैरना इस बात को सिद्ध करता है कि बच्चा पैदा होने के पश्चात् जिया है (या जीवित उत्पन्न हुआ है) उसका डूबना इस बात का साक्षी है कि बच्चा मृत उत्पन्न हुआ।

प्रत्येक फुप्फुस के ऊपर एक पतला सौत्रिक तंतु से निर्मित आवरण (वेष्ट) चढा रहता है। यह झिल्ली दोहरी होती है; एक तह फुप्फुस के पृष्ठ से बिलकुल चिपटी रहती है दूसरी तह वक्ष की भीतरी दीवार से (जो पसलियों और पसलियों के अन्तर में रहने वाले मांस से बनती है)। इन दोनों तहों के सम्मुख पृष्ठ बहुत चिकने और चमकीले होते हैं और सदा ही तरल से कुछ भीगे रहते हैं। इन पृष्ठों के चिकने होने के कारण फुप्फुसों के फैलने के समय किसी प्रकार की रगड़ नहीं होती। "पसली का दर्द" बहुधा इसी झिल्ली के प्रदाह से उत्पन्न होता है। इस झिल्ली को फुप्फुसावरण या परिफुप्फुसीया कला (Pleural membrane; pleura) कहते हैं। परिफुप्फुसीया कला के लिए देखो (चित्र १९३, १९५, १९६, १९७, १९८, २०४) और इन चित्रों की व्याख्या। चित्र १९५, १९७ और २०४ में फुप्फुसों का हृदय से क्या सम्बन्ध है यह साफ-साफ दिखाई देता है। चित्र १९६ और १९८ में *फुप्फुसों का उदर के अंगों से क्या सम्बन्ध है साफ-साफ मालूम होता है।*

श्वास मार्ग (Respiratory passage)

नासिका के छिद्रों से लेकर फुप्फुस पर्यन्त तक वायु के जाने और आने का जो रास्ता है उसका नाम श्वास मार्ग है। श्वास मार्ग के पाँच भाग हैं :—

१. नासिका (Nose) की सुरगें या बिल—वायु इन्हीं के द्वारा भीतर घुसती है।

२. गला या कंठ (Pharynx)—नासिका से वायु कंठ में जाती है।

३. स्वरयंत्र (Larynx)—गले से वायु इस कोष्ठ में जाती है।

४. टेंटुवा या श्वसनी (Trachea)—स्वरयंत्र से वायु इस नली में जाती है।

५. वायु प्रणालियाँ (Bronchi)—टेंटुवे से वायु इन नलियों में जाती हैं, इन नलियों की अनेक सूक्ष्म-सूक्ष्म शाखाओं द्वारा, जो फुप्फुसों के हर एक भाग में व्याप्त हैं, वायु समस्त फुप्फुस में पहुँचती है।

आपको आश्चर्य होगा कि श्वास मार्ग के भाग गिनाते हुए हमने "मुँह" को छोड़ दिया। कारण यह है कि मुँह श्वास लेने के लिए नहीं है; उसके द्वारा श्वास लेना अनुचित है। श्वास मार्ग के ५ भागों में से १, २, ३ का वर्णन इस पुस्तक के दूसरे भाग में मिलेगा।

चित्र १९७ की व्याख्या

यह वक्ष का व्यत्यस्त काट है; छुरी वक्ष के पांचवें कशेरुका के गात्र में से होकर गुजरी है। देखो चित्र के बाहर :—

ह=हृदयावरण (Pericardium); १=परिफुफ्फुसीया कला का वह भाग जो हृदयावरण से मिला रहता है (Pleura, part in contact with pericardium); २=वक्ष की भीतरी दीवार से लगी हुई परिफुफ्फुसीया कला (Perietal pleura); ३ = दक्षिण ग्राहक कोष्ठ का शिखर; थ=थाइमस ग्रन्थि का शेष भाग (Thymus); उप २=दूसरी उपपर्शुका (2nd. costal cartilage); न २ = वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी की दाहिनी नाड़ी (Rt. Phrenic nerve); प ३ = तीसरी पर्शुका कटी हुई (3rd costal cartilage, cut); फ श = दाहिनी फुफ्फुसीया शिरा (Rt. Pulmonary vein); पे=अंश पर्शुका पेशी; (Serratus anterior M) प ४ = चौथी पर्शुका कटी हुई (4th costal cartilage, cut); स = स्कन्धास्थि (Scapula); प ५=पांचवीं पर्शुका (5th rib); फ ध=फुफ्फुसीया धमनी (Pulmonary artery); न ३ = अधः स्वरयांत्रिकी नाड़ी (Lt. Recurrent laryngeal N.); व प १=वायु प्रणाली (Bronchus); ल=महालसीका वाहिनी (Thoracic duct); ५=शिरा (Vein)।

सु = सुषुम्ना (Spinal cord); श = शिरा (Vein); व प २ = वायु प्रणाली (Bronchus); प५', प४', प३' = दाहिनी ओर की ५वीं, ४थी, ३री पर्शुकाएं (Rt., 5th, 4th and 3rd ribs, cut); १', २' = परिफुफ्फुसीया कला (Pleura); फ.ध=फुफ्फुसीया धमनी (Pulmonary artery);
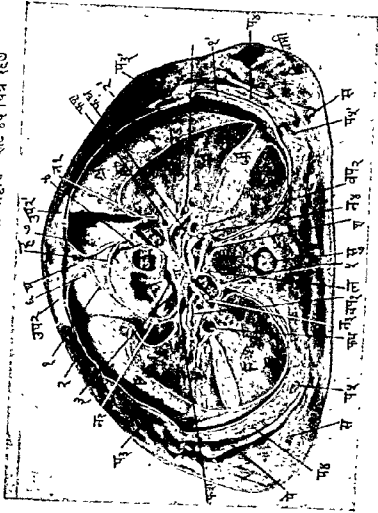
पृष्ठ ३४८ के सम्मुख
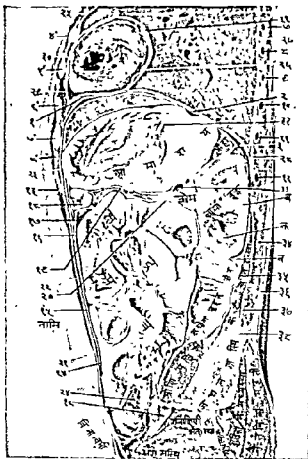
पृष्ठ ३४६ के सम्मुख

फ दा = फुप्फुसीया शिरा (Pulmonary vein); ६, ७ = जब हम गहरा श्वास लेते हैं, तो फुप्फुसों के अगले किनारे यहाँ तक आ जाते हैं।

ऊ दा = ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava); ऊ ध = ऊर्ध्वगा महाधमनी (Ascending aorta); ध = फुप्फुसीया धमनी का आरम्भ (Pulmonary artery); ग = ग्राहक कोष्ठ (Atrium); अ = अन्न प्रणाली (Oesophagus); अ ध = अधोगा महाधमनी (Inferior vena cava)।

चित्र १९८ की व्याख्या

एक नौ दस वर्ष के लड़के की शव इस प्रकार काटी गई है कि छुरी बाईं मध्य वंक्षण रेखा (Left mid inguinal plane) में से होकर गुजरी। अब शरीर के दो भाग हो गए एक भाग में अभी बाईं ऊर्ध्व शाखा लगी हुई है; यह फोटो इसके सम्मुख भाग का है।

१, २, ३ = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी (Diaphragm)

४', ५', ६', ७', ८' = चौथी, पाँचवीं, छठीं, सातवीं, आठवीं उपपर्शुकाएँ (कटी हुई) (4th, 5th, 6th, 7th and 8th costal cartilages, cut)

७, ८, ९, १०, ११, १२ = सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं पर्शुकाएँ (कटी हुई) (7th, 8th, 9th, 10th, 11th and 12th ribs-cut)

बारहवीं पर्शुका बाएँ वृक्क के पीछे रहती है।

१३, १४, १५, १६, १७ = अंत्रच्छदा कला (Greater omentum)।

१८ = अनुप्रस्त बृहत् अंत्र (Transverse colon)

अग्रच्छदा कला = इसकी चार तहें होती हैं जिनमें थोड़ी बहुत वसा रहा करती है। मोटे मनुष्यों में वसा बहुत होती है। यह कला क्षुद्रांत्र को ढके रहती है। इस कला की अगली दो तहें (१३) ऊपर जाकर आमाशय के अगले और पिछले पृष्ठों को ढक लेती हैं; पिछली दो तहें (१७) अनुप्रस्त वृहत् अंत्र को ढक लेती हैं और फिर वलोम तक पहुँच कर (१९) एक-दूसरे से पृथक् हो जाती हैं (देखो वलोम)। नीचे की तह (२०) से ही क्षुद्रांत्र धारक कला (Mesentery) बनती है।

२१, २२, २३ = उदर की अगली दीवार के पिछले पृष्ठ पर रहने वाली परिविस्तृत (उदरक) कला (Parietal peritoneum)।

२४ = वृहत् अंत्र (Colon); २५, २६ = परिफुफ्फुसीया कला (फुफ्फुस से लगा हुआ भाग) (Visceral pleura); २७, २८ = परिफुफ्फुसीया कला (पसलियों से लगा हुआ भाग) (Parietal pleura)।

२८ = परिफुफ्फुसीया कला वृक्क के पीछे भी रहती है २९, ३० = हृदय वेष्ट (Pericardium); ३१ = परिफुफ्फुसीया कला और हृदय वेष्ट मिले हुए हैं।

३२ = अन्नप्रणाली का अंत (हृदय द्वार) (Cardiac end of oesophagus)।

३३ = शिरा; ३४ = कटि चतुरस्रा पेशी (Quadratus lumb--orum M.); ३५, ३६, ३७ = कलाएँ (Forciae)।

३५ और ३६ के बीच में = कटि चतुरस्रा पेशी (Quadratus lumborum M.)

३६ और ३७ के बीच में = त्रिक पृष्ठिका पेशी (Sacro-spinalis M.)।

३८ = जघनचूड़ा (कारटिलेजयुक्त) (Iliac crest; cartilaginous)

टेंटुवा या श्वसनी (Trachea) (चित्र १९९, २००, २०२)

सामने की तरफ ग्रीवा की मध्य रेखा में टटोलने में एक कड़ी और लम्बी चीज़ मालूम होती है। जब हम कोई चीज़ निगलते हैं, तो यह ऊपर को उठती है और फिर नीचे को गिरती हुई दिखाई देती है। इस अंग का ऊपर का मोटा और चौड़ा भाग स्वरयंत्र (Larynx) है। नीचे का शेष भाग जो वक्षोऽस्थि के पीछे होकर छाती के भीतर चला जाता है टेंटुवा है (चित्र २००)

टेंटुवे की लम्बाई ४½ इंच होती है और उसका व्यास १ इंच से कुछ कम। उसका छिद्र करीब-करीब गोल होता है (उसका पीछे का भाग जो अन्न-प्रणाली से मिला रहता है चपटा होता है। अगला भाग

चित्र १९९ टेंटुवे की रचना
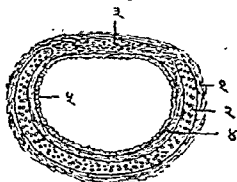
१—सौत्रिक तंतु (Fibrous tissue); २—कारटिलेज (Cartilage); ३-मांस (Muscle); ४-सौत्रिक तंतु; ५-श्लैष्मिक झिल्ली[1] (Mucus membrane)

१. श्लैष्मिक झिल्ली के लिये देखो अध्याय १४।

गोल होता है); (देखो चित्र १९९)। ग्रीवा में टेंटुवे का ऊपर ही का भाग रहता है, नीचे का भाग वक्ष के भीतर रहता है।

टेंटुवे की दीवार कारटिलेजो से बनी होती है। कारटिलेज के छल्ले एक दूसरे के ऊपर रक्खे रहते हैं; इन छल्लों के मुँह पीछे से खुले रहते हैं और इसी स्थान पर टेंटुवा चपटा होता है। छल्लों की संख्या १६ से २० तक होती है। (चित्र २००) कोई-कोई छल्ला पिछले सिरे पर से फटा हुआ होता है, कभी कभी ऊपर नीचे के दो छल्ले कुछ दूर तक एक दूसरे से जुड़े रहते हैं; सब छल्ले आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा बँधे रहते हैं। कारटिलेज के दोनो पृष्ठों पर सौत्रिक तंतु की एक तह चढ़ी रहती है, पीछे जहाँ वे खुले रहते हैं सौत्रिक तंतु और अनैच्छिक (स्वाधीन) मास की तह होती है; टेंटुवे का पिछला दबा हुआ और चपटा भाग इसी तह से बनता है। छल्लों के भीतरी पृष्ठ पर सौत्रिक तह के ऊपर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है (देखो चित्र १९९)।

ग्रीवा में टेंटुवे के पीछे अन्न प्रणाली रहती है; उसके दाहिनी और बाईं ओर ग्रीवा की धमनियाँ, उसके सामने (ऊपर के भाग में) चुल्लिका ग्रन्थि और कई मास पेशियाँ, वसा और त्वचा रहती हैं। ग्रीवा के नीचे के भाग से टेंटुवा वक्षोऽस्थि के पीछे होकर वक्ष में पहुँचता है। अब अन्नप्रणाली उसके पीछे रहती है; और वृहत् धमनी की महराव (Arch of aorta) उसके सामने और उसके बाईं ओर। वक्ष के चौथे पांचवें कशेरुका के सामने जाकर वह दो शाखाओं में विभक्त होकर खतम हो जाता है। ये शाखाएँ वायु प्रणालियाँ (Bronchi) कहलाती हैं दाहिनी और बाईं (चित्र २००)।

वायु प्रणालियाँ या श्वास प्रणालियाँ (Bronchi)

इनकी दीवारें टेंटुवे की दीवार के समान सौत्रिक तंतु, कारटिलेज

चित्र २००स्वरयंत्र और टेंटुवा (Larynx & Trachea)

पृष्ठ ३५२ के सम्मुख
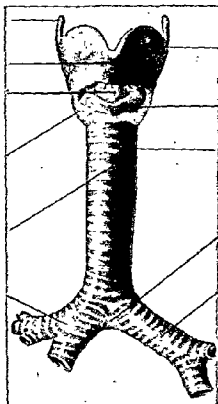
चित्र २०१ फुप्फुस
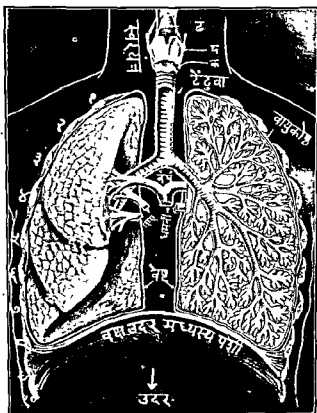
From Harmsworth's Popular Science.

ढ = स्वरयंत्रच्छद; थ = चुल्लि कारटिलेज; क = मुद्रा. कारटिलेज
१ से १० तक = कटी हुई पर्शुकाएँ, वप = वायु या
श्वास प्रणालियाँ

पृष्ठ ३४३ के सामने

चित्र २०२ टेंटुवे की सूक्ष्म रचना (अणुवीक्षण द्वारा)
(Schafer's Histology)

वसा (Fat)
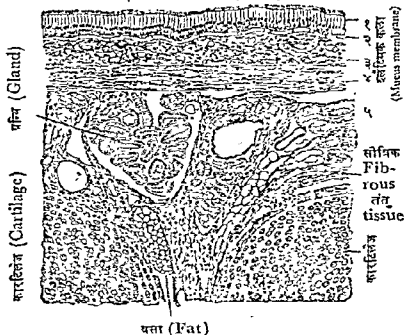
१=सेलों की तह (Ciliated epithelium), इन सेलों के सिरों से बाल जैसे तार निकले रहते हैं। २=झिल्ली (Basement membrane)। ३=श्लैष्मिक कला का उपरिस्थ भाग (Superficial part of mucus membrane) इनमें केशिकायें हैं। ४=श्लैष्मिक कला का नीचे का भाग (Deep part of mucus membrane) जो स्थितिस्थापक सौत्रिक तन्तु से निर्मित है। ५=यहाँ बहुत-सी ग्रन्थियाँ (Glands) रहती हैं। यह काट लम्बाई के रुख है इस कारण दो छल्लों के कारटिलेज दिखाई देते हैं।

के छल्लों, श्लैष्मिक झिल्ली और स्वाधीन मांस से निर्मित है। दाहिनी वायु प्रणाली दाहिने और बाईं बाएँ फुप्फुस से सम्बन्ध रखती है। दाहिनी प्रणाली बाईं की अपेक्षा छोटी परन्तु अधिक चौड़ी होती है। दाहिनी की लम्बाई १ इंच, बाईं की दो इंच होती है (चित्र २००)

चित्र २०३ फुप्फुस खंडिका (Lobule)

श्वास प्रणालिका (Bronchiole)
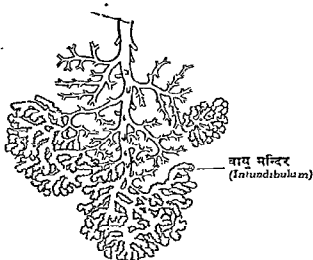
Furneaux's Physiology

इस चित्र में वायु प्रणालिका की अनेक सूक्ष्म शाखायें और उनका वायु मंदिरों से सम्बंध दर्शाया गया है; प्रत्येक वायु मंदिर में बहुत से वायुकोष्ठ (Air cells) हैं।

सूक्ष्म वायु प्रणालियाँ (श्वास प्रणालिकाएँ) (Bronchioles)

फुप्फुस में घुसते ही श्वास प्रणाली की बहुत सी शाखाएँ हो जाती हैं; इन शाखाओं द्वारा वायु फुप्फुस के सब भागों में पहुँचती है। सब से नन्हीं शाखाएँ अणुवीक्ष्य (Microscopic) होती हैं।

फुप्फुस की रचना (चित्र २०१, २०३)

फुप्फुस के अनेक छोटे-छोटे अंश होते हैं जो आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा जुड़े रहते हैं। प्रत्येक अंश या खंडिका को एक सूक्ष्म आकार और परिमाण का फुप्फुस समझना चाहिये। इस खंडिका से एक श्वास प्रणालिका लगी होती है; यह प्रणालिका कई कोठरियों से सम्बन्ध रखती है जिनका नाम वायु मन्दिर (Infundibulum) है। वायु मन्दिरों की दीवारें सेलों से बनी होती है। फुप्फुस के प्रत्येक अंश में रक्त और लसीका की सूक्ष्म नलियाँ और केशिकाएँ और नाड़ी सूत्र रहते हैं। ये सब चीजें—सूक्ष्म वायु प्रणाली, वायु मन्दिर, रक्त और लसीका की नलियाँ और केशिकाएँ और वात सूत्र आपस में सौत्रिक तन्तु की सहायता से इकट्ठी रहती हैं। ऐसे-ऐसे सहस्रों खंडिकाओं के आपस में मिले रहने से फुप्फुस बनता है।

वायु मन्दिर की रचना

जैसे एक बड़े मकान में छोटी-छोटी कई कोठरियाँ होती हैं वैसे ही एक वायु मन्दिर में भी बहुत सी कोठरियाँ होती हैं; इन कोठरियों का नाम वायुकोष्ठ (Air cell) है (चित्र २०१)

वायु मन्दिर का आकार छोटे शहतूत से बहुत कुछ मिलता है। यदि आप शहतूत को उसके ऊपर के दानों तथा डंठल समेत खोखला कल्पित करें तो आपको वायु मन्दिर का स्वरूप भलीभाँति समझ में आ जायगा:—

शहतूत की खोखली डंठल = सूक्ष्म वायु प्रणाली (Bronchiole)
खोखला शहतूत = वायु मन्दिर (Infundibulum)
शहतूत के खोखले दाने = वायु कोष्ठ (Aircell)

इतनी बात याद रखनी चाहिये कि *एक सूक्ष्म वायु प्रणाली के द्वारा* वायु बहुधा एक से अधिक मन्दिरों में जाया करती है।

अनुमान है कि *दोनों फुष्फुसों में वायु मन्दिरों की संख्या १६ से १८ करोड़ के लगभग होती है। यदि इन कोठरियों को खोल कर उनकी दीवारें पृथिवी पर बिछा दी जा सकें (जो असम्भव है) तो इनका फैलाव* (क्षेत्रफल) १३० से १५० वर्ग गज होगा; यह समझना चाहिये कि ३६ *फुष्फुसों के कोष्ठों की दीवारों का क्षेत्रफल १ एकड़ होता है।*

वायु कोष्ठ

वायु कोष्ठ अर्धगोलाकार होते हैं। कोष्ठ की दीवारें पतली और चपटी सेलों से बनती हैं; सेलों के बाहर की तरफ पीले स्थितिस्थापक (elastic) सौत्रिक तन्तु की एक पतली तह रहती है और इस तह में रक्तकेशिका का जाल फैला रहता है। केशिका के रक्त और कोष्ठों की वायु के बीच में केवल केशिका और वायु कोष्ठ की पतली दीवारें होती हैं।

श्वास कर्म

वायु का फुष्फुसों के भीतर जाना और फिर बाहर निकलना श्वास कर्म कहलाता है। श्वास कर्म में दो बातें होती हैं—

१. एक बार वायु नासिका में से होकर फुष्फुसों के भीतर प्रवेश करती है जिसके कारण छाती फैल कर पहिले से बड़ी हो जाती है। यह *उच्छ्वास या अन्तः श्वसन (Inspiration)* है।

२. फिर वायु नासिका से बाहर निकलती है; छाती पूर्व दशा को प्राप्त होती है फुप्फुस भी छोटे हो जाते हैं। यह क्रिया प्रवास या बहिःश्वसन (Expiration) कहलाती है।

चित्र २०५

उदर
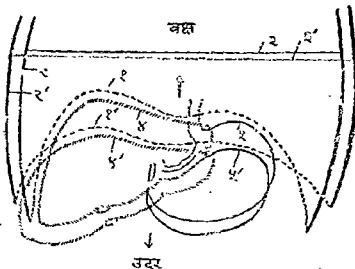
१, १' = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी (Diaphragm)। २, २' = वक्ष की दीवार (Thoracic wall)। ३, ३' = वक्ष की चौड़ाई। ४, ४' = यकृत। ५, ५' = आमाशय (Stomach)।

उच्छ्वास के समय वक्षउदरमध्यस्थ पेशी संकोच करके १ स्थान से उदर की ओर १' स्थान पर आ जाती है जिसके कारण, यकृत ४ स्थान से ४' स्थान पर आ जाता है और आमाशय ५ से ५' पर आ जाता है। वक्ष की दीवार २ से २' स्थान पर चली जाती है जिसके कारण वक्ष की चौड़ाई ३ से ३' हो जाती है।

चित्र २०४ की व्याख्या

यह काट वक्ष के आठवें कशेरुका में से काटा गया है।

देखो चित्र के बाहर अपने दाहिने हाथ की ओर :—५',७',१०',११', ४', १२', ३', १३', २', = परिफुप्फुसीया कला (Pleura) म=बाएँ फुप्फुस का मध्य पृष्ठ (Medial surface of rt. lung); न=वक्षउदर मध्यस्थ पेशी की बाईं नाड़ी (Lt. Phrenic N.); ४प, ५प, ६प, ७प, ८प=पर्शुकाएँ (Ribs); अं = अंसास्थि (Scapula); ल = महालसीका वाहिनी (Thoracic duct); सु= सुषुम्ना (Spinal cord); आ=सुषुम्नावरण (Meninges)।

देखो चित्र के बाहर अपने बाएँ हाथ की ओर:—७, ५, ११, ४, १२, ३, २, ११=दाहिनी परिफुप्फुसीया कला (Rt. pleura); ४ प, ५ प, ६ प, ७ प, ८ प—पर्शुकाएँ (Ribs); ह = हृदय; अ = अन्न प्रणाली (Oesophagus); सं = कशेरु पर्शुका संधि (Costo-vertebral joint); श=शिरा।

देखो चित्र के भीतर :—द, व=दाहिनी ओर की परिफुप्फुसीया कला बाईं ओर की कला से मिली हुई है। द ग=दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Rt. atrium); द क्ष = दाहिनो क्षेपक कोष्ठ (Rt. ventricle); उ म श=ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava); ब क्ष = बायां क्षेपक कोष्ठ (Left ventricle); प=क्षेपक कोष्ठों के बीच का परदा (Interventricular septum); ब ग्र = बायाँ ग्राहक कोष्ठ (Left atrium); १, २=दाहिनी फुप्फुसीया शिराएँ (Rt. pulmonary veins); ३, ४=बाईं फुप्फसीया शिराएँ (Lt. pulmonary veins); घ=महाधमनी (Aorta)।

छोटा चित्र:—वक्ष की भीतरी दीवार की परिफुप्फुसीया कला फुप्फुस से चिपकी हुई कला से किस प्रकार मिल जाती यह इस चित्र में साफ दिखाया गया है।

एक उच्छ्वास और एक प्रश्वास से एक श्वास कर्म पूरा होता है। जवान मनुष्य एक मिनट में १६-१७ श्वास लिया करता है।

उच्छ्वास (Inspiration) :—जब वायु भीतर जाती है अर्थात् जब हम श्वास भीतर खींचते हैं तो वक्ष की समाई अधिक हो जाती है। वक्षउदरमध्यस्थ पेशी संकोच करती है और उदर की ओर दब जाती है; पेशी के दबाव से उदरस्थ अंग जैसे आमाशय, यकृत् अंत्र नीचे को सरकते हैं जिसके कारण उदर की अगली दीवार उभर जाती है। पसलियाँ पर्शुकान्तरिका तथा अन्य कई पेशियों के संकोच से ऊपर को उठती है पसलियों के साथ-साथ उरोस्थि भी ऊपर को सामने की ओर उठती है। इन सब गतियों का परिणाम यह होता है कि वक्ष की समाई पहिले से अधिक हो जाती है। ज्यों-ज्यों वक्ष की समाई बढ़ती है वायु फुफ्फुसों में घुसती है, वायु मन्दिर पहले की अपेक्षा बड़े हो जाते हैं और सम्पूर्ण फुफ्फुस का परिमाण पहले की अपेक्षा अधिक हो जाता है।

प्रश्वास (Expiration):—जब वक्ष की समाई घटने लगती है और वह शीघ्र पूर्व दशा को प्राप्त होता है। पेशियाँ संकोच करना बन्द कर देती है। वायु मन्दिर छोटे हो जाते है। उनमें से कुछ वायु निकल जाती है। सम्पूर्ण फुफ्फुस का परिमाण घट जाता है।

यह न समझना चाहिये कि प्रश्वास कर्म में फुफ्फुसों में वायु बिलकुल नहीं रहती। वास्तव में फुफ्फुस उस समय भी वायु से भरे रहते हैं।

हमारे फुफ्फुस हमेशा उतने नहीं फैलते जितने कि वे फैल सकते हैं; यदि हम श्वास जोर से लें तो अधिक वायु प्रवेश करेगी; इसी तरह से जोर से श्वास बाहर निकालने से अधिक वायु बाहर निकलती है। गहरा श्वास लेना अच्छा है।

श्वास की संख्या

साधारणतः स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में १६ से २० तक श्वास (साँस) लेता है। बचपन में यह संख्या अधिक होती है—नवजात बालक में ४४, पाँच वर्ष की आयु में २५, २६ के लगभग। शारीरिक परिश्रम से—जैसे व्यायाम, भागना, दौड़ना, खेल-कूद—संख्या अधिक हो जाती है; खड़े रहने में लेटे रहने की अपेक्षा और दिन में रात की अपेक्षा श्वास जल्दी-जल्दी आते हैं।

रोगों में श्वास की संख्या घट बढ जाती है। ज्वरों में श्वास जल्दी-जल्दी आते हैं विशेष कर फुप्फुस के रोगो में जैसे फुप्फुस प्रदाह (Pneumonia) मीठा तेलिया, क्लोरोफौर्म अफीम, जैसे जहरों से श्वास की संख्या घट जाती है।

स्वस्थ मनुष्य के हृदय के धड़कने (या नाड़ी फड़कने) की संख्या की श्वास की संख्या से यह निस्बत होती है :—४, ५ : १ अर्थात् जिस समय में मनुष्य एक श्वास लेता है उसी समय में हृदय चार या पाँच बार धड़कता है। फुप्फुस के रोगों में यह निस्बत नहीं रहती; ३ : १ या २ : १ हो सकती है।

श्वास जहाँ तक हो गहरा लेना चाहिये जिससे वायु फुप्फुसों के कोने-कोने में भली प्रकार प्रवेश कर। जो लोग हलके श्वास लिया करते हैं उनके फुप्फुस पूरे तौर पर वायु से नहीं भरते।

यदि आप यह समझना चाहें कि फुप्फुस वायु से कैसे भर जाते है तो किसी मास बेचनेवाले से बकरे के ताजे फुप्फुस लीजिये, फुप्फुस कहीं से कटे न हो और उनमें टेंटुवा भी लगा रहना चाहिये; अब आप इस टेंटवे में बाईसिकिल के पहिये मे हवा भरने वाले पप की नली बाँध दीजिये और हवा भरना आरम्भ कीजिये। ज्यों-ज्यो हवा भीतर जायगी

फुप्फुस फलने लगेंगे। थोड़ी हवा से कम फूलते हैं और उनके कोने और किनारे पिचके हुए दिखाई देते हैं। अधिक हवा पहुँचने पर वे खूब बड़े हो जायँगे और उनके कोने और किनारे भी हवा से भरे मालूम होंगे। यदि आप पंप को नली टेंटुवे से अलग कर लें तो हवा बाहर निकल जायगी और फुप्फुस पिचक जायेंगे। बकरे के फुप्फुस और मनुष्य के फुप्फुस की बनावट एक जैसी होती है। परीक्षा करते समय इतनी बात याद रखनी चाहिये कि जब तक फुप्फुस छाती के भीतर रहते हैं उस वक्त वे छाती से, बाहर निकले हुए बकरे के फुप्फुसों की भांति कभी भी पूरे तौर से नहीं पिचकते।

वायु का संगठन (संयोगी तत्त्व)

उच्छ्वास और प्रश्वास वायु के संगठन में कुछ भेद होता है :—

अवयव[1]	उच्छ्वास वायु प्रति १०० भाग	प्रश्वास वायु प्रति १०० भाग
ओषजन (O_2)	२०.८	१६.०
कर्बनद्विओषित (CO_2)	०.०४	४.०
नत्रजन (N_2)	७८.८७	७८.८७
जलीय वाष्प (Water Vapour)	अंश मात्र	अधिक
हानिकारक पदार्थ	स्वच्छ वायु में कुछ नहीं	होते हैं

१. 'वायु में "आर्गन" नामक गैस भी होती है; वायु के १०० भागों में ०.९४ भाग के लगभग इस गैस के होते हैं।

हानिकारक पदार्थों और जलीय वाष्प को छोडकर बडा भेद दो गैसों के परिमाण में है। उच्छ्वास वायु में ओपजन अधिक और कर्बनद्वि-ओषित गैस अंश मात्र होती है (१०००० भागों में कुल ४ भाग)। प्रश्वास वायु में इसके विपरीत होता है। और बातों का विचार न करते हुए जिस वायु में ओपजन अधिक होती है और क ओ, [1] कम वह वायु शुद्ध समझी जाती है। जिस वायु का सेवन किया जाय उसमें धूल मिट्टी, हानिकारक पदार्थ, रोगों के जन्तु न होने चाहियें।

ओपजन और कर्बनद्विओषितगैसों, के गुण

ओपजन जीवन के लिये एक परमावश्यक चीज है। उसके बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। ओपजन बिना चीजें जल भी नहीं सकती। लकडी, कोयले, लैम्पादि के जलने के लिये ओपजन आवश्यक है।

कर्बनद्विओषित गैस प्राणियों के लिये जहरीला असर रखती है। यदि किसी कोठरी में केवल यही गैस भरी हो तो उसमें कोई भी प्राणी जीवित न रह सकेगा। यदि हम इस गैस से भरे हुए बर्त्तन में जलती हुई बत्ती रख दें तो वह तुरंत बुझ जायगी। वनस्पतियों के लिये यह गैस जहरीली नहीं है। चूने का स्वच्छ पानी इस गैस से मिलकर दूधिया हो जाता है; यदि आप एक गिलास में चूने का निथरा पानी लें और फिर उस पानी में नली द्वारा फूंकें तो वह पानी शीघ्र दूधिया हो जायगा।

---

१. कर्बनद्विओषित का संकेत है (CO_2)

२. वायु रूप में रहने वाला पदार्थ "गैस" (Gas) कहलाता है

फुप्फुसों द्वारा रक्त शुद्धि

हमारे शरीर में सेलों के टूटने और भाँति-भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होने से कर्बनद्विओषित नामक गैस बनती रहती है। इस गैस का स्वभाव ज़हरीला है। जिस रक्त में यह अधिक परिमाण में होती है उसका रंग स्याही मायल होता है यह स्याही मायल रक्त शरीर के सब भागों से इकट्ठा होकर हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में दो महाशिराओं द्वारा पहुँचता है। हृदय से फुप्फुसीया धमनी द्वारा यह रक्त दोनों फुप्फुसों में जाता है और उन केशिकाओं (Capillaries) में पहुँचता है जो वायु कोष्ठों की दीवारों में रहती है। यहाँ इस रक्त में से बहुत सी कर्बनद्विओषित गैस बाहर निकल जाती है और उसकी जगह ओषजन आ जाती है।

गैसों के कुछ स्वाभाविक गुण

रक्त शुद्धि समझाने से पहिले हम आपको गैसों के कुछ स्वाभाविक गुणों से परिचित करना चाहते हैं :—

१. 'क' और 'ख' दो कोठरियाँ हैं। 'क' में ओषजन नामक गैस है और 'ख' में क ओ, गैस है। दोनों कोठरियों के बीच में एक ऐसा पर्दा लगा है जिसमें से गैसें गुज़र सकती हैं। यदि हम कुछ समय पश्चात्
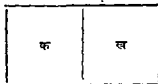
इन दोनों कोठरियों की गैसों की परीक्षा करें तो मालूम होगा कि न तो 'क' में केवल ओषजन ही है और न 'ख' में केवल कओ, प्रत्युत हर

एक कोठरी में दोनो गसें है । कुछ ओपजन 'क' से 'ख' में चली गई और कुछ कओ, 'ख' से 'क' में चली आई । हर एक कोठरी में दोनों गैसो का मिश्रण है ।

गैसों का यह एक स्वाभाविक गुण है कि वे इधर-उधर फैलना चाहती है यदि उनको ऐसा करने में रुकावट न मिले। ओपजन को 'क' से 'ख' में जाने के लिए कोई रुकावट न मिली इस कारण वह 'ख' में चली गई। ऐसे ही क ओ, 'ख' से 'क' में चली आई।

२. 'क' में क ओ, वा ओपजन का मिश्रण है; ११ भाग क ओ, के है और ५ भाग ओपजन के । 'ख' में भी इन्ही गैसो का मिश्रण है परन्तु गैसो का परिमाण भिन्न है; यहाँ ९ भाग क ओ, के है और ७ भाग ओपजन के । कुछ समय पश्चात् इन कोठरियों में यह मिश्रण इस हिसाब से न रहेगा । जो गैस एक कोठरी में अधिक परिमाण में है उसका कुछ भाग उस कोठरी में चला जायगा जहाँ उसका परिमाण कम है । परिणाम यह होगा कि कुछ समय पीछे दोनो गैसें दोनो कोठरियों में बराबर-बराबर परिमाण में मिलेंगी ।

गैसो का यह दूसरा स्वाभाविक गुण है कि जिस स्थान में वे अधिक परिमाण में हो वहाँ से वे उस स्थान में चली जाती है जहाँ उनका परिमाण कम है। इन दोनों गुणों को याद रखते हुए देखिये कि फुप्फुसों में क्या होता है ।

रक्तशुद्धि (चित्र १९३)

हम पीछे बतला चुके है कि केशिका के रक्त और वायु कोष्ठो की वायु के बीच में केवल केशिका और वायु कोष्ठों की पतली दीवारें है । आप यह समझिये कि फुप्फुस में दो कोठरियाँ है एक में रक्त है (= केशिकाएँ; Capillaries), दूसरी में वायु भरी है (= वायुकोष्ठ;

air cells)। इन दोनों के बीच में एक परदा लगा है (= केशिका तथा वायुकोष्ठों की दीवारें)। यह पर्दा ऐसा है कि उसमें से गैसें आ-जा सकती हैं। केशिका के रक्त में क ओ, व ओषजन दो गैसें हैं; वायुकोष्ठ की वायु में भी ये दोनों गैसें हैं। केवल भेद इतना है कि ओषजन वायुकोष्ठों में अधिक होती है और क ओ, रक्त में अधिक होती है।

गैसों के उपर्युक्त गुणों के अनुसार ओषजन वायुकोष्ठ में से रक्त में प्रवेश करती है और क ओ, रक्त से निकल कर वायुकोष्ठ में आ जाती है। इस प्रकार फुप्फुस में गैसों की अदला-बदली हो जाती है।

गैसों की अदला बदली केवल उनके ऊपर बतलाये हुए गुणों पर ही निर्भर नहीं है। कोष्ठों की सेलों में भी यह स्वाभाविक शक्ति है कि वे क ओ, को रक्त से लेकर वायु में मिला दें और वायु से ओषजन ग्रहण करके उसको रक्त में पहुँचा दें।

इन दोनों विधियों से रक्त में क ओ, बहुत कम हो जाती है और उसमें ओषजन अधिक आ जाती।

वायुकोष्ठों की वायु में नत्रजन गैस भी होती है; इस गैस का अंश मात्र ही रक्त में पहुँचता है क्योंकि शरीर को इस वस्तु की गैस के रूप में आवश्यकता नहीं और वायुकोष्ठों की सेलें इसको ग्रहण नहीं करतीं।

रक्ताणुओं में एक रंग रहता है जिसका नाम कणरञ्जक (Haemoglobin) है। यह एक प्रकार की प्रोटीन है; इसमें लोहा भी है। यह रंग ओषजन से रासायनिक प्रीति रखता है। और ओषजन से मिलकर वह ओषितकणरञ्जक (Oxy-haemoglobin) बन जाता है। जिस रक्त में ओषितकणरञ्जक रहता है और क ओ, कम होती है उसका रंग लाल होता है, जिसमें केवल कणरञ्जक होता है और क ओ, अधिक होती है उसका रंग स्याहीमायल होता है।

जितनी ओषजन फुप्फुस में रक्त ग्रहण करता है उसका अधिक भाग कणरञ्जक से मिल जाता है शेष भाग रक्तवारि (Plasma) में घुल जाता है।

संक्षेप:—फुप्फुसों में हृदय के दाहिने क्षेपक कोष्ठ से स्याहीमायल रक्त आता है; इसमें ओषजन कम और क ओ, अधिक होती है। फुप्फुसों से हृदय के बाएँ ग्राहक कोष्ठ में जो रक्त जाता है उसका रंग लाल होता है; इसमें ओषजन अधिक होती है और क ओ, कम।

फुप्फुसों में केवल इन गैसों ही की अदला-बदली नहीं होती प्रत्युत कुछ जल भी वाष्प रूप में वायु के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है। प्रश्वास वायु में उच्छ्वास वायु की अपेक्षा अधिक जलीय वाष्प होती है। वाष्प के अतिरिक्त कुछ उड़नशील विषैले पदार्थ भी वायु द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी Diaphragm Tiedmann

१–वृक्क, (Kidney) २–मूत्राशय, (Urinary bladder) ३–महाधमनी, (Aorta) ४–वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी की कंडरा, (Diaphragm tendon) ५–वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी, (Diaphragm) ६–उदर की अगली दीवार, (Ant. abdominal ७–कटिलम्बिनी पेशी,(Psoas major) ८–जघनीया पेशी, (Iliacus) ९–आंडिकी धमनी, (Testicular Artory) १०–महाधमनी का अन्त, (End of Aorta) १०–मूलश्रोणिगा धमनी,(Comman iliac A) १२–उदर की दीवार, (Abd. wall)

पृष्ठ ३६७ के सम्मुख

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति— प्लेट ४७ चित्र २०७
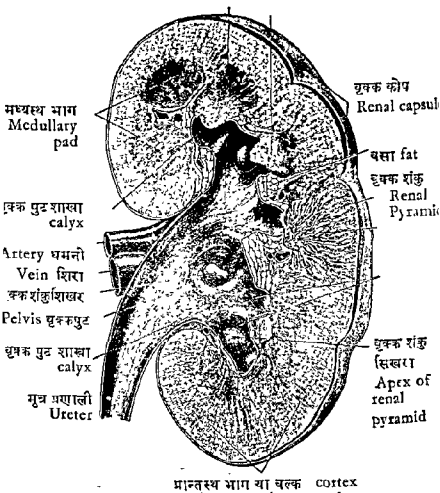
From Heitzmann—Zuckerkand'ls Atlas by permission

पृष्ठ ३६७ के सम्मुख

अध्याय १२

मूत्रवाहक संस्थान (Urinary system)

इस संस्थान के ये अंग हैं :—

१. वृक्क या गुर्दे (Kidneys)	(दो)
२. मूत्र प्रणाली (Ureters)	(दो)
३. मूत्राशय (Urinary bladder)	(एक)
४. मूत्रमार्ग (Urethra)	(एक)

वृक्क या गुर्दे (Kidneys)

जिस अंग का काम मूत्र बनाने का है उसका नाम वृक्क या गुर्दा है। हमारे शरीर में दो वृक्क हैं एक दाहिना दूसरा बायाँ।

ये इन्द्रियाँ उदर में उसकी पिछली दीवार से लगी हुई रीढ़ के दाहिनी और बाईं ओर रहती हैं (चित्र २०६) उनके सामने अंत्र की गेंडलियाँ (Coils) पड़ी रहती हैं। हर एक गुर्दे के पीछे १२वीं पसली रहती है (देखो चित्र ६४)। वृक्क का आकार (परिमाण नहीं) लोबिये (Bean) के बीज जैसा होता है; उसकी लम्बाई ४ इंच, चौड़ाई २॥ इंच और मोटाई १ इंच होती है। भार २ छटांक से कुछ कम होता है। उसका रंग बैंगिनी होता है।

वृक्क के दो पृष्ठ (Surfaces) होते हैं एक सामने का दूसरा पीछे का; दो किनारे (Borders) होते हैं एक रीढ़ के पास रहता है दूसरा उससे परे रहता है; दो सिरे (Ends) होते हैं। दोनों पृष्ठ उभरे हुए (अर्थात् उन्नतोदर; Convex) होते हैं। रीढ़ की ओर का किनारा लोबिये के काले तिल वाले किनारे की भाँति बीच में से दबा हुआ

(नतोदर; Concave) होता है; दूसरा किनारा उन्नतोदर (Convex; उभरा हुआ) होता है और रीढ़ की ओर वाले किनारे से अधिक लम्बा होता। ऊपर का सिरा नीचे के सिरे से अधिक मोटा और चौड़ा होता है और उसके ऊपर एक छोटा सा उप वृक्क (Supra renal) नामक अंग रक्खा रहता है (चित्र २०६)

जिस स्थान पर रीढ़ की ओर के किनारे में गढा होता है वहीं से वृक्क की धमनी भीतर घुसती है और शिरा बाहर आती है; यहीं मूत्र प्रणाली का फूला हुआ प्रारंभिक अंग (Pelvis) उससे जुड़ा रहता है (चित्र २०६, २०७)।

वृक्क के ऊपर सौत्रिक तंतु से निर्मित एक झिल्ली चढ़ी रहती है; इसको वृक्क कोष (Renal capsule) कहते हैं (चित्र २०८ क)। वृक्क के चारों ओर विशेषकर उसके पीछे वसा रहती है।

यदि हम वृक्क को चाकू से लम्बाई के रुख एक किनारे से दूसरे तक काटें तो कटा हुआ भाग सब-का-सब एक जैसा दिखाई न देगा। उसका प्रान्तस्थ (Cortical) (पृष्ठों के पास का) भाग मध्यस्थ (Central) (बीच के) भाग की अपेक्षा हलके रंग का होता है। मध्यस्थ भाग कई मीनार (Pyramids) जैसे भागों में विभक्त है; इन मीनारों की शिखरें (Apices) मूत्र प्रणाली (Ureter) की ओर रहती हैं और उनकी तलियाँ (Bases) पृष्ठों की ओर (चित्र २०७, २०८, २०९)। इन मीनारों के शिखरों में अनेक छोटे-छोटे छिद्र होते, ये छिद्र वृक्क की बड़ी-बड़ी नलियों के मुख हैं।

वृक्क की सूक्ष्म रचना (चित्र २०९, २१०)

वृक्क वास्तव में अनेक पतली-पतली नलियों का समूह है। यह नलियाँ लम्बी तो बहुत होती हैं परन्तु चौडी बहुत कम। इन नलियों के

चित्र २०८ मूत्रवाहक संस्थान
वृक्क
धमनी
अंगार
क
नाभि
मांस
मूत्राशय
वसा
त्वचा
संधि
बाल
उपस्थ
शुक्र प्रणाली
अंड
अंडकोष
त्वचा
मूत्रबहिर्द्वार
क = वृक्क कोष

अतिरिक्त उसमें धमनियाँ, शिराएँ, केशिका, लसीकावाहिनियाँ और वात सूत्र होते हैं। ये सब चीजें कुछ सौत्रिक तन्तु द्वारा इकट्ठी रहती हैं। वृक्क के सब से बाहर के भाग में (पृष्ठ के नीचे) अनैच्छिक मांस की एक पतली तह होती है।

नलियों की बनावट (चित्र २०९, २१०)

नली का प्रारम्भिक भाग मोटा और गोलाकार होता है और वृक्क के प्रान्तस्थ (बाहरी) भाग में रहता है। यह फूला हुआ सिरा बीच में से दबा रहता है और इस गढे में रक्त-केशिकाओं का झुंड रहता है (चित्र २१० में क) केशिकाओं का झुंड नली की दीवार के बाहर है। यदि आप इस फूले हुए भाग को एक छिद्रवाली पोली रबड़ की गेंद के समान मान लें तो आपको यह समझने में कि केशिकाओं का झुंड फूले हुए भाग में होते हुए कैसे नली की दीवार के बाहर है कोई कठिनता न होगी। छिद्र नीचे करके आप गेंद को ऊपर से अँगुली से दबाइये; गेंद में एक गढ़ा पड़ जायगा और अँगुली सिरा रबड़ से ढक जायगा। यद्यपि आपकी अंगुली गेंद की दीवार से ढकी हुई है तथापि वह वास्तव में गेंद के बाहर है। इसी प्रकार केशिका का यह झुंड नली की दीवार से ढके रहने पर भी उसके बाहर ही है; मालूम ऐसा होता है कि उसके भीतर है।

नली का लम्बा भागः—नली फूले हुए भाग से आरम्भ होकर कई मोड़ तोड़ खाने के पश्चात् एक दूसरी नली से जा मिलती है जो इसी प्रकार मोड़ खाती हुई वृक्क के किसी और भाग से आई है। इस तरह कई नलियों के मिलने से एक बड़ी नली बन जाती है (चित्र २१०)। ये बड़ी नलियाँ अन्य बड़ी नलियों से जा मिलती है। जिस प्रकार छोटे-छोटे नालों या नदियों के आपस में मिलने से एक बड़ी नदी बन जाती

चित्र २०९
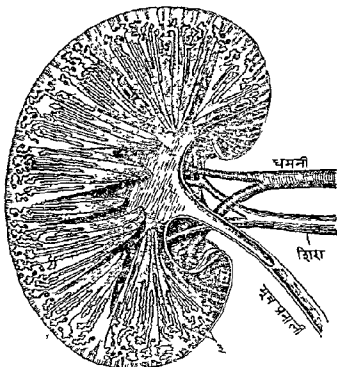
१ = मूत्र प्रणाली का चौड़ा भाग (वृक्क पुट; Pelvis of ureter)। २ = मीनारों के छिद्र जिनमें से मूत्र निकल कर मूत्र प्रणाली में जाता है। ३ = नलियों के फूले हुए सिरे (Glomerulus)।

ह वैसे ही छोटी-छोटी नलियो से बड़ी बड़ी नलियाँ बन जाती हैं। वृक्क की मीनारें (Pyramids) इन्ही बड़ी नलियो के समूह हैं; पतली नलियो के प्रारम्भिक फूले हुए सिरे (Glomeruli) और मुड़ हुए भाग मीनारों के बाहर प्रान्तस्थ (Cortical) भाग मे रहते हैं। मीनारो के

चित्र २१० वृक्क की एक नली
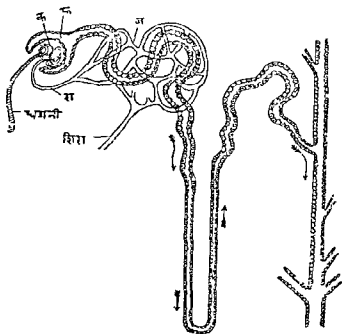
शिखरो म जो छिद्र होते हैं वे बड़ी-बड़ी नलियों के मुख हैं; मूत्र इन्ही छिद्रों से निकल कर मूत्र प्रणाली में पहुँचता है।

नलियों के फूले हुए सिरों की दीवारें पतली-पतली चपटी सेलो से बनती हैं; इन सेलों के बाहर एक बहुत पतली झिल्ली रहती हैं। नली

के शेष भाग की दीवार में कई प्रकार की सेलें होती हैं और ये सेलें भी एक पतली झिल्ली के सहारे रक्खी रहती है। जहां-जहां नली मोड़ खाती है वहां सेलें मोटी होती हैं। बड़ी नलियों की बनावट भी ऐसी ही है।

वृक्क द्वारा रक्त की शुद्धि

वृहत् धमनी की दो शाखाओं द्वारा रक्त दोनों गुर्दों में पहुँचता है। भीतर पहुँचकर इस धमनी की अनेक शाखाएँ हो जाती हैं, एक शाखा प्रत्येक नली के फूले हुए भाग में जाती है; इसी के द्वारा रक्त केशिका के झुण्ड में पहुँचता है। केशिका की दीवारों में से रक्त का कुछ जलीय अंश चू जाता है और यह तरलनली की दीवारों में से होकर उसके भीतर पहुँच जाता है। नली का फूला हुआ सिरा फिल्टर (छन्ने) का-सा काम देता है। जिस प्रकार कागज़ या कपड़े के छन्ने में से जल इत्यादि द्रव छन जाते हैं उसी प्रकार सेलों से निर्मित इन छन्नों में से रक्त का कुछ द्रव भाग छन जाता है; परन्तु एक बड़ा भेद यह है कि वृक्क का छन्ना जीवित है। जो काम यह कर सकता है वह कागज़ का छन्ना नहीं कर सकता। आपको याद होगा कि रक्त में प्रोटीनें वा शकर पदार्थ होते हैं; आरोग्यता में वृक्क के छन्नों में से ये पदार्थ (प्रोटीन, शकर) छनकर नली के भीतर नहीं पहुँच सकते; परन्तु कागज़ या कपड़े में से जल में घुले हुए पदार्थ सब छन जाते हैं। प्रोटीनों और शकर के फूले भागों की दीवारों में से न गुज़र सकने के कारण उस जल में जो छनकर नली के भीतर पहुँचता है ये पदार्थ नहीं होते परन्तु उसमें रक्त के कुछ लवण अवश्य आ जाते हैं।

केशिका के झुण्ड से रक्त एक नली द्वारा (चित्र २१० क) बाहर निकलता है। इस नली द्वारा अब रक्त उन केशिकाओं में पहुँचता है जो जाल रूप में नली के शेष भाग के चारों ओर फैली हुई हैं। ये केशिकाएँ

नली की सेलों से मिली रहती हैं। (देखो चित्र २१० में ज) नली की मोटी-मोटी सेलों में यह स्वाभाविक शक्ति है कि वे उस तरल में से जो उनके पास चू जाता है यूरिया, यूरिक अम्लादि पदार्थ ले लें और फिर उनको नली के भीतर पहुँचा दें। नली के भीतर पहुँच कर ये पदार्थ उस तरल में जो ऊपर से (या पीछे से) फूले भाग से आता है घुल जाते हैं। यह तरल जिसमें निकम्मे और हानिकारक पदार्थ घुले रहते हैं पतली-पतली नलियों में बहता हुआ बड़ी-बड़ी नलियों में पहुँचता है जो मीनारों (Pyramids) में रहती है। मीनारों के शिखरों के छिद्रों में से निकल कर यह तरल मूत्र प्राणाली के प्रारम्भिक चौड़े भाग में पहुँचता है। इस तरल का नाम मूत्र है। वृक्कों में धमनियों द्वारा जो रक्त आता है उसमें यूरिया (Urea), यूरिक अम्लादि (Uric acid) पदार्थ अधिक होते हैं; वृक्कों से शिराओं द्वारा जो रक्त लौटकर जाता है उसमें ये पदार्थ कम होते हैं।

मूत्र प्रणाली (Ureter) (चित्र २०६, २०८, २०९)

मूत्र प्राणालियाँ दो हैं—एक दाहिनी दूसरी बाईं, ये नलियाँ स्वाधीन मांस और सौत्रिक तन्तु से निर्मित हैं; उनके भीतरी पृष्ठों पर श्लैष्मिक झिल्ली (Mucus membrane) लगी होती है। प्रत्येक नली की लम्बाई १० से १२ इंच तक होती है। मूत्र प्रणाली के दो सिरे हैं ऊपर का चौड़ा और फनल (कीप) जैसा जो वृक्क से जुड़ा रहता है; नीचे का पतला जो वस्तिगह्वर में मूत्राशय से जुड़ा रहता है। ऊपर के चौड़े भाग की कई शाखाएँ होती हैं। प्रत्येक छोटी शाखा के मुख में वृक्क की एक मीनार का शिखर रहता है (चित्र २०७, २०९) वृक्क की मीनारों से मूत्र इस नली के चौड़े भाग में पहुँचता है और उसमें बहता हुआ मूत्राशय में जाता है। मूत्र-प्राणाली वही नली है जिसमें पथरी के रोग में कभी-कभी पथरी अटक जाती है जिसके कारण रोगी को अत्यन्त पीडा होती है।

मूत्राशय, वस्ति या मसाना (Urinary Bladder)

(चित्र २०६, २०८, २११, २१२)

यह वह थैली है जिसमें मूत्र गुर्दों से मूत्र प्रणालियों द्वारा आकर इकट्ठा हुआ करता है। यह अंग वस्तिगह्वर में विटप संधि (भग संधि) (Pubic symphysis) के पीछे रहता है। पुरुषों में उसके पीछे

चित्र २११ नारी वस्तिगह्वर (Female pelvis)
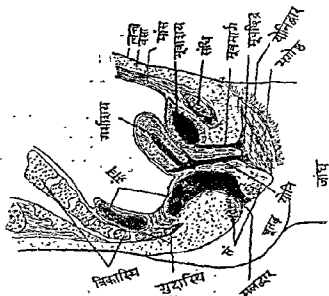
सं = मलद्वार संकोचनी पेशी (Sphinctre ani externus).

(उससे बिलकुल मिले हुए) दो शुक्राशय (Seminal vesicles) रहते हैं (चित्र २१२, २१३) और इनके पीछे वृहत् अंत्र (Colon)

का अन्तिम भाग या मलाशय (Rectum) रहता है; स्त्रियों में मूत्राशय के पीछे गर्भाशय (Uterus) और गर्भाशय के पीछे मलाशय रहता है (चित्र २११)।

मूत्राशय की दीवार स्वाधीन मांस से बनी होती है; भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है। जब यह अंग खाली होता है या उसमें मूत्र थोड़ा होता है तो उसका आकार कुछ-कुछ तिकोनिया सा होता है; जब वह मूत्र से खूब भर जाता है तो वह गोलाकार हो जाता है और वस्तिगह्वर से ऊपर को निकल कर उदर की अगली दीवार के पीछे आ लगता है (देखो अध्याय ३० के चित्र)।

मूत्रमार्ग (Urethra) (चित्र २०८, २११, २१२, २१३)

स्त्री वा पुरुष दोनों में मूत्राशय के सब से नीचे के भाग से एक और नली का आरम्भ होता है जिसको मूत्रमार्ग (Urethra) कहते हैं।

पुरुष में (युवावस्था में) इस नली की लम्बाई कोई ७ या ८ इंच के लगभग होती है। प्रारम्भिक १ या १½ इंच भाग के चारों ओर

चित्र २१२ की व्याख्या

१ = मूत्राशय (Urinary bladder);
२ = उदरक कला (Peritoneum);
३ = कारटिलेज की चक्री (Intervertebral disc);
४ = सरलांत्र (Rectum);
५ = शुक्रप्रणाली (Vas deferens);
६ = मूत्रप्रणाली (Ureter);
७ = शुक्राशय (Seminal vesicle);
८ = शिश्न मूल ग्रन्थि (Cowper's gland);
९ = प्रोस्टेट ग्रन्थि (Prostate);
१० = मूत्रदंडिका (Corpus spongiosum);
११ = मूत्रमार्ग (Urethra)
१२ = शिश्न दंडिका (Corpus cavernosum);

हमारे शरीर की रचना—भाग १, आठवीं आवृत्ति—प्लेट ५० चित्र २
नर वस्ति गह्वर
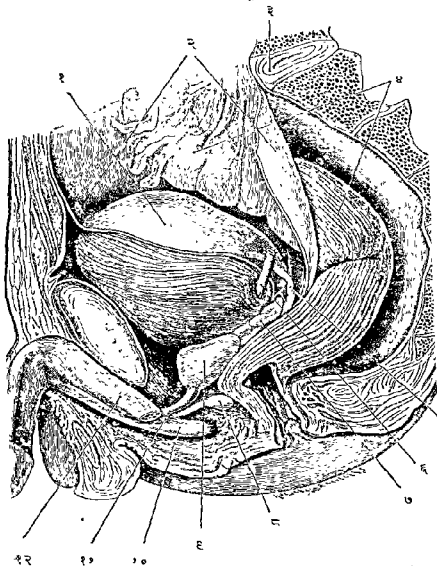
From Heitzmann-Zuckerkandl's Atlas

प्रोस्टेट (Prostate) नामक एक ग्रन्थि रहती है या यों कहो कि मूत्र-मार्ग का प्रारम्भिक भाग इस ग्रन्थि में होकर जाता है (चित्र २१२, २१३)। प्रोस्टेट से आगे यह नली शिश्न (Penis) के नीचे के भाग में रहती है। शिश्न की मणि (Glans या शिश्न-मुंड) में जो छिद्र होता है वह इसी नली का छिद्र है। इस छिद्र का नाम मूत्रबहिर्द्वार (External urinary meatus) है। इस नली में से शुक्र (Semen) भी निकलता है। सूज़ाक (Gonorrhoea) में इस नली की श्लैष्मिक झिल्ली का प्रदाह (वरम; Inflammation) हो जाता है।

स्त्रियों में मूत्रमार्ग की लम्बाई केवल १½ इंच होती है। स्त्रियों में प्रोस्टेट अंग नहीं होता और यह नली योनि (Vagina) की अगली दीवार से जुड़ी रहती है। इसका छिद्र योनि के छिद्र से भिन्न है और उससे ½ इंच ऊपर होता है। (चित्र २११)

(चित्र २१३)

मूत्राशय (Bladder)
मूत्र प्रणाली (Ureter)
शुक्रप्रणाली (Vas deferens)
शुक्राशय (Seminal vesicle)
प्रोस्टेट (Prostate)
शिश्नमूल ग्रन्थि (Cowper's gland)
मूत्रमार्ग (शिश्नस्थ) (Penile urethra)

५ = मूत्रमार्ग का प्रोस्टेट में रहने वाला भाग (Prostatic urethra)

मूत्रबहिर्द्वार से मूत्र हर समय क्यों नहीं टपका करता? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जहां मूत्रमार्ग का आरम्भ होता है वहां मूत्राशय की

प्रोस्टेट (Prostate) नामक एक ग्रन्थि रहती है या यों कहो कि मूत्र-मार्ग का प्रारम्भिक भाग इस ग्रन्थि में होकर जाता है (चित्र २१२, २१३)। प्रोस्टेट से आगे यह नली शिश्न (Penis) के नीचे के भाग में रहती है। शिश्न की मणि (Glans या शिश्न-मुंड) में जो छिद्र होता है वह इसी नली का छिद्र है। इस छिद्र का नाम मूत्रबहिर्द्वार (External urinary meatus) है। इस नली में से शुक्र (Semen) भी निकलता है। सूजाक (Gonorrhoea) में इस नली की श्लैष्मिक झिल्ली का प्रदाह (वरम; Inflammation) हो जाता है।

स्त्रियों में मूत्रमार्ग की लम्बाई केवल १½ इंच होती है। स्त्रियों में प्रोस्टेट अंग नहीं होता और यह नली योनि (Vagina) की अगली दीवार से जुड़ी रहती है। इसका छिद्र योनि के छिद्र से भिन्न है और उससे ½ इंच ऊपर होता है। (चित्र २११)

(चित्र २१३)

५ = मूत्रमार्ग का प्रोस्टेट में रहने वाला भाग (Prostatic urethra)

मूत्रबहिर्द्वार से मूत्र हर समय क्यों नहीं टपका करता? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जहाँ मूत्रमार्ग का आरम्भ होता है वहाँ मूत्राशय की

दीवार का मांस सकोच करके छिद्र को हमेशा बन्द रखता है। जब हम मूत्र त्यागना चाहते हैं तब मास ढीला पड जाता है और रास्ता खुल जाता है; मूत्राशय से निकल कर मूत्र मूत्रमार्ग में पहुँचता है और बाहर निकलता है। कभी-कभी रोगों के कारण मांस भली प्रकार संकोच नहीं कर सकता; तब मूत्र बूँद-बूँद टपका करता है।

मूत्र (Urine)

निरोगी मनुष्य २४ घंटे में १½—१¾ सेर के लगभग मूत्र त्यागा करता है। ग्रीष्म ऋतु में अधिक पसीना निकलने के कारण और ऋतुओं की अपेक्षा कम मूत्र आता है। मूत्र का रंग गेहूँ की नली के रंग से ज़रा गहरा होता है; रोगो में रंग और हो जाता है; ज्वरों में गहरा, पीला या लाली लिये होता है। उसका गुरुत्व १०१५ से १०२५ तक (सामान्यत. १०२०) होता है। मूत्र में एक विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है। सुस्थता में ताज़ा मूत्र स्वच्छ होता है और उसकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है। डेढ सेर मूत्र में कोई २३ छटांक जल होता है; शेष १ छटांक भर (या कुछ कम) वे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो उस जल में घुले रहते हैं। इस १ छटांक में से दो तीन तोले के करीब यूरिया[1] (Urea) होता है; शेष भाग में यूरिक अम्ल वा अन्य कई

---

१. यूरिया का मूत्र में कम या अधिक होना भोजन पर भी निर्भर है। जो लोग अधिक प्रोटीन खाते हैं उनके मूत्र म कम प्रोटीन खानेवालों की अपेक्षा अधिक यूरिया रहता है। मांस भक्षण करनेवाली जातियों (मांस में रोटी, चावल की अपेक्षा अधिक प्रोटीन होती है) के मूत्र में उन जातियों के मूत्र की अपेक्षा जो मांस नहीं खातीं अधिक यूरिया होता है। यूरोप निवासियों के मूत्र में हिन्दुओं के मूत्र से अधिक यूरिया होता है। यूरिया वा और लवणों के कम होने से गुरुत्व भी कम होता है।

प्रकार के लवण होते हैं।

सुस्थता में मूत्र में न प्रोटीन होती है और न शकर। मधुमेह रोग (Diabetes) में मूत्र में शकर निकलने लगती है। उसका गुरुत्व अधिक हो जाता है और मात्रा भी बढ़ जाती है। प्रोटीन[1] का मूत्र में निकलना वृक्क प्रदाह (Nephritis) या अन्य किसी रोग का साक्षी है।

मूत्र परीक्षा

मूत्र परीक्षा में ये ये बातें देखी जाती हैं —

१—रंग।

२—गंध।

३—गाढ़ा है या पतला ; उसमें कोई चीज बैठी हुई तो नहीं है। स्वच्छ है या अस्वच्छ।

४—दिन-रात के मूत्र की मात्रा।

५—प्रतिक्रिया।

६—जो लवण उसमें सामान्यतः घुले रहते हैं उनमें से किसी की मात्रा अधिक या न्यून तो नहीं है।

७—मूत्र में प्रोटीन, शकर, रक्त पित्त, राद तो नहीं है।

८—उसम कोई विशेष रासायनिक पदार्थ तो नहीं है।

९—उसमें कोई रोगाणु (बकटीरिया) या कीट तो नहीं हैं।

---

१ या अलब्युमेन (Albumen)

अध्याय १३

त्वचा की रचना (चित्र २१४, २१५, २१६)

त्वचा के दो भाग होते हैं :—

१—ऊपर का पतला भाग या उपचर्म (Epidermis)।

२—उपचर्म के नीचे का मोटा भाग या चर्म (Dermis)।

उपचर्म (Epidermis)

यह त्वचा का वह भाग है जो उबलते हुए द्रवों (वा कई औषधियों) के लगने से चर्म से अलग हो जाता है; इसके और चर्म के बीच में तरल के इकट्ठा होने से फफोला या छाला बन जाता है

उपचर्म कई प्रकार की सेलों से निर्मित है। ये सेलें एक दूसरे के ऊपर कई तहों (स्तरों) में बिछी रहती हैं। ऊपर की सेलें नीचे की सेलों की अपेक्षा बहुत पतली और चपटी होती हैं। नीचे की तहों की सेलें मोटी और मुलायम होती हैं; ऊपर की सख्त होती हैं। श्याम वा पीले वर्ण की जातियों की उपचर्म की नीचे वाली मोटी सेलों के भीतर एक रंग रहता है; गोरी जातियों में कोई रंग नहीं होता।

प्रति दिन उपचर्म की ऊपर की सेलें घिस-घिसकर गिरती रहती हैं और नीच की सेलें उनकी जगह आ जाती हैं।

उपचर्म की मोटाई सब स्थानों में एक-सी नहीं होती ; हथेलियों, पाँव के तलुओं वा पीठ की उपचर्म और स्थानों की अपेक्षा अधिक मोटी होती है।

हमारे शरीर की रचना—भाग १ आठवीं आवृत्ति—प्लेट ५१ चित्र २१४ त्वचा की रचना

उपचर्म

चर्म

पृष्ठ ३८० के सम्मुख
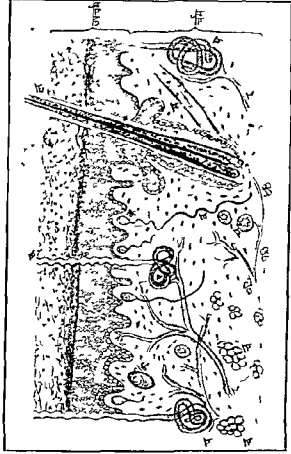
त्वचा के इस भाग में रक्तकेशिका नहीं होती ; इसका पोषण उस लसीका से होता है जो नीचे चर्म में रहता है।

चर्म (Dermis)

त्वचा का यह भाग उपचर्म से अधिक मोटा और मजबूत होता है; पैर के तलुओं, हथेलियों, कमर वा पीठ की चर्म शरीर में सबसे मोटी होती है; पलकों, अंडकोष वा शिश्न की चर्म बहुत पतली होती है।

चर्म में सेलों के अतिरिक्त सौत्रिक तन्तु, रक्त या लसीकावाहिनियाँ वा वातसूत्र भी होते हैं। उनमें दो प्रकार की ग्रन्थियाँ और बालों की जड़ें रहती हैं। चर्म स्थितिस्थापक (Elastic) होती है।

चर्म के ऊपर के भाग में (उपचर्म के नीचे) नन्हें-नन्हें उभार[1] या कँगूरे होते हैं; ये उभार सौत्रिक तन्तु वा रक्तकेशिकाओं के झुण्ड हैं (चित्र २१६ में ६) हथेलियों वा तलुओं की त्वचा में ये उभार मोटे होते हैं और इनसे समानान्तर मुण्डेर बन जाती हैं, अंगुलियों के शंख और चक्र इन्हीं कंगूरों की मुण्डेरों वा रेखाओं से बनते हैं। आजकल काली स्याही से अंगुलियों के छाप जो लिये जाते हैं ये इन्ही कंगूरों की कतारों के छाप होते हैं (कंगूरों के ऊपर की चर्म भी उभरी होती है)। यह बात सिद्ध हो गई है कि किसी एक मनुष्य की अंगुलियों के छाप दूसरे मनुष्यों की अंगुलियों के छापों से नहीं मिलते; एक मनुष्य के हस्ताक्षर दूसरे मनुष्य के हस्ताक्षरों से मिल सकते हैं; परन्तु अंगुलियों के छापों में कुछ-न-कुछ भेद बहुधा अवश्य रहता है। इन छापों से अपराधियों की पहचान करने में बड़ी सहायता मिलती है; कभी-कभी घातकों का भी पता लग जाता है। चित्र २१५ में तीन विविध मनुष्यों

१. चर्म प्रवर्द्धन (Papillae)।

चित्र २१५ अंगूठों के छाप

के धागे अँगूठों के छाप हैं; प्रत्येक छाप के नीचे छाप को दो गुणा बढ़ाकर दिखाया गया है। मुंडेरे और उनके बीच के अन्तर साफ़-साफ़ दिखाई देते हैं।

त्वचा की ग्रन्थियाँ

त्वचा में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ रहती हैं :—

(१) वे जिनमें तेल जैसी चिकनी वस्तु बनती है (Sebaceous glands)

(२) वे जो पसीना बनाती हैं (Sweat glands)।

दोनों प्रकार की ग्रन्थियाँ चर्म में रहती हैं।

तेल की ग्रन्थियाँ (Sebaceous glands) (२१४, २१६)

ये नन्हीं-नन्ही थैलियाँ हैं जिनकी दीवारों की सेलें एक चिकनाईदार वस्तु बनाती हैं। प्रत्येक थैली से एक छोटी-सी नली निकलती है जिसमें से होकर यह वस्तु बालों की जड़ों में पहुँचती है, चित्र २१४ में 'म' के ऊपर जो थैली है वह तेल की ग्रन्थि है) और बालों को चिकना और चमकदार बनाती है। त्वचा भी इसी वस्तु के कारण चिकनी सी रहती है। टट्टी और चेहरे की त्वचा में और स्थानों की अपेक्षा अधिक ग्रन्थियाँ रहती हैं; ये ग्रन्थियाँ हथेलियों और पैर के तलुओं में नहीं पाई जातीं।

साबुन से स्नान करने से यह चिकनी वस्तु धुल जाती है और हमारे बाल और त्वचा रूखे से और पहले से कम चमकदार मालूम होने लगते हैं। चेहरे की (विशेष कर नाक के पास) त्वचा कभी-कभी अधिक चिकनी मालूम होने लगती है; इसका कारण इस वस्तु का अधिक बनना है।

पसीने या घर्म की ग्रन्थियाँ (Sweat glands)

(चित्र २१४ में प, चित्र २१६)

ये चर्म के सबसे नीचे के भाग में रहती हैं। हरएक ग्रन्थि वास्तव में एक नली है जिसका नीचे का सिरा बन्द होता है। इस नली का ऊपर का भाग सीधा होता है; नीचे का भाग सर्प की भाँति गेंडली मारे रहता है। नली की दीवारें सेलो से बनती हैं; जो एक पतली झिल्ली पर रखी रहती है; इस झिल्ली के बाहर सहारे के लिये कुछ सौत्रिक तन्तु रहता है; मुड़े हुए भाग में सेलो और सौत्रिक तन्तु की तह के बीच में कुछ स्वाधीन मांस भी होता है। ग्रन्थि के चारों ओर केशिका का जाल रहता है। ग्रन्थि की सेलें चुए हुए लसीका में से कुछ जल, यूरिया वा कई प्रकार के लवण ले लेती हैं। यह तरल जिसमें ये सब पदार्थ घुले रहते हैं पसीना (Sweat) या घर्म कहलाता है। उपचर्म में बहुत से छोटे-छोटे छिद्र होते हैं; ये पसीने की नलियों के मुख हैं। पसीना नलियों में बहता हुआ इन छिद्रों द्वारा शरीर से बाहर निकलता है।

कक्षतल (बगल) और वंक्षण (जघासा) की त्वचा में ये ग्रन्थियाँ बड़ी-बड़ी होती हैं। हथेलियों और पैर की तलुओं में इनकी संख्या और स्थानों की अपेक्षा अधिक होती है। अनुमान है कि हथेली की एक वर्ग इंच त्वचा में कोई २८०० पसीने के छिद्र होते हैं, संपूर्ण शरीर में २४००००० (२४ लाख) के लगभग ग्रन्थियाँ होती हैं।

पसीने या घर्म या स्वेद (Sweat)

पसीने में क़रीब-क़रीब वही पदार्थ होते हैं जो मूत्र में जैसे यूरिया वा कई प्रकार के लवण परन्तु ये चीजें बहुत थोड़ी-थोड़ी होती हैं। इन पदार्थों के अतिरिक्त उसमें उपचर्म की गिरी हुई सेलें, जरा सी वसा और तनिक सी प्रोटीन होती है।

चित्र ११६ त्वचा की रचना (Warwick and Tunstall)

लोम
लोम (Hair)
स्वेदग्रन्थि का मुख
(Opening of sweat gland)
स्पर्श कण
(Touch corpuscles)
तैल की ग्रन्थि
(Sebaceous gland)
स्वेद ग्रन्थि
(Sweat gland)
उपचर्म
(Epidermis)
स्पर्श कण
(Touch Corpuscles)
चर्म
(Dermis)
१ २ ३ ४ ५
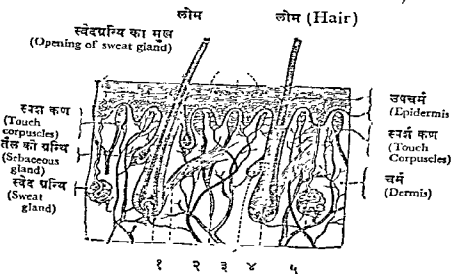
१ = लोमोत्थापिका (Arrectores pilorum) (मांस); २ = रक्तवाहिनी; ३ = तैल की ग्रन्थि (Sebaceous gland) ४ = लोमकूप (Hair follicle) ५ = स्वेदग्रन्थि (Sweat gland.)

पसीने की प्रतिक्रिया अम्ल[1] होती है और उसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है। उसका गुरुत्व १००५ होता है और स्वाद नमकीन। ग्रीष्म ऋतु में और व्यायाम करने से पसीना अधिक निकलता है; शीत ऋतु में और कम परिश्रम करने से पसीना कम आता है। जब मूत्र अधिक आता है (जैसे वर्षा और शीत ऋतुओं में) तब पसीना

१. जब पसीना बहुत आता है तो प्रतिक्रिया क्षारीय हो जाती है।

कम बनता है, और जब मत्र कम आता है (जैसे ग्रीष्म ऋतु में) तब पसीना अधिक निकलता है।

सुस्थता में पसीने में दुर्गन्ध नही आती, उसम कोई विशेष प्रकार का रग भी नही होता। कई औषधियो के सेवन से पसीने की मात्रा अधिक या न्यून हो जाती है। अधिक जल पीने से भी अधिक पसीना आता है।

लोम या बाल (Hair) (चित्र २१४ में ल; चित्र २१६)

बाल त्वचा से ही निकलते हैं। तीन स्थानो को छोड़कर थोड़े बहुत बाल शरीर के हर एक भाग में रहते हैं; हथेलियो, तलुओं और शिश्न के अगले भाग की त्वचा में बाल नही होते।

बालो की लम्बाई, मोटाई और रंग सब जातियों में एक जैसा नही होता, एक ही मनुष्य में किसी स्थान के बाल मोटे और लम्बे होते हैं। किसी स्थान के पतले और छोटे; पलकों की त्वचा के बाल बहुत ही नन्हें-नन्हें होते है; सिर के बाल बहुत लम्बे होते हैं; पलकों के किनारो के बाल (पक्ष्मन्, बरौनी; Eyelash), विटप देश (Pubic) मूँछ के बाल मोटे होते हैं।

बाल का कुछ भाग त्वचा से बाहर निकला रहता है और कुछ उसके भीतर रहता है। जो भाग भीतर रहता है उसको बाल की जड़ कहते हैं। जिस गढ़े में बाल की जड़ रहती हैं उसका नाम लोमकूप (Hair follicle) है; लोमकूप के नीचे के भाग की दीवारें सेलों की कई तहों से बनती है और इन सेलों के बाहर सौत्रिक तन्तु की तह रहती है। इस कूप या थैली से एक ओर कुछ अनैच्छिक मांस लगा रहता है; (चित्र २१६ में २) चिकनाईदार वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियों का कूप

से सम्बन्ध रहता है (चित्र २१४ 'म' के ऊपर)। बाल की जड़ का नीचे का सिरा मोटा और श्वेत रंग का होता है।

बाल की रचना

बाल के दो भाग होते हैं :—

(१) मध्यस्थ भाग (बीच का भाग; Medulla) जो गोलाकार सेलों से बनता है।

(२) बहिःस्थ भाग (Cuticle) जो बीच के भाग के चारों ओर रहता है। इसमें लम्बी-लम्बी सूत्राकार सेलें होती हैं। सेलों के भीतर एक रंग रहता है। श्वेत बालों में रंग नहीं रहता।

बाल की जड़ त्वचा में कुछ तिर्छी रहती है, जिधर को जड़ का झुकाव होता है उधर लोमकूप की दीवार से स्वाधीन मांस की एक पतली पट्टी लगी रहती है (चित्र २१४ में म)। इस मांस के संकोच से जड़ सीधी हो जाती है और बाल जो पहले मुड़ा हुआ था अब खड़ा हो जाता है। शीत या भय के प्रभाव से बालों का खड़ा हो जाना इसी मांस के संकोच के कारण होता है।

अधिक रंज फिकर और निर्बलता में और वृद्धावस्था में बालों का रंग श्वेत या धूसर हो जाता है; कई कारणों से जैसे खराब सेलों के या चिकनाईदार वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियों के रोगों से बाल जवानी में गिरने भी लगते हैं। जब तक बालों की जड़ें खराब नहीं हुई हैं तब तक औषधियों के प्रयोग से गिरे हुए बालों का फिर उग आना संभव होता है। उस्तुरे की रगड़ से (हजामत बनाने से) बाल जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं कारन यह है कि रगड़ से त्वचा में रक्त अधिक आता है और बालों

का पोषण अच्छा होता है; जो लोग प्रति दिन हजामत बनाते हे उनकी डाढी के बाल दूसरे ही दिन बढ़े हुए मालूम होने लगते हैं।

नख (Nails)

हाथ और पैर की हर एक अगुली के अन्तिम पोर्वे में एक एक-नख या नाखून रहता है। नख अपने नीचे के चर्म से खूब चिपटा रहता है और उसके पिछले और इधर-उधर के किनारे त्वचा की घाई में घुसे रहते हैं। नख का अधिक भाग स्वच्छ होता है और उसमें से चर्म के रक्त का रंग चमका करता है; पिछला थोड़ा-सा भाग अस्वच्छ और श्वेत होता है। जब किसी कारण शरीर में रक्त कम हो जाता है (रक्त-हीनता में) तो नखों का रंग फीका पड़ जाता है; वे श्वेत से दिखाई देने लगते हैं; हृदय और फुप्फुस के रोगों में उनका रंग नीला सा हो जाता है। नख में उपचर्म की तरह रक्त की नलियाँ नहीं होती; उसका पोषण चर्म के लसीका से ही होता है।

नख वास्तव में उपचर्म ही है जिसकी सेल अधिक सख्त हो गई हैं; उसके नीचे और स्थानों की तरह चर्म रहता है जिसमें बहुत से मोटे-मोटे उभार या प्रवर्द्धन होते हैं।

त्वचा के काम

१—त्वचा से सब शरीर ढका हुआ है; उससे मांसादि कोमल चीजों की रक्षा होती है। त्वचा के नीचे रहनेवाली चीजों को उस वक्त तक कोई हानि नही पहुँच सकती जब तक कि उसको भी हानि न पहुँचे। वह रोगोत्पादक जंतुओं और विषों को शरीर के भीतर घुसने से रोकती है; जब त्वचा कही से कट जाती है तब जंतु और ज़हर शरीर में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं।

२—त्वचा हमारी स्पर्शेन्द्रिय (Organ of touch) है; उसके द्वारा हमको शीत, उष्णता, पीड़ा और दबाव का ज्ञान होता है।

३—त्वचा से पसीने द्वारा हमारे शरीर से कुछ मलिन पदार्थ निकलते हैं; इसलिये वह एक रक्तशोधक अंग है।

४—त्वचा से जरा सी कर्बनद्विओषित गैस शरीर से बाहर निकलती है और थोड़ी सी ओषजन उसमें प्रवेश करती है; इस तरह वह जरा सा फुप्फुस जैसा भी काम करती है। मनुष्य में जितनी कओ₂ गैस फुप्फुसों द्वारा शरीर से बाहर आती है उसका १/१५० से १/१०० भाग तक त्वचा से भी निकलती रहती है। जिन जानवरों की त्वचा पतली होती है (जैसे मेंढक) उनमें मोटी त्वचा वाले जानवरों की अपेक्षा अधिक कओ₂ त्वचा द्वारा बाहर निकलती है।

५—त्वचा शरीर के तापक्रम को स्थिर रखने में भी सहायता देती है। जब किसी कारण (जैसे ज्वरों में या अधिक व्यायाम करने से) शरीर में अधिक उष्णता उत्पन्न होती है तो त्वचा की रक्तवाहिनियाँ फैलकर पहले से अधिक चौड़ी हो जाती हैं और उनमें अधिक रक्त बहता है; इस कारण त्वचा पहले की अपेक्षा अधिक गरम और लाल हो जाती है। त्वचा से इस उष्णता का कुछ भाग आस-पास की चीजों में चला जाता है। पसीना भी ज्यादा निकलता है; इस पसीने का जल रूप से वाष्प रूप में परिवर्तन होने के लिये भी उष्णता की आवश्यकता है, यह उष्णता त्वचा से ही मिलती है। इस तरह से कुछ आस-पास की चीजों में जाकर और कुछ पसीने से वाष्प बनाने में काम आकर बहुत सी अनावश्यक उष्णता त्वचा द्वारा शरीर से बाहर निकल जाती है और तापक्रम बहुत ज्यादा बढ़ने नहीं पाता।

शीत ऋतु में जब उष्णता को शरीर के भीतर रखने की आवश्यकता होती है त्वचा की रक्तवाहिनियाँ कुछ सिकुड़ी हुई रहती हैं और पसीना भी कम आता है; इस कारण शरीर से अधिक उष्णता बाहर नही जा सकती और उसका तापक्रम बहुत कम नही हो सकता। जाड़ो में त्वचा से अधिक उष्णता के निकलने को रोकने के लिये ही ऊन वा रुई के कपड़े पहनने की आवश्यकता होती है क्योकि ये चीजें उष्णता की सुचालक नही हैं।

अध्याय १४

श्लैष्मिक झिल्ली या कला

(Mucus membrane)

जिस प्रकार शरीर का बाहरी पृष्ठ त्वचा से ढका हुआ है उसी प्रकार जितने पोले अंग हैं उनके भीतरी पृष्ठों पर एक विशेष प्रकार की त्वचा लगी हुई है; गाल और ओष्ठों के भीतरी पृष्ठों पर जो लाल-लाल चीज चमकती है वह एक विशेष प्रकार की त्वचा है। अन्नमार्ग के भीतरी पृष्ठ पर मुख से लेकर मलद्वार पर्यन्त; श्वासमार्ग में नासिका से सूक्ष्म वायु-प्रणालियों तक; मूत्रप्रणाली, मूत्राशय, मूत्रमार्ग में; डिम्ब प्रणाली, गर्भाशय और योनि में यह विशेष प्रकार की त्वचा रहती है।

पोले अंगों के भीतरी पृष्ठों को ढाँकनेवाली त्वचा सदा कुछ भीगी रहा करती है; जिस तरल से यह भीगी रहती है उसमें एक लेसदार पदार्थ होता है जिसका नाम श्लेष्म (Mucus) है। यह पदार्थ उस त्वचा में नहीं होता जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है। इस श्लेष्म के कारण पोले अंगों के भीतरी पृष्ठों पर रहनेवाली त्वचा को श्लैष्मिक झिल्ली या कला (Mucus membrane) कहते हैं।

श्लैष्मिक कला की रचना (चित्र २०२)

इस झिल्ली की रचना त्वचा जैसी होती है। जैसे त्वचा के दो भाग होते हैं एक ऊपर का जिसमें सेलों की कई तहें होती हैं दूसरा नीचे का जो सौत्रिक तन्तु से निर्मित है, वैसे ही इस झिल्ली के भी दो भाग होते हैं :—

१––ऊपर का भाग जो सेलों की एक या एक से अधिक तहों से बनता है। सेलें भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं; कहीं पतली और चिपटी होती हैं; कहीं लम्बी और स्तम्भाकार कहीं पृष्ठ की सेलों से सूक्ष्म-सूक्ष्म तार निकले रहते हैं जो सदा हिलते रहते हैं (चित्र २०२ में १)।

२––सेलों की तह या तहों के नीचे सौत्रिक तन्तु की तह रहती है। सूत्र दोनों प्रकार के होते हैं––श्वेत और पीले सूत्रों के बीच में रस बनाने वाले नन्हें-नन्हें यंत्र होते हैं जिनको ग्रन्थियाँ कहते हैं। इस भाग में रक्त वा लसीका केशिका के जाल और वात सूत्र भी रहते हैं। कहीं-कहीं सौत्रिक तन्तु का केशिका के झुण्डों से छोटे-छोटे उभार भी बन जाते हैं; इन उभारों या कगूरों के कारण श्लैष्मिक झिल्ली के पृष्ठ पर नन्हें-नन्हें दाने दिखाई देने लगते हैं (जैसे जिह्वा के पृष्ठ पर)।

श्लैष्मिक झिल्ली का पृष्ठ श्लेष्ममय रस से तर रहता है यह श्लेष्म या तो पृष्ठ की सेलों में बनता है या सौत्रिक तन्तु में रहनेवाली सूक्ष्म ग्रन्थियों में।

श्लेष्म एक श्वेत रंग का लेसदार पदार्थ होता है; रसायन विद्या के अनुसार वह एक भाँति की प्रोटीन है। कफ और आम इस पदार्थ के दूसरे नाम हैं। खाँसी में जो कफ निकलता है उसका अधिक अंश श्लेष्म ही होता है; यह श्वास मार्ग की श्लैष्मिक झिल्ली में बनता है। आमातिसार (Dysentery) में जो आम (Mucus) निकलती है उसका भी अधिक अंश श्लेष्म ही होता है; यह आँतों की झिल्ली में बनता है; जुकाम (प्रतिश्याय) में नाक से जो शिंघाणक (सिनक) निकलता है यह भी श्लेष्म ही है।

श्लैष्मिक झिल्ली और त्वचा की रचना में भेद

(चित्र २०२ और २१६)

१—श्लैष्मिक झिल्ली त्वचा से कोमल और पतली होती है।

२—उपचर्म की सेलों में रंग रहता है, इस झिल्ली की सेलों में कोई रंग नहीं होता। रक्त के चमकने के कारण श्लैष्मिक झिल्ली लाल दिखाई दिया करती है।

३—झिल्ली में श्लेष्म बनता है, त्वचा में नहीं बनता।

४—त्वचा में बाल होते हैं और पसीने की ग्रन्थियाँ होती हैं; झिल्ली में ये चीजें नहीं होतीं। झिल्ली में भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार की ग्रन्थियाँ रहती हैं।

ओष्ठ की बनावट

१—सब से बाहर त्वचा रहती है।

२—त्वचा के नीचे वसा होती है।

३—वसा के नीचे मांस है।

४—मांस के नीचे अर्थात् ओष्ठ के भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक झिल्ली रहती है।

गाल की बनावट (चित्र २१७)

१—सबसे बाहर त्वचा (Skin)

२—त्वचा के नीचे वसा (Fat) होती है।

३—वसा के नीचे मांस (Muscle)

४—मांस के नीचे श्लैष्मिक झिल्ली (Mucus membrane)

चित्र २१७, गाल की बनावट

मांस (Muscle)

त्वचा (Skin)

वसा (Fat

श्लैष्मिक कला (Mucus membrane)

दांत (Tooth)
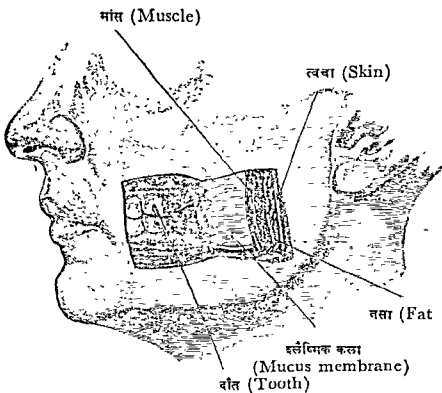
From Heitzmann-Zuckerkandl's Anatomischer Atlas

जब वसा कम होती है तो गाल पतले और पिचके हुए होते हैं; जब वसा अधिक होती है तो ये फूले हुए होते हैं और चेहरा भरा हुआ दिखाई देता है।

चित्र २१८ अंत्र की बनावट
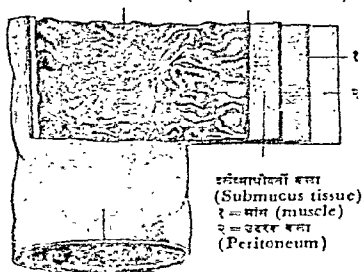
अंत्र (Intestine)
(Heitzmann-Zuckerkandl)

आशयों (Viscera) की बनावट

इनकी दीवारें मास से बनी होती हैं; जब मास कम होता है तो दीवारें पतली होती हैं जैसे आमाशय और अंत्र की; मांस अधिक होने से दीवारें मोटी हो जाती है जैसे गर्भाशय की। मांस के नीचे अर्थात् आशय के भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक झिल्ली रहती है। मांस के बाहर एक पतली झिल्ली होती है। किसी-किसी आशय की दीवार में कुछ वसा भी रहती है (जैसे हृदय की दीवार में)।

प्रणालियों (Ducts) और मार्गों (Passages) की बनावट

मार्गों की दीवारें कहीं-कहीं अस्थि और कारटिलेज से बनती हैं जिनके भीतरी पृष्ठों पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है जैसे नासिका और टेंटुवे में (जो श्वास मार्ग के भाग हैं)। बहुत से मार्गों और प्रणालियों की बनावट आशयों जैसी होती है।

ग्रन्थि (Gland)

ग्रन्थि उस अंग या यन्त्र को कहते हैं कि जिसका काम कोई रस (Secretion) बनाने का होता है; बनने के पश्चात् यह रस उस स्थान में पहुँच जाता है जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। यकृत (जिगर) एक ग्रन्थि है जिसमें पित्त बनता है; यह रस पित्त प्रणाली (Bile duct) द्वारा अंत्र या आंत में चला जाता है। ऐसे ही वृक्क (गुर्दा) भी ग्रन्थि है जिसका काम मूत्र बनाने का है; मूत्र की शरीर में कोई आवश्यकता नहीं होती; मूत्रमार्ग द्वारा वह शरीर से बाहर चला जाता। अंड शुक्र (वीर्य) बनानेवाली ग्रन्थि है; आमाशय वा अन्न की दीवार में रहनेवाली सूक्ष्म ग्रन्थियों में पाचक रस (Digestive juice) बनता है।

जब वह स्थान जहाँ कि उस रस की जो ग्रन्थि में बनता है आवश्यकता होती है ग्रन्थि से दूर होता है तो उस ग्रन्थि से उस स्थान तक एक नली लगी रहती है; यह नली उस विशेष रस की प्रणाली (Duct) कहलाती है; यकृत और क्षुद्र अंत्र के बीच में पित्त-प्रणाली (Bile duct) लगी रहती है; अंड से शुक्र प्रणाली (Vas deferens), वृक्क से मत्र प्रणाली (Ureter) लगी रहती है। परन्तु जब वह रस किसी विशेष स्थान के लिये नहीं बनता प्रत्युत सम्पूर्ण शरीर के लिये बनता है तब किसी प्रणाली की आवश्यकता नहीं होती; यह रस ग्रन्थि के लसीका या रक्त में मिल जाता है और रक्त द्वारा शरीर के सब अंगों में पहुँचता है। प्रणालियों के हिसाब से ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं।

१—प्रणाली सहित (With duct)

२—प्रणाली विहीन (Ductless)

यह न समझना चाहिये कि जिन ग्रन्थियों में प्रणालियाँ हैं वे ऐसी वस्तुएँ नहीं बनातीं जिनकी सम्पूर्ण शरीर में आवश्यकता नहीं होती। नहीं नहीं इन प्रणाली सहित ग्रन्थियों में भी कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी हैं जो दो प्रकार की वस्तुएँ बनाती हैं एक वह जिसकी विशेष स्थान में आवश्यकता होती है, दूसरी वह जो रक्त के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करती है। क्लोम (Pancreas) या अंड (Testis) ऐसी ही ग्रन्थियाँ हैं।

ग्रन्थियों का आकार, परिमाण व रचना

ग्रन्थियाँ बड़ी और छोटी सब ही प्रकार की होती हैं; यकृत् (Liver), प्लीहा (Spleen), वृक्क (Kidney), क्लोम (Pancreas), बड़ी बड़ी ग्रन्थियाँ हैं; अंड (Testis), डिम्ब-ग्रन्थि (Ovary), उपवृक्क (Supra-renal), लसीका ग्रन्थियाँ (Lymph glands), थाइमस (Thymus) इत्यादि छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ हैं। बहुत सी

ग्रन्थिया अणुवीक्ष्य (Microscopic) होती हैं अर्थात् इतनी सूक्ष्म होती है कि बिना अणुवीक्षण के दिखाई नहीं देती।

ग्रन्थि वास्तव में एक सेल समूह होता है। अणुवीक्ष्य ग्रन्थियाँ पृथक्-पृथक् सेल समूह होते हैं; बडी ग्रन्थिया अणुवीक्ष्य ग्रन्थियो के समूह होते है।

सेल समूह जिन से ग्रन्थियाँ बनती हैं कई प्रकार के होते हैं; सेलें इस प्रकार रखी रहती है कि उनके बीच में एक छोटा-सा स्थान रह जाता है जिसमें यह रस जो वे बनाती है इकट्ठा होता रहता है :--

(१) कुछ ग्रन्थिया नली जैसी होती है, लम्बी अधिक और चौडी कम; नली का एक सिरा खुला रहता है दूसरा बन्द होता है। खुला सिरा ग्रन्थि का मुख कहलाता है। सेलों के बाहर रक्त वा लसीका केशिका रहती है। जिन पदार्थों की नली की सेलो को रस बनाने के लिये आवश्यकता होती है वे चुए हुए लसीका से मिल जाते है। ये ग्रन्थियां नलाकार (Tubular) ग्रन्थिया कहलाती है। आमाशय और अंत्र की श्लैष्मिक झिल्ली में सहस्रो नलाकार ग्रन्थिया रहती है (चित्र २१९ में १) कभी-कभी कई नलिया एक दूसरे से मिली रहती है (चित्र २१९ में २)। कभी-कभी नली बहुत लम्बी होती है और उसका नीचे का भाग सर्प की तरह गेंडली मारे रहता है; पसीने की ग्रन्थियां इसी प्रकार की होती है (चित्र २१९ में ३)।

(२) कुछ ग्रन्थियां थैली जैसी होती है। ये कोष्ठाकार (Saccular) ग्रन्थियां कहलाती हैं (चित्र २१९ में ४) कभी-कभी कई थैलियों या कोष्ठों के एक दूसरे से जुड़े रहने से एक बड़ी थैली बन जाती है (चित्र २१९ में ५) क्लोम इस प्रकार की ग्रन्थियों का समूह है; थूक की ग्रन्थियाँ भी ऐसी ही होती है।

चित्र २१९ ग्रन्थियाँ
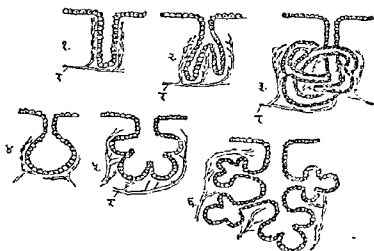
र = रक्तवाहिनियाँ (Blood vessels)

(३) कुछ ग्रन्थियाँ न नली जैसी होती हैं और न कोष्ठ जैसी। इन में बहुत सी सैलें पास-पास रहती हैं; सैलों के बीच में कहीं-कहीं अन्तर रहता है; रस इस रास्ते में चला जाता है। ऐसे-ऐसे बहुत से सैल समूह होते हैं और इन समूहों से एक पिंड बन जाता है। यकृत् और लसीका ग्रन्थियों की रचना ऐसी ही होती है।

मुख्य ग्रन्थियों के नाम और उनके स्थान

१—यकृत् (Liver)। यह ग्रन्थि उदर में वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के नीचे रहती है; अधिक भाग दाहिनी ओर रहता है। इसमें पित्त (Bile) बनता है जो पित्तप्रणाली (Bile duct) द्वारा क्षुद्र अंत्र के पक्वाशय (Duodenum) नामक भाग में पहुँच कर भोजन को पचाता है। इस ग्रन्थि का भार १½ सेर के लगभग होता है (चित्र ९)

२—क्लोम (Pancreas): यह ग्रन्थि उदर में रीढ़ के सामने आमाशय और अन्न के पीछे रहती है। इसका रस एक नली द्वारा पक्वाशय में जाता है और भोजन को पचाता है। इसका भार १½ छटांक के लगभग होता है।

३—वृक्क (Kidney): इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

४—अंड या शुक्र ग्रन्थियां (Testis): ये दो होते हैं और केवल पुरुष में रहते हैं स्त्री में नहीं। इन में शुक्र या वीर्य बनता है। शुक्र पहले शुक्र-प्रणाली द्वारा शुक्राशय में जाता है; वहां से मैथुन के समय मूत्र-मार्ग (शिश्न द्वारा) में होकर बाहर निकलता है। इन ग्रन्थियों में एक ऐसी वस्तु भी बनती है जो रक्त द्वारा संपूर्ण शरीर में पहुँचती है और अंगों को पुष्ट बनाती है (देखो पुस्तक का दूसरा भाग)।

५—दुग्धग्रन्थि या स्तन (Mammary gland); स्तन स्त्री वा पुरुष दोनों में होते हैं परन्तु दुग्ध केवल स्त्रियों में ही बनता है; स्त्री के स्तन पुरुषों से अधिक बड़े होते हैं। स्तन वृन्त में बहुत से छिद्र होते हैं; दुग्ध इन्हीं छिद्रों से निकला करता है।

६—लाला ग्रन्थियाँ या थूक की ग्रन्थियाँ (Salivary glands): हर एक मनुष्य में छ. ग्रन्थियाँ होती हैं तीन दाहिनी और तीन बाईं। इन में थूक बनता है जो एक प्रकार का पाचक रस है। यह नलियों द्वारा मुँह में जाता है।

७—चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid): यह ग्रन्थि ग्रीवा में स्वरयंत्र के सामने रहती है। यह ग्रन्थि कभी-कभी रोगों के कारण बहुत बड़ी हो जाती है। इस में प्रणाली नहीं होती; इसका रस रक्त द्वारा शरीर के सब भागों में पहुँचता है।

८—थाइमस[१] (Thymus): यह ग्रन्थि बच्चों में होती है और

१. अंग्रेजी भाषा का शब्द।

वक्षोऽस्थि (Sternum) के ऊपर के भाग के पीछे रहती है। युवावस्था (१४-१५ वर्ष) के पश्चात् ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता है यह ग्रन्थि छोटी होती जाती है। प्रौढ़ावस्था (२०-२५ वर्ष) में यह बहुत ही छोटी हो जाती है। इसमें कोई प्रणाली नहीं होती।

९—उपवृक्क (Suprarenal) : ये दो ग्रन्थियाँ वृक्कों के ऊपर के सिरों पर रहती हैं इन में नलियाँ नहीं होतीं।

१०—प्लीहा या तिल्ली (Spleen): यह उदर में बाईं ओर रहती है ; कोई प्रणाली नहीं होती। ज्वरों में विशेष कर मलेरिया ज्वर (मौसमी बुखार और) और काला बजार में यह बहुत बड़ी हो जाया करती है। स्वस्थ मनुष्य में इसका भार पाँच छटाँक के लगभग होता है।

११—लसीका ग्रन्थियाँ (Lymph glands): इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

१२—प्रोस्टेट[1] (Prostate): यह पुरुषों ही में होती है। मूत्राशय के नीचे रहती है। इसका रस मूत्रमार्ग में पहुँच कर शुक्र से मिल जाता है।

१३—डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries): ये दो ग्रन्थियाँ स्त्रियों ही में होती हैं; बस्तिगह्वर (Pelvis) में गर्भाशय (Uterus) के इधर-उधर रहती हैं। इनमें डिम्ब (Ovum) या अंडे बनते हैं जो डिम्बप्रणाली (Uterine tube) द्वारा गर्भाशय में चले जाते हैं। शुक्रकीट और अंडे के संयोग से गर्भस्थिति होती है। इन ग्रन्थियों में एक ऐसी चीज भी बनती है जो सीधी रक्त में मिल जाती है।

(ग्रन्थियों के लिये देखो हमारे शरीर की रचना भाग २)

---

१. अंग्रेजी भाषा का शब्द।

देशना

Index